
हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_178710

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 84
C 49 H Accession No. H 3551

Author चतुर्वेदी, परशुराम

Title हिन्दी के सूफी प्रेमशास्त्र १९६२

This book should be returned on or before the date
last marked below.

हिन्दी के सूफ़ी प्रेमाख्यान

हिन्दी ग्रन्थ-रत्नाकर-मीरीज

हिन्दी के सूफ़ी प्रेभाख्यान

परशुराम चत्तर्वेदी

प्रकाशक

यशोधर मोदी,

मैनेजिंग डायरेक्टर,

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड

हीराबाग, गिरगाँव

बम्बई-४

प्रथम संस्करण

जून, १९६२

तीन रुपया मात्र

मुद्रक

लीडर प्रेस

प्रयाग

प्रस्तावना

इस पुस्तक में मेरे कुछ वे निबंध संगृहीत हैं जिनका सम्बंध हिंदी के सूफ़ी प्रेमाख्यानों से है। ऐसी रचनाओं का निर्माण-कार्य न केवल उत्तरी भारत की अवधी भाषा में हुआ है, प्रत्युत उनकी एक विशिष्ट शैली के उदाहरण दक्खिनो हिंदी में भी पाये जाते हैं और उनकी संख्या कम नहीं है। प्रस्तुत संग्रह के अंतर्गत इन दोनों प्रकार के प्रेमाख्यानों के विषय में प्रकट किये गए मेरे वे विचार मिल सकते हैं जो उनके अधिकतर तुलनात्मक अध्ययन पर आश्रित हैं। मेरा यह प्रयास किसी वैसी 'वैज्ञानिक पद्धति' का अनुसरण नहीं करता जिसका प्रयोग अनुसंधान-विषयक प्रबंधों के लिए अपेक्षित समझा जा सकता है, न इसके फल-स्वरूप इन निबंधों को कोई वैसा सुव्यवस्थित रूप ही मिल पाया है। इनमें एक से अधिक स्थल ऐसे भी मिलेंगे जहाँ पुनरुक्ति हो गई है अथवा जहाँ क्रम विपर्यय का दोष तक बड़ी आसानी के साथ निर्दिष्ट कर दिया जा सकता है। परंतु, इन्हें पृथक्-पृथक् और स्वतंत्र रूप में पढ़ने पर वैसी त्रुटि क्षम्य मानी जा सकती है तथा कहीं-कहीं तो कदाचित् उसके विषय में कोई आपत्ति भी नहीं की जा सकती। प्रत्येक निबंध अलग है और उसको लिखते समय अपनाया गया दृष्टिकोण भी बहुत कुछ अलग ठहराया जा सकता है। हिंदी के सूफ़ी प्रेमाख्यानों की चर्चा करते समय, स्वभावतः उन कतिपय रचनाओं का भी प्रसंग आ गया है जो अन्य भाषाओं में निर्मित है तथा जिनके साथ इनका कुछ साम्य भी सिद्ध किया जा सकता है। इसके सिवाय, इनके उद्भव एवं विकास का प्रश्न छिड़ जाने पर उन प्रेमगाथाओं का भी उल्लेख कर देना पड़ता है जिन्हें 'असूफ़ी' का नाम दिया जा सकता है। परंतु किसी भी दशा में, केवल उन कतिपय चुनी हुई विशिष्ट रचनाओं पर ही दृष्टि डाली गई है जिन्हें प्रतिनिधि कहा जा सकता है।

संगृहीत निबंधों को लिखते समय विभिन्न मतों अथवा सामग्रियों की भी ओर संकेत करना पड़ा है और उनका निर्देश यथास्थल कर दिया गया है। उन्हें समय पर प्रस्तुत करने वाले अपने अनुज श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदी का मैं इस बार भी पूर्ववत् ऋणी हूँ।

अनुक्रम

भूमिका	(९)
उत्तरी भारत के हिन्दी सूफ़ी प्रेमाख्यान	१
दक्खिनी हिन्दी के सूफ़ी प्रेमाख्यान	१२१
नामानुक्रमणी	१४३

भूमिका

हिंदी के सूफ़ी प्रेमाख्यानों का विषय, प्रारंभ से ही, लोककथाओं जैसा रहते आने के कारण, इन्हें 'साहित्यिक लोकगाथा' मान लेने की प्रवृत्ति का होना स्वाभाविक है। तदनुसार, इसके लिए इनके अंतर्गत अनेक उपयुक्त लक्षण भी निर्दिष्ट किये जा सकते हैं। उदाहरण के लिए कहा जा सकता है कि मुल्ला दाऊद से लेकर ईसवी सन् की बीसवीं शताब्दी के कवि नसीर तक ने अपनी-अपनी कृतियों के लिए या तो उन लोककहानियों को चुना है जो उनके समय में प्रचलित रहती आई है और जिन्हें उनके लोकसाहित्य का अंग बन आने के कारण, लोकमानस की सृष्टि तक भी कहा जा सकता है अथवा उन्होंने ऐसी किसी कहानी का केवल मूलसूत्र ग्रहण कर लिया है या उसके ढाँचे मात्र का उपयोग किया है या उसकी केवल वर्णन-शैली का ही अनुसरण कर दिया है। ऐसी प्रत्येक दशा में, उन्होंने इस बात की ओर प्रायः बराबर ध्यान रखा है कि उसे कोई न कोई लोकानुमोदित रूप ही प्रदान किया जाय। इसमें सन्देह नहीं कि ऐसी रचनाओं को प्रस्तुत करते समय, उन्होंने अपनी कल्पना का भी न्यूनाधिक प्रयोग अवश्य किया होगा और कम से कम उनके पात्रों तथा उनके स्थानों का नामनिर्देश करते समय तो उन्होंने बहुत कुछ स्वतंत्रता से भी काम लिया होगा। परंतु इसके कारण उनमें कोई विशेष अंतर नहीं लक्षित होता और न केवल उतने के ही आधार पर ऐसा कहा जा सकता है कि उनमें कोई नवीनता आ गई है। विभिन्न कथारूढ़ियों का समावेश लगभग पहले जैसा ही होता चला जाता है, चमत्कारपूर्ण प्रसंगों को प्रायः पूर्ववत् स्थान मिलता आता है, कई अंधविश्वासों को लगभग उसी प्रकार उदाहृत किया जाता है तथा ऐसी अतिप्राकृतिक बातों का विशद वर्णन भी होता आता है जिन्हें केवल जनसाधारण में ही प्रश्रय मिल सकता है। इसके सिवाय उनके द्वारा किया गया नायकों के असीम साहस एवं ऐश्वर्य का प्रदर्शन, नायिकाओं के अनुपम सौन्दर्य का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन तथा विविध घटनाओं

के वैचित्र्यपूर्ण विवरण भी इस बात की ही ओर संकेत करते जान पड़ते हैं। अतएव हमारे लिए यह आवश्यक हो जाता है कि हम वैसे उक्त साहित्यिक लोकगाथा के वास्तविक स्वरूप के विषय में भी कुछ विचार कर लें।

‘लोकगाथा’ शब्द का प्रयोग हमारे यहाँ अधिकतर अंग्रेजी शब्द बैल्लेड (Ballad) के स्थान पर किया जाता आया है जिसका अर्थ किसी ऐसे काव्यरूप का होता है जिसमें कोई सरल कथा, केवल साधारण छंदों द्वारा कह दी गई रहा करती है। ऐसी रचनाएँ प्रायः छोटी-छोटी हुआ करती हैं। इनमें कथात्मकता के साथ-साथ गीतात्मकता भी पायी जाती है। साधारणतः ऐसा भी देखा जाता है कि इनका प्रचार बहुधा मौखिक रूप में ही होता चला आया है। वास्तव में ऐसी रचनाएँ हमें उस प्राचीन कहानी-साहित्य का स्मरण दिलाती हैं जो हमारे मानव समाज की प्रारंभिक दशा में प्रचलित रहा होगा। ऐसी लोकगाथाओं के मूल रचयिताओं का प्रायः कभी पता नहीं चला करता और ये इसीलिए लोकमानस की उपज तक ठहरा दी जाती हैं। किंतु इस सम्बंध में यह अनुमान भी किया जा सकता है कि ऐसी रचनाओं का निर्माण पोछे कतिपय लोकप्रिय कवियों द्वारा भी किया जाने लगा होगा। कभी-कभी किसी एक ही कथा का रूपान्तर देशकालानुसार, भिन्न-भिन्न प्रकार से होते आने के कारण, उसकी अनेक बातें प्रायः घटती-बढ़ती भी चली गई होंगी। यदि उसकी रचना कभी किन्हीं दरबारी कवियों द्वारा होने लगी होगी तो उसमें स्वभावतः किन्हीं विशिष्ट व्यक्तियों के नाम भी जुड़ जाते रहे होंगे। इसके सिवाय, अपने रचयिता कवियों के प्रमुख उद्देश्यों के आधार पर भी, ऐसी रचनाओं में कुछ न कुछ अंतर का आ जाना स्वाभाविक है। उदाहरण के लिए, यदि उनका अभीष्ट कभी किसी के शौर्य को प्रधानता देने का रहता होगा तो उनका रूप किसी ‘वीरगाथा’ का हो जाता होगा। यदि किसी के प्रेमी हृदय का परिचय देने का रहता होगा तो वह ‘प्रेमगाथा’ बन जाती रही होगी। इसी प्रकार, यदि किसी स्त्री के सतीत्व को महत्व देने का उद्देश्य रहता होगा तो वह ‘सतीगाथा’ तथा यदि केवल भाग्य के फेर का प्रभाव दरसाना रहता होगा तो इस प्रकार की रचना किसी ‘नियतिगाथा’ का रूप ग्रहण कर लेती होगी। परंतु फिर इसके कारण, उनके सामान्य काव्य-

रूप में भी कोई विशेष अन्तर नहीं आ जाता रहा होगा। उनका प्रचार अधिकतर जनसाधारण में ही होते आने के कारण, उनमें सदा केवल वैसे ही प्रसंगों का समावेश किया जाता रहा होगा जिनकी ऊपर चर्चा की जा चुकी है। साहित्यिक लोकगाथा (Literary Ballad) का नाम केवल इसी प्रकार की लोकगाथाओं को दिया जाता आया है।

परंतु ऐसी दशा में, यह आपत्ति की जा सकती है कि यदि 'लोकगाथा' शब्द को हम अंग्रेजी शब्द 'बैलेड' का अर्थबोधक मानते हैं तो फिर इसके लक्षणों में हमें उसके उन लघुता, सरलता और गेयत्व जैसे गुणों की भी गणना करनी चाहिए जो उसकी विशेषता समझे जाते हैं। यदि हम ऐसा मान कर चलते हैं तो इसका प्रयोग कभी कम से कम, किसी सूफी प्रेमगाथा के लिए भी नहीं किया जा सकता। इन रचनाओं में हमें कभी आकार-लाघव की ओर यत्न किया गया नहीं देख पड़ता, न वाह्य प्रसंगों की वृद्धि में कमी लाकर इनमें जटिलता न आने देने की कोई चेष्टा ही की गई जान पड़ती है, प्रत्युत कभी-कभी तो ऐसा लगता है कि यहाँ उसके विपरीत प्रयास तक भी किया गया है। इसलिए, 'बैलेड' शब्द का अर्थ हिंदी में व्यक्त करने के लिए हम यदि चाहें तो 'गाथागीत' वा किसी अन्य ऐसे शब्द का व्यवहार कर सकते हैं। इसके लिए हिंदी का 'पंवारा' शब्द भी उपयुक्त नहीं ठहरता, क्योंकि उसके साथ जो किसी 'विस्तार' का भी अर्थ जुड़ा हुआ है वह 'बैलेड' के विरुद्ध जा सकता है। इस 'पंवारा' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत शब्द 'प्रवाद' से बतलायी जाती है जिसका अभिप्राय लोकापवाद, बातचीत, काल्पनिक कथा वा पौराणिक कथा आदि के रूपों में निर्दिष्ट किया जा सकता है। इस प्रकार, यह 'बैलेड' की अपेक्षा 'लोकगाथा' का ही कहीं अधिक समानार्थक सिद्ध किया जा सकता है। मंडन कवि की 'मधुमालती' में जहाँ उसके नायक मनोहर द्वारा अपनी प्रेमपात्री के प्रति कहलाया गया है कि "तुम्हारा रूप और मेरा विरह-दुख ये दोनों देश-देशान्तरों तक पहुँच कर पंवारा बन गए हैं अर्थात् इन दोनों के विषय में लंबी चर्चाएँ की जाने लगी हैं"^१ वहाँ पर

१. "रूप तुम्हारा मोर दुख वारा। देस देस गे भयऊ पंवारा।"—मधुमालती (मित्र प्रकाशन, प्रयाग संस्करण, १९६१ ई०) पृ० २७३।

यह शब्द इसी अर्थ का सूचक हो सकता है। परंतु जहाँ तक पता चलता है, यह साधारणतः केवल किसी ऐसी लोकगाथा की ही ओर संकेत करता है जिसे उपर्युक्त गाथा की संज्ञा दी जाती है। इस दूसरे अर्थ में ही इसका प्रयोग मराठी भाषा के 'पोवाड़ा' तथा गुजराती के 'पंवाड़ो' जैसे शब्दों के रूपों में भी किया जाता हुआ दीख पड़ता है। इसका प्रयोग कभी किसी 'प्रेमगाथा' के लिए भी स्पष्ट रूप में किया गया नहीं सुना जाता। मनोहर के मुख से कहलाये गए उक्त वाक्य से भी, केवल इतना ही ध्वनित होता है कि दोनों प्रेमियों के सम्बंध में 'विस्तृत चर्चा' की जा रही है, उनकी सचमुच कोई 'प्रेमगाथा' भी नहीं कही जाती होगी। फलतः 'लोकगाथा' शब्द अंग्रेजी के 'बैलेड' शब्द से अधिक व्यापक अर्थ सूचित करता प्रतीत होता है और यह 'पंवारा' का भी ठीक समानार्थक नहीं जान पड़ता।

'लोकगाथा' कही जाने वाली रचनाओं का निर्माण स्वभावतः लोक-भाषा में हुआ करता था जिस कारण इसके लोकतत्व की प्रतिष्ठा का होना और भी अधिक सरल था। इस दृष्टि से विचार करने पर यह अनुमान कर लेना असंगत न होगा कि इसका विकास कदाचित् उसी प्रकार हुआ होगा, जिस प्रकार 'रोमांस' कहे जाने वाले साहित्य का मध्यकालीन योरूप तथा विशेष कर फ्रांस देश में हुआ था। अंग्रेजी का 'रोमांस' (Romance) शब्द वस्तुतः प्राचीन फ्रेंच शब्द 'रोमाँ' (Romans) का प्रतिनिधित्व करता है जिसका मूल अर्थ फ्रेंच भाषा अथवा उसमें रचित उन कविताओं का होता था जिनका सम्बंध ऐतिहासिक वृत्तान्तों से रहा करता था। उस शब्द का प्रयोग अधिकतर उन देशों की भाषाओं के लिए भी होता आ रहा था जो मूलतः रोमन शासन के अधीन रहते आये थे तथा जिनकी उन भाषाओं का मूलस्रोत लैटिन भाषा रह चुकी थी। कहते हैं कि ईसवी सन् की १२वीं शताब्दी तक फ्रांस का पूरा साहित्य लैटिन भाषा में रचा जाता था। जब इसके लिए वहाँ की लोकभाषा का भी प्रयोग किया जाने लगा और इसका विषय ऐतिहासिक वृत्त बन गया तो ऐसी कृतियों को भी उक्त 'रोमाँ' का ही नाम दिया गया। इस शब्द का प्रयोग वहाँ पर संभवतः आज तक भी ऐसे साहित्य के ही लिए किया जाता है

जिसे अंग्रेजी में नावेल (Novel) तथा हिंदी में उपन्यास कहा करते हैं। इसका एक दूसरा रूपान्तरित शब्द रोमांस (Romance) आजकल सभी प्रकार के कल्पनाप्रधान साहित्य के लिए प्रयुक्त होने लगा है। वैसे रोमांस-साहित्य के रचयिताओं की यह धारणा, कदाचित् आरंभ से ही रही कि जब तक इसमें किन्हीं रोचक प्रसंगों का भी समावेश नहीं किया जाता, इसे यथेष्ट लोकप्रियता नहीं मिल सकती। इसी कारण उन्होंने इसमें ऐतिहासिक वृत्तों के अतिरिक्त, पौराणिक कथाओं, लोकवार्ताओं तथा अंधविश्वासों को भी स्थान देना आरंभ किया जिसका एक परिणाम यह हुआ कि इनमें क्रमशः वृद्धि होती जाने के कारण, इनकी ऐतिहासिकता नष्ट होने लग गई^१। वास्तव में, उस मध्यकालीन समाज के लिए इतिहास, पौराणिक कथा और काल्पनिक साहित्य में कोई अन्तर भी स्पष्ट नहीं था। यद्यपि वैसी रचनाओं की सारी बातें सदा स्वीकृत नहीं की जाती रहीं। इतना निश्चित है कि ऐसे प्रश्नों की ओर कभी किसी का ध्यान भी नहीं जाता रहा। इन कृतियों में अधिकतर दैव पर भरोसा प्रकट किया गया रहता था, साधुवृत्त लोगों जैसे कठोर जीवन को महत्त्व दिया जाता था। उनके जैसे चमत्कारों का उल्लेख किया जाता था और भक्तिभाव के प्रदर्शन के अधिक से अधिक आवेश से काम लिया जाता रहा^२। इसी प्रकार उस युग के विशिष्ट पात्रों को ऐसे रूपों में चित्रित किया जाता था जिन्हें अंग्रेजी में Chivalrous अर्थात् शूरवीर कहा जाता है। ऐसी रचनाओं के नायकों का प्रेम सदा अपना कोई विशिष्ट आदर्श लिये रहता था जिसके अनुसार किसी विहित नियम का पालन भी आवश्यक था और जिसका सम्बंध न तो यौन-प्रवृत्ति मात्र से था, न जिसे उतना सेवामूलक ही कहा जा सकता था। उसमें ऐसी सारी बातों का ही एक मधुर सम्मिश्रण आ जाया करता था जिस कारण ए० बी० टेलर ने उसे Artificial literary love अर्थात् 'कृत्रिम साहित्यिक प्रेम' तक की संज्ञा दे डाली है

१. A. B. Taylor : An Introduction to Medieval Romance (London, 1930) pp. 1-2.

२. Do, pp. 167-76.

तथा उसका एक विश्लेषणात्मक परिचय देने का भी यत्न किया है^१। ऐसे रोमांसों के विषय में उस लेखक ने यह भी कहा है कि इनकी कोई परिभाषा नहीं दी जा सकती, प्रयुक्त इनके विषय में केवल कुछ अनुभव मात्र किया जा सकता है। कुछ इस प्रकार समझ लिया जा सकता है कि इनके पात्र सर्वसाधारण के समाज से कहीं दूर के रहने वाले होंगे तथा उनके सम्बंध की घटनाएँ भी इस भौतिक जगत से कहीं ऊपर घटती रही होंगी।

हमें ऐसा लगता है कि हमारे यहाँ भी, उपर्युक्त साहित्यिक लोकगाथाओं की रचना करने वाले कुछ इसी प्रकार सोचते रहे होंगे, उनके पाठकों अथवा श्रोताओं की धारणा भी इससे अधिक भिन्न रहती होगी। इस सम्बंध में यहाँ पर यह भी उल्लेखनीय है कि ऐसे साहित्य का विषय अपने यहाँ ऐतिहासिक रहने की अपेक्षा अधिकतर पौराणिक वा कथात्मक मात्र होते आने के कारण, उनके लिए ऐसा करना और भी अधिक स्वाभाविक बन जाता रहा होगा। इसके सिवाय, जहाँ तक हिंदी के सूफ़ी प्रेमाख्यानों के लिए कहा जा सकता है, इनके रचयिताओं के सामने तो संभवतः कोई ऐसा उपयुक्त आदर्श भी उपस्थित रहा होगा जिसका अनुसरण करना उन्हें स्वाभाविक जान पड़ता होगा। यह विशेषकर उनके समय तक प्रचलित उन विशिष्ट अपभ्रंश वा प्राकृत आख्यानों के रूप में रहा होगा जिनमें से कुछ की रचना का उद्देश्य धार्मिक प्रचार भी हो सकता था। सूफ़ी कवियों ने अपनी रचनाओं का ढाँचा अधिकतर इन्हीं के अनुरूप खड़ा किया होगा। इन्हीं के आधार पर अनेक प्रचलित कथा-रूढ़ियों का भी उपयोग किया होगा जिस कारण, उनकी रचनाओं के अंतर्गत वे सारी बातें आप-से-आप आ गई होंगी जो इनके लिए सामान्य समझी जा सकती थीं। परंतु ऐसा करते समय, उनका ध्यान संभवतः उन फ़ारसी सूफ़ी प्रेमाख्यानों की ओर भी अवश्य आकृष्ट हुआ होगा जिनका निर्माण अधिकतर निजामी (मृ० सन् १२०३ ई०) के समय से होने लगा था और जिनकी कुछ बातों को अपने यहाँ समाविष्ट कर लेना उनके लिए स्वाभाविक भी था। उन्होंने इनमें से किस ओर से कितना ग्रहण किया और उस

पर कहाँ तक अपनी कल्पना का प्रयोग किया ये बातें ऐसी हैं जिन पर अभी तक पूरा अनुसंधान नहीं किया जा सका है, न इस रोचक प्रश्न को अभी उचित महत्व प्रदान किया गया है। अतएव, अभी केवल इतना ही कहा जा सकता है कि उत्तरी भारत के हिंदी सूफ़ी प्रेमाख्यानों के लिए कोई न कोई पूर्व प्रचलित भारतीय रचनादर्श वर्तमान रहने के कारण, इधर फ़ारसी-साहित्य का प्रभाव उतना नहीं पड़ सका जितना दक्खिनी हिंदी की ऐसी रचनाओं पर पड़ा।

परंतु इसका परिणाम भी केवल इसी रूप में लक्षित होता है कि दक्खिनी हिंदी के सूफ़ी प्रेमाख्यानों का वाट्च रंगदंग उत्तरी भारत की ऐसी रचनाओं से बहुत कुछ भिन्न जान पड़ता है और भाषा-शैली काव्यरूप एवं छंदप्रयोग जैसी बातों में वे एक दूसरे के समान नहीं हैं। जहाँ तक वर्ण्य विषय का प्रश्न है तथा जहाँ तक दोनों के कवियों के मूल उद्देश्य के सम्बंध में कहा जा सकता है उनमें बहुत अधिक अन्तर नहीं है। दक्खिन वाले शामी संस्कृति और शामी आदर्शों द्वारा अवश्य अधिक प्रभावित हैं और उनमें कभी-कभी इस्लामी कट्टरता तक भी दीख पड़ने लगती है। किंतु अपनी रचनाओं के अंतर्गत लोकतत्व की प्रतिष्ठा करते समय, ये कभी उत्तर वालों से किसी प्रकार भिन्न नहीं जान पड़ते। ऐसी बातें इन दोनों के यहाँ न केवल भारत से, अपितु अरब एवं ईरान जैसे पश्चिमी देशों से भी ग्रहण कर ली जाती हैं और उनका यथास्थल उपयोग कर लिया जाता है। इनके यहाँ, यदि कभी-कभी प्राचीन बेदुइन अरबों के प्रेम की स्वच्छन्दता दीख पड़ती है तो उसके साथ ही ईरानी प्रेम की आध्यात्मिकता भी दृष्टिगोचर होती है और इन दोनों का संयोग अत्यन्त मनोरम रूप ग्रहण कर लिया करता है। इसके सिवाय, जब कभी ये किन्हीं निजंधरी कथाओं को लेते हैं अथवा उनका अधूरा तक भी प्रयोग करते हैं तो ये भरसक यही चाहते हैं कि उन्हें उनके मौलिक रूपों में ही चित्रित किया जाय तथा इसके द्वारा अपने पाठकों में कौतूहल की वृद्धि की जाय। परंतु ये ऐसा ठीक एक ही प्रकार से नहीं कर पाते और 'सबरस' का रचयिता दक्खिनी कवि मुल्ला वज़ही जहाँ उसके पात्रों और घटनाओं के चित्रण में, उनके मूल आदर्शों के निकट बने रहने में विशेष सजगता प्रदर्शित करता है, वहाँ हंस जवाहर का उत्तरी कवि कासिमशाह अपनी इस रचना में ऐसा नहीं कर

पाता, प्रत्युत यह कहीं-कहीं वैसे वर्णनों पर भारतीय रीति-परंपराओं की छाप तक डालने लग जाता है। फिर भी यहाँ पर प्रश्न केवल यह नहीं है कि ऐसी रचनाओं का विषय कहाँ तक अपने मूल आधार का अनुसरण करता है अथवा किस मात्रा में वह मानव समाज के किसी स्तर विशेष का प्रतिनिधित्व करता वा उसके अनुकूल पड़ता है। यहाँ पर तो हमें यह देखना है कि कहाँ तक ऐसी रचनाओं में वैसे विषय स्वभावतः कोई न कोई ऐसा रूप ग्रहण कर लेता है जिसका आकार-प्रकार साधारण जनसमाज की मानसिक प्रयोगशाला में निर्मित कहा जा सकता है। इसी कारण, जिसका चित्रण साधारण लोककथाओं के अनुकूल भी पड़ सकता है। इस दृष्टि से देखने पर हमें ऐसा लगता है कि इन सूफ़ी प्रेमाख्यानों को साहित्यिक लोकगाथा की कोटि में रखना कदाचित् अनुचित न कहा जायगा और इस बात को उक्त दोनों प्रकार की रचनाओं द्वारा प्रमाणित भी किया जा सकता है।

इस सम्बंध में यहाँ पर इतना और भी कहा जा सकता है कि मध्यकालीन योरुप के रोमांस-साहित्य का एक रूप जहाँ आज की ऐसी 'नावेल' कही जाने वाली रचनाओं में भी विकसित हो चुका है जिनका उद्देश्य ऐतिहासिक तथ्य और यथार्थवादी का प्रतिपादन रहा करता है, वहाँ दूसरी ओर हिंदी के सूफ़ी प्रेमाख्यानों का प्रतिनिधित्व करने वाली 'प्रेमदर्पण' नाम की आज से केवल ४५ वर्ष पूर्व निर्मित रचनाओं में भी हमें वैसी कोई बात स्पष्ट रूप में लक्षित नहीं होती, न यह किसी ऐसी ओर कोई संकेत करती ही जान पड़ती है। इसका कवि नसीर अपने लिए प्रसिद्ध नबी यूसुफ़ और उसकी प्रेमिका जुलेखा का कथानक चुनता है। उसका आरंभ करते समय, अन्य आराध्यों के प्रति श्रद्धाभाव प्रकट करने के साथ, पौराणिक महापुरुष ख्वाजा खिज़्र का उल्लेख करता है तथा ऐनुल अहदी नामक अपने पीर की भूरि-भूरि प्रशंसा करता है। इस दूसरे के सम्बंध में यहाँ तक भी कह डालता है कि "जिस पानी को वे फूँक देते थे वह केवड़े का जल बन जाया करता था।" वह ऐसे जल की एक बूँद का स्वयं अपने लिए भी प्राप्त होना बतलाता है तथा उसकी सुगंधि की स्मृति का बना रहना भी स्वीकार करता है। इस रचना के अंतर्गत कतिपय अन्य ऐसे आत्म-कथात्मक प्रसंग अवश्य आ गए

हैं जिनका रूप आधुनिक लग सकता है। यदि इसकी तुलना इसके सवा सौ वर्ष पहले, इसके विषय को ही लेकर लिखे गए शेख निसार कवि के प्रेमाख्यान 'यूसुफ़ जुलेखा' के साथ की जाय तो उस दशा में भी, कुछ न कुछ वैसा अन्तर सिद्ध किया जा सकता है, किंतु केवल उसके ही कारण, इसकी परंपरागत रचना-शैली में लक्षित होने वाले किसी स्पष्ट विकास का भी बोध नहीं हो पाता, प्रत्युत ऐसा लगता है कि अभी तक वही पुराना टकसाल काम देता चला जा रहा है जिसकी स्थापना इसके लगभग ६ सौ वर्ष पूर्व हुई होगी।

पता नहीं 'प्रेमदर्पण' के इधर भी कोई सूफ़ी प्रेमाख्यान लिखा गया है वा नहीं। यदि किसी ऐसी रचना का निर्माण हुआ है तो उसका रूप कहाँ तक नवीन है अथवा किस मात्रा तक उसमें पाये जाने वाले किसी विकास-क्रम का अनमान किया जा सकता है। इसी प्रकार हमारे पास ऐसा कोई दूसरा साधन भी नहीं जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि ऐसी रचनाओं का भविष्य क्या हो सकता है। उपलब्ध सामग्री पर विचार करके इस विषय में, केवल इतना ही मत प्रकट किया जा सकता है जो इस साहित्य के मूल्यांकन से सम्बद्ध है तथा जिसके अंतर्गत इसके भावी मानव समाज के लिए किसी प्रकार उपयोगी सिद्ध होने वा न होने की बात भी आ जाती है। हिंदी भाषा में इसका निर्माण उस समय होने लगा था जब इसमें एक ओर जहाँ केवल फुटकल रचनाएँ प्रस्तुत की जा रही थीं, वहाँ दूसरी ओर यदि कोई प्रबंध-काव्य लिखा भी जा रहा था तो वह भी संभवतः या तो किसी पौराणिक ग्रंथ का अनुवाद जैसा रहा करता था अथवा उन अपभ्रंश रचनाओं का अनुकरण मात्र था जिन्हें 'चरिउ' वा 'रासो' जैसे शीर्षकों के अंतर्गत गिनने की परंपरा चली आ रही है। इनमें से 'चरिउ' काव्यों में उनके नायकों के जीवन की घटनाएँ विस्तार के साथ दी जाती थीं। उनके वंश परिचय, बाल्यावस्था, तीर्थ-भ्रमण, शास्त्राभ्यास, शासनकार्य, सम्मान एवं देहांत जैसे विषयों का समावेश करके, ग्रंथ का उपसंहार दे दिया जाता था। किंतु रासो कहे जाने वाले ऐसे ग्रंथों के अंतर्गत अधिकतर उन्हीं बातों की चर्चा की जाती थी जिनका उनके जीवन में विशेष महत्व था। इसके सिवाय, इन दोनों प्रकार की रचनाओं के अंग-विभाजन में भी कुछ अन्तर जान पड़ता था, क्योंकि प्रथम

श्रेणी की रचनाओं का विभाजन जहाँ सर्गों, संधियों एवं कांडों में किया गया पाया जाता था, वहाँ द्वितीय को उसी प्रकार, ठवणि, वाणि, आदि में विभक्त करते थे और कभी-कभी तो, इनकी अभिनेयता को भी दृष्टि में रखते हुए इनका विभाजन विभिन्न 'ढालों' में भी कर दिया करते थे। यहाँ पर उल्लेखनीय यह है कि श्री केशवराम शास्त्री नामक एक विद्वान गुजराती लेखक के अनुसार, बंध की दृष्टि से विचार करने पर, ऐसे बृहत्काव्यों के केवल दो ही प्रकार मिलते हैं जिनमें से एक कड़वा, मासा ढवणि वा ढालयुक्त गेय 'रास' काव्य है और दूसरा 'क्रमबद्ध पवाड़ो' है जिसमें मुख्यतया चौपाई हों और बीच-बीच में दूहा या क्वचित् अन्य छंद भी आ गए हों^१। जो बहुत कुछ हिंदी के उत्तरी सूफ़ी प्रेमाख्यानों सा भी लगता है। श्री शास्त्री ने अपनी एक पुस्तक में^२ गुजराती साहित्य के अंतर्गत 'लोक-कथानकों' की चर्चा करते समय, किसी भीम कवि की ऐसी रचना 'सदयवत्स कथा' तथा हीरानंद के 'विद्याविलास पवाड़ो' का भी परिचय दिया है जो दोनों मुल्ला दाऊद की 'चंदायन' के समसामयिक जान पड़ते हैं। इनमें से प्रथम का रचनाकाल सं० १४६६ (सन् १४०९ ई०) दिया गया है और दूसरे का सं० १४८५ (सन् १४२८ ई०) है जो सन् १३७९ ई० के कुछ ही पीछे आते हैं। श्री शास्त्री ने इन दोनों के पहले विजय भद्र सूरि की रचना 'हंसराज बच्छराज चउपड' (रचना-काल सं० १४११ = सन् १३८४ ई०) तथा असाइत नायक रचित 'हंसाउलि' (२० का० सं० १४१७ = १३६० ई०) की भी चर्चा की है जो 'कथासरित्सागर' की किसी कथा पर आधारित हैं।

हिंदी के इन सूफ़ी प्रेमाख्यानों की रचना के पहले से ही कुछ कथा-रूढ़ियाँ प्रचलित थीं जिनका उपयोग अधिकतर लोकगाथाओं में होता आ रहा था और जिनमें इनके पूर्ववर्ती रासो ग्रंथों में भी स्थान मिलता आ रहा था। प्रसिद्ध चंद-

-
१. डॉ० दशरथ ओझा और डॉ० दशरथ शर्मा द्वारा संपादित : रास और रासान्वयी काव्य (वाराणसी, सं० २०१६) के भूमिका भाग, पृ० २१ पर उद्धृत।
 २. गुजराती साहित्यन् रेखादर्शन, खंड १ लो (अहमदाबाद, १९५१ ई०) पृ० ५६।

बरदायी की रचना 'पृथ्वीराज रासो' के लिए कहा जाता है कि उसमें ऐसी कथा-रूढ़ियों का प्रवेश, उसके प्रारंभिक रूप की रचना के समय से भी होने लगा होगा, किंतु यह प्रवृत्ति पीछे क्रमशः और भी अधिक बढ़ती चली गई। इसी प्रकार ऐसे रासो-ग्रंथों में जिन्हें उनके नायकों के शौर्य-प्रदर्शन के कारण, 'वीरगाथा' का नाम दिया जाता है, ऐसे अनेक प्रेम-प्रसंगों का भी समावेश किया जाने लगा जिनमें शृंगार रस की अभिव्यक्ति पर्याप्त मात्रा में रहा करती थी और जिन्हें, यदि मूल-ग्रन्थ से पृथक् करके कोई स्वतंत्र रूप दे दिया जाय तो एक साधारण 'प्रेमगाथा' का भी नाम दिया जा सकता है। इनमें प्रदर्शित प्रेमाकर्षण, विरह-वेदना, प्रेमपात्री के लिए किये गए यत्न, विभिन्न बाधाएँ तथा चामत्कारिक प्रसंग, आदि अनेक बातें ऐसी हैं जिनकी तुलना सूफ़ी प्रेमाख्यानों में पाये जाने वाले वैसे अनेक अंगों के साथ की जा सकती है। इसके सिवाय, जहाँ तक प्रचलित कथा-रूढ़ियों की बात है इनका समावेश हम उन रचनाओं में भी किया गया पाते हैं जिनका उद्देश्य, प्रत्यक्षतः जैनधर्म को विशेष महत्व देना जान पड़ता है और जिनमें प्रासंगिक रूप में प्रेमकथाएँ तक भी आ जाया करती हैं। उदाहरण के लिए "ब्रजभाषा के अद्यावधि प्राप्त ग्रंथों में सबसे प्राचीन" अग्रवाल कवि रचित प्रद्युम्न चरित (२० का० सं० १४११ = सन् १३५४ ई०) में जो हमें कथावस्तु मिलती है उसका आधार पौराणिक ठहराया जा सकता है, किंतु जिसमें उसके नायक के अपने बचपन से ही माता-पिता से बिछुड़ जाने, उसके प्रति अनेक स्त्रियों के आकृष्ट होने, उसके विभिन्न साहसिक कार्य करने तथा अंत में विवाह करके घर वापस आने और बधाइयों के बजने आदि के प्रसंग कथा-रूढ़ियों से ही लगते हैं। ऐसी बातें सूफ़ी प्रेमाख्यानों में भी पायी जाती है और यहाँ उन्हें कभी-कभी बहुत विस्तार दे दिया गया दीख पड़ता है। 'प्रद्युम्न चरित' के नायक को श्रीकृष्ण एवं यादवों के विनाश का समाचार सुन कर जिनेन्द्र से दीक्षा लेना और कठिन तप करना पड़ता है और तब कहीं उसे कैवल्यपद की प्राप्ति हो पाती है यह अवश्य एक ऐसी बात है जो सूफ़ी कवियों की दृष्टि में अनावश्यक है।

१. डॉ० शिवप्रसाद सिंह : सूर पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य (वाराणसी १९५८ ई०) पृ० १४३।

हिंदी के सूफ़ी प्रेमाख्यानों में जो हमें प्रेम-साधना का उदाहरण मिलता है उसे सब किसी ने बहुत बड़ा महत्व दिया है और यह बात प्रायः सर्वसम्मत्—सी समझी जाती है कि इनकी जैसी प्रेमाभक्ति का उत्कृष्ट रूप, कदाचित् अन्यत्र कहीं भी उपलब्ध नहीं है। इसलिए अनेक लेखकों की तो यह धारणा भी बन गई जान पड़ती है कि यदि भारतीय भक्ति-साधना के अंतर्गत इस प्रकार की कोई बात देखने में आती है तो वह संभवतः इसके ही आदर्श का अनुसरण करती होगी। परंतु, यदि हम भारतीय भक्ति के प्रेम-परक पक्ष पर विचार करते हुए उसके मूलस्रोत का पता लगाने का यत्न करते हैं तो हमारे लिए कोई ऐसा मत सहसा प्रकट कर देना तर्कसंगत नहीं जान पड़ता, न उस दशा में सूफ़ी प्रेम के अंतर्गत हम वंसी कोई नवीनता ही देख पाते हैं। कम-से-कम वैष्णव भक्तों द्वारा कल्पित रासलीला की भावना तथा प्रमुख आडवारों की प्रेमाभक्ति (जिन दोनों के लिए सूफ़ी-प्रेमभाव से प्राचीनतर सिद्ध करना कदाचित् बहुत कठिन भी नहीं समझा जा सकता) इस बात के समर्थन में प्रस्तुत की जा सकती है और इनके आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि इस प्रकार की मनोवृत्ति यहाँ के लिए अपरिचित अवश्य नहीं रही होगी। इसके सिवाय जब हम, 'बृहदारण्यक' जैसी पुरानी उपनिषद् के अंतर्गत यह भी देखते हैं कि याज्ञवल्क्य के अनुसार, "स्वयं वह परमात्मा (अकेला) रममाण नहीं हुआ और इसी से एकाकी पुरुष रममाण नहीं होता, उसने दूसरे की इच्छा की। वह जिस प्रकार परस्पर आलिंगित कोई स्त्री और पुरुष होते हैं वैसे ही परिमाण वाला हो गया और उसने अपने शरीर को दो भागों में विभक्त कर डाला १" इत्यादि तो हमें ऐसा लगता है कि वंसी 'रमणेच्छा' का कुछ संकेत यहाँ पर भी किया गया है तथा उक्त रासलीला की प्रक्रिया में इसकी पूरी अभिव्यक्ति भी मिल जाती है। रासलीला की भावना में हमें न

१. "स वै नैव रेमे तस्मादेकाकी न रमते स द्विती रमैच्छत् स । हैतावानास यथा स्त्रीपुमांसौ सम्परिष्वक्तो स इममेवात्मानं द्वेषापातयत्ततः" इत्यादि प्रथम अध्याय, चतुर्थ ब्राह्मण और तृतीय अंश ।

केवल क्रीड़ा एवं विनोद मात्र का ही अंश उपलब्ध होता है, प्रत्युत उसके साथ इसमें हमें उस विरहौत्सुक्य के भी दर्शन होते हैं जिसके कारण, श्रीकृष्ण के अकस्मात् अंतर्हित हो जाने पर, उनकी प्रेमिका गोपियाँ उनका क्षणिक विरह भी सहन नहीं कर पातीं और सर्वथा अधीर और बावली बनकर इधर-उधर भटकने लग जाती हैं। उन्हें उस 'बेहोशी' का भी अवलंब नहीं मिल पाता जिसकी दशा में किसी प्रेमी वा प्रेमिका को लाकर उसे किंचित् अवकाश प्रदान करने की चेष्टा प्रायः सूफ़ी कवियों द्वारा की गई देखी जाती है। इसी प्रकार, यदि सूफ़ी कवियों के प्रेमी एवं प्रेमिकाओं का प्रेमभाव उनके किसी पूर्व कालीन मूल सम्बंध पर आश्रित माना जाता है तो यहाँ हमारी दृष्टि उपर्युक्त भारतीय धारणा की ओर चली जाती है जिसके अनुसार उन प्रेमिकाओं का प्रेमपात्र (परमात्मा श्रीकृष्ण) किसी दिन अकेला 'रममाण' न हो पाया होगा। इस कारण यहाँ पर भी 'दंबीपन' कम कठोर नहीं सिद्ध होता, न हमें यह उससे किसी प्रकार कम अनिवार्य ही लगता है। अतएव किसी वैष्णव की प्रेमाभक्ति भी जो रासलीला की भावना का आधार लेकर चलती है और उसकी मधुरोपासना में परिणत होती है, तत्त्वतः उस 'इशक हक्रीक्री' की ही कोटि की हो सकती है जो किसी सूफ़ी साधक के यहाँ इशक मज्जाजी के माध्यम से आरंभ होकर अंत में पूर्ण विकास पाता है। प्रेमादर्श की यह स्थिति सहज और स्वाभाविक है और इसके लिए किसी वैवाहिक सम्बंध की योजना भी अपेक्षित नहीं। यहाँ न तो परकीया और स्वकीया के अन्तर का कोई प्रश्न उठा करता है, न जार एवं धर्मपति के बीच कोई भेदभाव ही रह जाता है।

जिस समय हिंदी के सूफ़ी प्रेमाख्यानो की रचना आरंभ हुई उस समय तक उनके रचयिताओं के लिए वैसी अनेक बातें प्रस्तुत की जा चुकी थीं जिनका उपयोग वे किसी न किसी रूप में बड़ी सरलता के साथ कर सकते थे। क्या कथा-वस्तु, क्या काव्यरूप, क्या रचना-शैली, और कथा-रूढ़ियों जैसी सामग्री इनमें से कदाचित् किसी के लिए भी उन्हें कोई सर्वथा नवीन मार्ग निर्मित करने की आवश्यकता नहीं थी, न उन्हें इसके लिए अधिक प्रयास ही करना पड़ा होगा। जहाँ तक ऐसी रचनाओं के लिए प्रचलित अवधी भाषा के प्रयोग की बात है हमें पता

है कि इस ओर भी कुछ-न-कुछ कार्य आरंभ हो चुका था। उनके लिए केवल इतना करना ही शेष था कि उस जनप्रिय माध्यम के द्वारा तथा यथासंभव पूर्वागत परंपराओं का ही अनुसरण करते हुए एक ऐसे साहित्य का निर्माण अपने हाथों में ले जो न केवल रोचक बन सके, प्रत्युत जिसके द्वारा उनका मत-सम्बंधी प्रचार कार्य भी अग्रसर किया जा सके। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए उन्हें किसी पंडित-समाज की शरण लेनी नहीं थी, न किसी के साथ तर्क-वितर्क करने जाना था। वैसे लोगों के प्रति व्यवहार करने का काम तो उनके सहधर्मों एवं संरक्षक शासकों के सिपुर्द था जो चाहे प्रलोभन वा प्रताड़न द्वारा अपनी ओर से मनमानी भी कर सकते थे और जिनके ऊपर इसके विरुद्ध कोई अंकुश भी नहीं हो सकता था। परंतु सूफ़ी कवियों का काम उनसे कई बातों में भिन्न समझा जा सकता था और वह किसी समझौते जैसा भी था। ये किसी ऐसे मत का परिचय देना चाहते थे जिसकी अनेक बातें सब किसी को प्रत्यक्षतः मान्य एवं स्वीकार योग्य लग सकती थी और जिनका मूल आधार एक मात्र परमात्मा तथा उसके प्रति स्वाभाविक प्रेमभाव होने के कारण उन्हें उसके अपनाने में कभी कोई आपत्ति नहीं हो सकती थी। ऐसी दशा में इसके लिए किसी लोकगाथा को माध्यम बनाना सोने को सुगंधि पूर्ण रूप दे देना अथवा किसी अमृत जैसे अलभ्य पदार्थ को जन-सुलभ पात्रों में डालकर उसे सब कहीं वितरित कर देने के समान था जिसे कदाचित् सब किसी ने पसंद किया। अतएव इस प्रकार की रचना-शैली में जो नवीनता लक्षित होती है वह प्रधानतः इस रूप में ही निर्दिष्ट की जा सकती है कि इसके द्वारा गूढ़ आध्यात्मिक तत्व को भी सुबोध बना देने की चेष्टा की गई है तथा इसके साथ ही प्रेमतत्व के उस रूप का निरूपण भी किया गया है जिसके व्यापक क्षेत्र में एक बार प्रवेश पा जाने पर हमारे जीवन में कायाकल्प की दशा लायी जा सकती है तथा भूतल एवं स्वर्ग का भेदभाव तक दूर किया जा सकता है। इन प्रेमगाथाओं के माध्यम से सूफ़ियों का जन-संपर्क स्थापित करना बहुत सरल हो गया और इनकी रचना द्वारा हिंदी के लिए एक ऐसे साहित्य का सृजन भी आरंभ हो गया जिसने उसके वाङ्मय की समृद्धि में बहुत बड़ी सहायता की।

उत्तरी भारत के हिंदी सुफ़ी प्रेमाख्यान

(१)

कहते हैं कि 'सूफी' शब्द का प्रयोग, सर्वप्रथम शेख अबू हाशिम के लिए किया गया था जो मोसल नगर में उत्पन्न हुए थे । ये शाम देश के कूफा नगर में रहा करते थे और इन्होंने ईराक़ देश के 'रमला' नामक स्थान में अपना कोई मठ भी स्थापित किया था । परंतु इनके जन्म अथवा मरण-मम्बंधी तिथियों का हमें कोई निश्चित पता नहीं चलता, केवल इतना ज्ञात होता है कि ये ईसवी सन् की नवीं शताब्दी में वर्तमान थे । मौलाना जामी इनके देहान्त का हि० १५० अर्थात् ७६७ ई० में ही हो जाना बतलाने हैं ।^१ यह अनुमान भी किया जाता है कि तब से प्रायः ५० वर्षों में, यह शब्द बहुत प्रचलित भी हो गया होगा । किंतु "कुशैरी (मृ० सन् ९८८ ई०) तथा शहाबुद्दीन मुहम्मदी (मृ० सन् १२३४ ई०) के अनुसार 'सूफी' शब्द पहले पहल, हिजरी सन् के द्वितीय चरण के अंत में, सन् ८१५ ई० के अनन्तर प्रयोग में आया होगा और उनका यह कथन इस बात से भी प्रमाणित होता है कि इसे न तो 'हदीश' के सप्रह-ग्रथ 'मित्त.' में कोई स्थान मिला है जो नवीं और दसवीं शताब्दी में प्रस्तुत हुआ था, न यह उम प्रसिद्ध अरबी कोश 'कामूल' में ही मिलता है जो सन् १४१४ ई० में तैयार किया गया था ।^२ क्योंकि इन जैसी पुस्तकों तक में इसका न पाया जाना कम में कम इसकी अप्रसिद्धि का ही सूचक हो सकता है । इस समय तक इस्लाम धर्म द्वारा प्रभावित देशों के शासक उमैया वंश वालों का शासन-काल समाप्त हो चुका था और तब तक अन्वाम वंगी लोगों का प्रभुत्व भी स्थापित हो गया था जिनके समय में उम धर्म का प्रवेश इधर ईराक़ तथा उसके आगे तक हो गया ।

१ सूफी संत मिर्जा, मजहर जानजाना, अलीगढ़ सं० २०१७ ।

2. Dr. John A. Subhan : Sufism, Its Saints and Shrines (Lucknow, 1938) p. 7.

‘सूफ़ी’ शब्द का व्युत्पत्ति मूलक अर्थ अधिकतर ‘सूफ’ अर्थात् “ऊन से बने मोटे वस्त्र धारण करने वाला” समझा जाता है। ऐसे लोग उन दिनों बहुधा, ऐश्वर्य एवं भोगविलास में सर्वथा दूर बने रहकर, सीधा-सादा जीवन व्यतीत करते थे तथा प्रायः आध्यात्मिक साधनाओं में भी लगे रहते थे और इस प्रकार के व्यक्तियों में से कुछ इसके पहले भी हो चुके थे। तदनुसार प्रारंभिक युग के सूफ़ियों में अबू हसन बसरावी का नाम भी बड़ी श्रद्धा के साथ लिया जाता है जिनका देहान्त सन् ७२८ ई० में हुआ था और जिन्हें, इनके प्रशंसक खलीफ़ा अली के समान चरित्रवान् बतलाते हैं। उन्हीं में बसराविनी राबिया की भी गणना की जाती है जिसका मृत्युकाल सन् ८०२ ई० है और जो एक अत्यन्त दरिद्र परिवार की होती हुई भी, अपने सांसारिक सुखों के लिए स्वयं परमेश्वर तक से भी कुछ माँगने में लज्जा का अनुभव किया करती थी। अपने इष्टदेव के प्रति वह ‘तवक्कुल’ अथवा ‘पूर्ण निर्भरता’ का भाव सदा बनाये रहा करती थी और उसे एक क्षण के लिए भी न भूलती हुई, उसकी प्रार्थना में सदा निरत रहना भी पसन्द करती थी। इस प्रकार उस युग के सूफ़ियों की विशेषता उनकी एकान्त-प्रियता, ईश्वराधना तथा ध्यान जनित आनन्द में सदा मग्न रहने में निहित कही जा सकती है। वे लोग न तो किसी बात का प्रचार करना चाहते थे, न उन्हें आत्मप्रदर्शन ही पसन्द था। उनकी वृत्ति प्रधानतः अन्तर्मुखी थी और उनके लिए कहा जा सकता है कि वे अधिक से अधिक इस्लाम धर्म की मौलिक भावनाओं द्वारा प्रभावित भी थे।

परन्तु, ईसवी सन् की नवीं शताब्दी के प्रायः प्रथम चरण से ही, ऐसे सूफ़ियों की मनोवृत्ति में बहुत परिवर्तन दिखलायी पड़ने लगा। इस समय तक अब्बास वंश वाले मुस्लिम शासकों ने अपनी राजधानी दमिश्क से हटाकर बग़दाद में स्थापित कर ली थी और उनके प्रसिद्ध मंत्री बरमकों द्वारा प्रोत्साहन पाकर बौद्ध एवं हिन्दू विचारधाराओं को समुचित प्रश्रय भी मिलने लगा था। उनके मामू तथा हारूँ रशीद नामक बादशाहों ने अपने यहाँ विभिन्न मतावलम्बी लोगों को निमंत्रित कर उनसे विचार-विनिमय कराया तथा उनके विशिष्ट ग्रन्थों के अनुसार अनुवाद भी करायें जिसका एक परिणाम यह हुआ कि उस काल के सूफ़ी लोगों में भी दार्श-

निक प्रश्नों पर तर्क-वितर्क करने की प्रवृत्ति जग उठी। तदनुसार, तात्कालीन ईरानी, ईसाई धर्मी, नव अफ़लातूनी एवं भारतीय विचारधाराओं के सम्मिश्रण और समन्वय के फलस्वरूप, सूफ़ी साधकों का एक अपना पृथक् मत, 'सूफ़ीमत' के नाम से विकसित हो चला। उसके अन्तर्गत अनेक ऐसी बातों का भी समावेश होने लगा जो मूल इस्लाम धर्म के प्रचलित सिद्धान्तों के ठीक अनुकूल नहीं समझी जा सकती थीं। इस समय के सूफ़ी जुलनून मिस्त्री (मृ० सन् ८५९ ई०) ने यूनानी चिन्तन-शैली के अनुसार बुद्धिवादी व्याख्या की प्रणाली आरंभ की, अबू यज़ी-जुद्दीन बिस्तामी वायज़ीद (मृ० ८७५ ई०) ने कदाचित् सर्वप्रथम, बौद्धों के 'निर्वाण' की भाँति 'फ़ना' की धारणा प्रचलित की और हल्लाज़ वा मंसूर (मृ० सन् ९२२ ई०) ने अपनी 'सर्वात्मवाद' के प्रति घोर आस्था द्वारा भारतीय वेदान्त दर्शन के अद्वैत सिद्धान्त की ओर भी सभी का ध्यान आकृष्ट कर दिया।

सूफ़ियों में इस प्रकार की नवीन चिन्तन-पद्धति के चल निकलने पर मूल इस्लाम धर्म के प्रेमियों ने उनके प्रति विरोध-भाव प्रदर्शित करना आरंभ किया जिस कारण, अल् जुनैद (मृ० सन् ८९८ ई०) जैसे कुछ लोगों की ओर से यह प्रयास भी होने लगा कि इन दो परस्पर विरोधी मतों में कोई सामञ्जस्य भी लाया जाय। इसका समर्थन पीछे अन्य सूफ़ियों ने भी किया जिनमें अल् हुज़िवरी (मृ० सन् ९९५ ई०) तथा अल् ग़ज़ाली (मृ० सन् ११११ ई०) की गणना विशेष रूप में की जाती है। अल् हुज़िवरी ने इस सम्बंध में अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'कश्फ़ुल-महज़ूब' की रचना की जिसके अन्तर्गत उन्होंने अपने समय तक प्रचलित सूफ़ी संप्रदायों का वर्गीकरण कर उनकी विशेषताओं का तुलनात्मक अध्ययन किया। इस प्रकार उन्होंने यह प्रदर्शित करने की भी चेष्टा की कि उनमें से कदाचित् ही कोई ऐसा है जो इस्लाम धर्म के मौलिक सिद्धान्तों के सर्वथा प्रतिकूल जाता हो। अल् ग़ज़ाली का कार्य अल् हुज़िवरी से भी अधिक कहीं गंभीर और सुव्यवस्थित सिद्ध हुआ। उन्होंने अपनी विद्वत्ता एवं योग्यता के आधार पर इस्लाम धर्म की मौलिक धारणाओं की भी व्याख्या एक नवीन ढंग से कर डाली। अपने ग्रन्थ 'इह्याउल् उलूम' की रचना द्वारा इस बात को बड़ी सफलता के साथ सिद्ध कर दिया कि वस्तुतः उसके अनुसार निर्धारित आध्यात्मिक जीवन का स्वरूप

भी प्रचलित सूफ़ीमत सम्बंधी आदर्शों से किसी प्रकार अधिक भिन्न पड़ता नहीं प्रतीत होता । अल् ग़ज़ाली के ऐसे यत्नों ने इस प्रकार, सूफ़ीमत की क्रान्तिकारी विचारधाराओं को भी इस्लाम धर्म के अन्तर्गत महत्वपूर्ण स्थान दे डाला जिसका पीछे बहुत प्रभाव पड़ा ।

अल् ग़ज़ाली के अनन्तर कतिपय सूफ़ी कवियों ने भी ऐसी बातों की ओर अपना ध्यान दिया और अपनी उत्कृष्ट काव्यमयी रचनाओं के माध्यम द्वारा, सूफ़ीमत के विविध सिद्धान्तों तथा उसकी साधनाओं को अधिकाधिक लोकप्रिय बना डाला । इन सूफ़ी कवियों ने प्रधानतः उस प्रेमतत्त्व को महत्व दिया जो सूफ़ी साधक एवं परमात्मा के पारस्परिक सम्बंध का मूलाधार है । उन्होंने अपनी सरस उक्तियों तथा रोचक वर्णनों द्वारा प्रेम-भाव के प्रायः प्रत्येक पहलू पर प्रकाश डाला और कभी-कभी उसे अपनी ललित कहानियों में उदाहृत करते हुए उस पर ऐसा अनुपम रंग चढ़ा दिया जिससे वह सर्वसाधारण तक के लिए भी सरल और सुगोचर बन गया । इन काव्य-रचयिताओं की कृतियाँ पीछे बहुत प्रसिद्ध हो चलीं और उनमें आये हुए अनेक शब्दों ने पारिभाषिक रूप तक ग्रहण कर लिया, जिस कारण उनसे सूफ़ीमत के प्रचार में इतनी सुगमता आ गई जो उसकी केवल दार्शनिक वा आध्यात्मिक दृष्टि के ही आधार पर कभी संभव नहीं थी । बहुत कुछ ऐसे शब्दों के विभिन्न आकर्षणों ने ही उसे अधिक व्यापक बनने में भी सहायता पहुँचायी । इन सूफ़ी कवियों में कुछ ऐसे थे जिन्होंने प्रसिद्ध सूफ़ियों के परिचय अथवा जीवनवृत्तों की भी रचना की और उनमें स्वभावतः बहुत सी ऐसी पौराणिक बातों तथा चमत्कारों तक का समावेश कर दिया जिनके कारण सूफ़ीमत की अनेक विचारधाराओं का स्पष्टीकरण हो गया । इसी प्रकार इन सूफ़ी कवियों ने अनेक रूवाइयाँ, मसनवियाँ तथा ग़ज़लें भी केवल इसी उद्देश्य से लिख डालीं कि उनके माध्यम से अत्यन्त गूढ़ प्रश्नों तक पर भी स्पष्ट प्रकाश डाला जा सकता था, किंतु इन सबसे अधिक महत्वपूर्ण, कदाचित् उनकी प्रेमगाथाएँ ही सिद्ध हुई ।

अरबी भाषा के अन्तर्गत प्रेमकाव्यों की रचना बहुत पहले से ही होती आ रही थी और वे प्रायः युद्ध-वर्णनों में प्रासंगिक रूप से आ जाते थे । विशुद्ध व्यक्तिगत प्रेम अथवा ईश्वरीय प्रेम के प्रतीकात्मक वर्णन की परंपरा उधर, सर्वप्रथम फ़ारसी

भाषा में ही प्रतिष्ठित हुई। फ़ारसी कवियों ने प्रेमोन्माद एवं विरह का वर्णन करते समय, अपनी ग़ज़लों का प्रयोग विशेष रूप से किया तथा अपनी मसनवी रचनाओं के सहारे ईश्वरीय प्रेम का प्रतिपादन और स्पष्टीकरण भी किया। उनकी ऐसी ग़ज़ले तथा रूबाइयाँ अधिकतर फुटकर ही पायी जाती हैं, किंतु उन्हें संगृहीत कर विभिन्न 'दीवानों' तथा 'कुल्लियात' का रूप दे डालने की परंपरा भी देखी जाती है। इसके विपरीत, मसनवी रचना-पद्धति के अनुसार, किसी वर्ण्य विषय को अधिक विस्तार भी दिया जा सकता है। इस कारण ये कवि अपनी मसनवियों के माध्यम से किसी दृष्टान्त की कथा का भी वर्णन करने लग जाते हैं। इस प्रकार बहुधा भौतिक प्रेम की घटनाओं की सहायता से उस ईश्वरीय प्रेम को भी उदाहृत कर देते हैं जो सूफ़ियों का चरम लक्ष्य समझा जाता है। रूबाइयों की रचना के लिए उमर खय्याम (मृ० सन् ११२३ ई०) अधिक प्रसिद्ध हैं। इसी प्रकार ग़ज़लों के लिए प्रसिद्ध हाफ़िज़ (मृ० सन् १३९० ई०) को सर्वाधिक श्रेय दिया जाता है तथा ये दोनों कवि अपनी ऐसी रचनाओं के कारण, अमर हो गए हैं। परंतु मसनवी-पद्धति की रचनाओं के सम्बंध में प्रायः सनाई (मृ० सन् ११३१ ई०) निज़ामी (मृ० सन् १२०३ ई०), अत्तार (मृ० सन् १२३० ई०) तथा रूमी (मृ० सन् १२७३ ई०) एवं जामी (मृ० सन् १४९२ ई०) के नाम लिए जाते हैं। इनमें से भी सनाई तथा अत्तार को इस रचना-शैली के कदाचित् पुरस्कर्ता होने का ही श्रेय प्राप्त है। इस प्रकार रूमी ने, भी इसका प्रयोग अपने दृष्टान्तों में ही किया है। केवल निज़ामी एवं जामी ही ऐसे दो प्रसिद्ध कवि हैं जिन्होंने इससे अपनी प्रेमगाथाओं की भी रचना में काम लिया है। इन दोनों फ़ारसी कवियों की सफलता के कारण एक ऐसी रचना-पद्धति को प्रोत्साहन मिला जो अन्य भाषा के कवियों का भी आदर्श बन गई।

(२)

निज़ामी की पाँच मसनवियाँ 'ख़म्स' अथवा 'पंजगंज' (पाँच बहुमूल्य कोश) कहलाकर प्रसिद्ध हुई। इनके नाम क्रमशः 'मख़ज़न अल् असरार' (सन् ११७६ ई०), 'ख़ुसरोशीरी' (सन् ११८० ई०) 'लैला मजनू' (सन् ११८२ ई०) 'इस्कन्दर

नामा' (सन् ११९१ ई०) तथा 'हफ़्तपैकर' (सन् ११९८ ई०) थे और उनकी लोकप्रियता के कारण पीछे कई अन्य कवियों ने भी इस प्रकार की रचनाएँ प्रस्तुत कर डालीं। उदाहरण के लिए न केवल उधर के कवियों में से किरमान ख्वाजू (मृ० सन् १३५२ ई०) तथा उपर्युक्त जामी ने ही निज़ामी का अनुसरण किया, अपितु भारत के प्रसिद्ध फ़ारसी कवि अमीर ख़ुसरो (मृ० सन् १३२५ ई०) ने भी ऐसी रचना का निर्माण करने में अपने को धन्य माना। तुर्की भाषा का कवि शेखी (मृ० सन् १४२९ ई०) तो इस प्रकार की शैली के अनुकरण में अपनी 'शीरी-ख़ुसरो' की रचना करके ही अमर हो गया। निज़ामी की इन ख़म्स वाली रचनाओं में से भी 'ख़ुसरो शीरी' तथा 'लैला मजनु' की विशेष प्रसिद्धि हुई। 'ख़ुसरो शीरी' के अन्तर्गत सासानी सम्राट ख़ुसरो परविज़ तथा उसकी प्रेमपात्री शीरी की दुःखान्त प्रेमकहानी आती है जिसमें एक सुन्दरी के एक अन्य प्रेमी फ़रहाद को उसकी मृत्यु का झूठा समाचार सुनते ही अपने प्राणों से हाथ धो देना पड़ता है। फिर अंत में सम्राट परविज़ किसी के द्वारा मार दिया जाता है और उसे भी कब्र दिलाकर स्वयं शीरी तक आत्महत्या कर लेती है। इसी प्रकार 'लैला मजनु' में भी निज़ामी ने अरब देश के क्रैस नामक प्रेमी तथा उसकी प्रेमपात्री लैला की प्रेम-कहानी अंकित की है। अंत में, उन दोनों के ही मार्ग में अनेक प्रकार की बाधाओं का सृजन कर उनका पूर्ण संयोग नहीं होने दिया है जिससे वह कथा भी दुःखान्त बन गई है। परंतु जैसा स्वयं निज़ामी के कथन द्वारा भी स्पष्ट हो जाता है, इन रचनाओं के माध्यम से उसने वास्तविक प्रेम का रहस्य भी बतला दिया है और यह सिद्ध कर दिया है कि "जो इश्क़ चिरस्थायी नहीं, वह केवल यौवन-सुलभ ऋीडा के समान है। केवल वही प्रेम सच्चा है जो न तो कभी अपनी तीव्रता में कम होता है, न जिसका किसी प्रकार, अंत तक परित्याग ही किया जा सकता है।"

अमीर ख़ुसरो ने भी अपनी पाँच मसनवियाँ बहुत कुछ निज़ामी की प्रतिस्पर्धा

१. निज़ामी : लैला मजनु, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ (सन् १८८० ई०) वाला संस्करण पृ० ३० ।

के भाव से तथा उन्हें 'ख़म्स' का ही रूप देकर लिखी और उसने उन्हें क्रमशः मतल उल् अनवार,' शीरी ख़ुसरो', 'मजनू लैला', 'आईन ए इस्कन्दरी' तथा 'हस्त-विहिस्त' के नाम दिये। उसकी रचना 'शीरी ख़ुसरो' तथा 'मजनू लैला' की कथाओं का आधार स्वभावतः निज़ामी की वैसे रचनाओं में पाया जाता है, किंतु एक भारतीय तथा परवर्ती कवि होने के भी कारण, उसने उनमें कई ऐसी नवीन बातों का भी समावेश कर दिया है जो उनमें नहीं थी। उसकी रचनाओं के अन्तर्गत कहीं-कहीं भारतीय वातावरण के चिह्न लक्षित होते हैं जो निज़ामी की कृतियों में नहीं पाये जाते। इसी प्रकार, जिस लगन के साथ उसने प्रेमियों का संयोग सम्बंधी चित्रण करने की भी चेष्टा की है वह इसके यहाँ दुर्लभ ही समझी जा सकती है। अमीर ख़ुसरो ने इन दोनों प्रेमकहानियों के अतिरिक्त 'इश्क़िया' (ख़िज़नामः) अथवा 'दुबलरानी ख़िज़खा' नामक एक अन्य प्रेमगाथा की भी रचना की है जिसमें उसने "भारतीय सुलतान अलाउद्दीन ख़िलजी के पुत्र ख़िज़खा के विशेष अनुरोध से, उसके गुजरात के राजा की पुत्री दुबलरानी के प्रति प्रदर्शित प्रेम-भाव को बड़े विशद रूप में कल्पित कर दिखाया है।^१" और उसकी यह प्रेमकहानी भी दुःखान्त ही है। किरनाम के उपर्युक्त ख्वाज़ कवि ने भी 'ख़म्स' की रचना का प्रयास किया है। उसने उसके अन्तर्गत अपनी 'हुमाय-हुमायू' तथा 'नौरोज़ गूल' नामक दो प्रेमकथाओं को स्थान दिया है, किंतु इनमें उक्त प्रकार की स्पष्ट विशेषताओं का कोई पता नहीं चलता। जहाँ तक जामी के सम्बंध में कहा जा सकता है, उसने 'ख़म्स' की जगह 'हफ़्त ओरंग' अर्थात् 'सप्त सिहासन' की रचना कर डाली और उसमें समाविष्ट की जाने वाली सात रचनाओं में से 'सलामान ओ अब् साल,' 'यूसुफ जुलेखा' तथा 'लैला मजनू' की प्रेमकहानियों का रूप दिया। इन तीनों में भी सूफ़ियों का वही प्रेमादर्श अंकित किया गया है जिसे "जो प्रेम बन्धन परक होता है वह कलुषित हुआ करता है, किंतु जो उन्मुख रहता है वही विशुद्ध^२ है।" जैसे शब्दों द्वारा प्रकट किया जा सकता है।

1. M. A. Ghani : The Pre-Mughal Persian in Hindustan (Allahabad, 1941) p. 390.
2. F. Hadland Davis : The Persian Mystics-Jami (London 1918) p. 24.

सूफ़ियों की धारणा के अनुसार हम संसार में रह कर परमात्मा से वियुक्त हो गए रहते हैं जिस कारण, उसे फिर से प्राप्त कर उसके साथ पूर्ण आत्मीयता का भाव अनुभव करने लगना ही हमारे जीवन का अन्तिम लक्ष्य होना चाहिए। परमात्मा वस्तुतः विगुद्ध प्रेम स्वरूप है और वह प्रेमसाधना के ही द्वारा हमें उपलब्ध भी हो सकता है, इसलिए हमें चाहिए कि उसके प्रति अपने प्रेम-भाव को विकसित करें। अपने उम प्रेमपात्र को अपने हृदय में स्थान देने के लिए इसे सर्वथा दोष रहित और पवित्र बना डालने की भरपूर चेष्टा करे तथा उसे निरन्तर स्मरण करते-करते और उसे सर्वत्र अनुभव करने का अभ्यास डालते हुए अंत में, उससे मिल जाय। अल् हुज्वरी का कहना है कि “परमात्मा के प्रति प्रत्येक मानव के हृदय में विकास पाता है और यह सर्वप्रथम उसके लिए श्रद्धा के रूप में पाया जाता है। वह क्रमशः व्यापक बनता चला जाता है और प्रेमी साधक को उस समय तक शान्ति नहीं मिला करती, जब तक यह उसे पा नहीं लेता। यह उसके लिए ब्रेचैन होकर तड़पने लग जाता है, उसके सामने प्रत्येक सांसारिक विषय की ओर से अनासक्त बन जाता है और केवल प्रेमपात्र के ही नियमों का पालन करता हुआ, परमात्मा का पूर्ण परिचय पा लेता है^१।” सूफ़ी साधक परमात्मा को अपना ‘प्रियतम’ कहा करता है और सामान्यतः यह इसमें विश्वास रखता है कि वह भी उसके प्रति प्रेमभाव रखता होगा। बहुत से सूफ़ियों की तो यहाँ तक मान्यता है कि परमात्मा का ऐसा प्रेम उसका कोरा ‘अनुग्रह’ मात्र ही न होकर ठीक ‘सांसारिक प्रेम’ जैसा भी हो सकता है। जो हो, वे लोग इसी दृष्टिकोण के अनुसार मानवीय प्रेम को उस आध्यात्मिक प्रेम की दशा तक पहुँचने का समर्थ साधन मानते हैं। जामी ने एक स्थल पर स्पष्ट शब्दों में कहा है “इस संसार में तुम चाहे सैकड़ों उपाय करो, किंतु एक मात्र प्रेम ही ऐसा है जो तुम्हारे ‘अहंभाव’ से तुम्हारी रक्षा कर सकता है, तुम्हें सांसारिक प्रेम से मुक्त मोड़ने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि वही तुम्हें परम सत्य तक पहुँचने में सहायक होगा^२।” ‘इश्क़ मजाजी’

1. Hujwiri : Kashfal-Mahjub (Nicholson's Translation, (London, 1911) pp. 307-8.
2. E. G. Browne : A Literary History of Persia (Cambridge, 1928) P. 442.

मे और 'इश्क हक्कीकी' में कोई वास्तविक अन्तर नहीं है जिस कारण, पहला दूसरे तक पहुँचने का स्वाभाविक सोपान भी बन जा सकता है। उपर्युक्त प्रेमगाथाओं के रचयिता सूफ़ी कवियों की इस मान्यता के प्रति पूर्ण आस्था रही। इसीलिए उन्होंने ईश्वरीय प्रेम की उपलब्धि के लिए किये जाने वाले प्रयासों को उदाहृत करने के उद्देश्य से अपनी उपर्युक्त सरस कृतियों का निर्माण किया।

ऐसे प्रयासों अथवा साधनाओं को सूफ़ियों ने परमात्मा की ओर की जाने वाली किसी अपूर्व यात्रा के रूप में चित्रित किया है। उनके अनुसार प्रत्येक ऐसा साधक 'सालिक' वा यात्री की भाँति, अपने मार्ग का अग्रसर हुआ करता है। अल् गज़ाली का कहना है कि "परमात्मा (अल्लाह) सत्तर सहस्र पदों के भीतर है जिनमें से कुछ प्रकाशमय तथा शेष अन्धकारमय हैं और यदि वह उन आवरणों को हटा लेवे तो जिस किसी की भी दृष्टि उस पर पड़ेगी वह उसके प्रखर प्रकाश द्वारा दग्ध हो जायगा^१।" जन्मग्रहण करने के अनन्तर हम प्रकाशमय पदों की ओर से क्रमशः अन्धकारमय पदों की ओर आते हैं और हमारा एक-एक ईश्वरीय गुण कम होता जाता है, किंतु वे ही हम, जब उसकी ओर एक 'सालिक' के रूप में प्रत्यावर्तन करने लगते हैं तो इसके विपरीत, उसके 'नूर' की ओर बढ़ते चले जाते हैं। ऐसी दशा में हमें उस ओर विभिन्न सात सोपानों से होकर क्रमशः जाना पड़ता है और फिर अंत में, चार अन्य स्थितियों को भी पार करना पड़ जाता है। सूफ़ियों ने सप्त सोपानों को क्रमशः 'अनुताप', 'आत्मसंयम', 'वैराग्य', 'दारिद्र्य', 'धैर्य', 'आस्था' और 'संतोष' के रूपों में माना है और शेष चार को अपने शब्दों में, उसी प्रकार, 'मारिफ़त' (बुद्धि प्रसूत ज्ञान), 'इश्क' (प्रेम), 'वज़द' (उन्मादना) एवं 'वस्ल' (मिलन) जैसे नाम दिये हैं। इनमें अन्तिम तीन दशाओं में मादन भाव का भी अंश वर्तमान रहा करता है जो क्रमशः सूक्ष्मतर होता चला जाता है। इसीलिए इनके वर्णनों में स्वभावतः उन बातों का भी समावेश हो जाता है जिनका रागरंग अथवा उन्मुक्त विलासिता-जन्य मस्ती से सम्बंध है तथा 'इश्क

1. Al Ghazali : Mishkatul Anwar Translated by W. H. T. Gairdener pp. 88-9.

मज़ाजी' और 'इश्क़ हकीकी' के तत्त्वतः एक समझे जाने का यही रहस्य भी हो सकता है ।

प्रेममार्ग की इस अनुपम यात्रा को सांसारिक प्रेमियों के जीवन में घटाते समय, उसकी प्रायः सभी बातों पर ध्यान दिया जाता है । ऐसे प्रेमी के लिए उसका प्रेम-पात्र परम सौन्दर्य का आधार बन जाता है जिसकी ओर वह आपसे आप आकृष्ट हो पड़ता है । फिर उसे प्राप्त कर लेने के यत्नों में लग जाता है । ऐसा करते समय वह किसी न किसी रूप में, उन सारी दशाओं में भी आता चला जाता है जिनकी गणना उक्त सप्त सोपानों तथा चार स्थितियों के अन्तर्गत की गई है । जिन दशाओं को मत्त सोपान कहा गया है वे वस्तुतः एक प्रेमी के लिए कतिपय नैतिक गुण जैसे बन जाते हैं और उनके कारण उसके जीवन में एक विचित्र परिवर्तन भी आ जाता है । उसका अपने कार्य की सिद्धि के लिए दृढ़व्रती बन जाना, अपूर्व साहस से काम लेना तथा यत्नशील हुए रहना, सब इसी बात के द्योतक हैं । फिर इसी प्रकार, उसका क्रमशः प्रेमावेश की मस्ती में आकर निर्द्वन्द्व सा बन जाना तथा अपने 'उम यत्न की ही दशा में, अपने को नष्ट तक कर डालने से मुँह न मोड़ना उसके ऐसे अलौकिक गुणों का परिचय देते हैं जो साधारणतः दुर्लभ ही कहे जा सकते हैं । सांसारिक प्रेमियों के जीवन में हम प्रायः ऐसे अनेक संकटों का भी आता जाना देखते हैं जो उन्हें कभी-कभी विचलित सा कर देते जान पड़ते हैं और हमें ऐसा लगता है कि इनके कारण, वे अपने यत्नों से सर्वथा विरत हो जायेंगे । परंतु हमें यह देखकर अत्यन्त आश्चर्य भी होने लगता है कि वे अंत में, इनकी पूरी उपेक्षा कर देते हैं और अपनी सिद्धि के लिए मर मिटते हैं । सूफ़ी प्रेमगाथाओं के कवियों ने अपनी रचनाओं के अन्तर्गत, ऐसे विविध संकटों और बाधाओं के भी स्पष्ट वर्णन किये हैं । उन्होंने इसके साथ यह भी बतला दिया है कि उनके एकान्तनिष्ठ प्रेमियों ने किस प्रकार अत तक अपना व्रत निभाया ।

सूफ़ी कवियों ने अपनी ऐसी रचनाओं के निर्माण-कार्य को भी बहुत बड़ा महत्त्व प्रदान किया । उन्होंने इसमें पूर्ण सफलता का प्राप्त कर लेना अत्यन्त कठिन समझा, जिस कारण उन्होंने इसके लिए सर्वप्रथम परमात्मा की स्तुति की, हज़रत मुहम्मद तथा उनके परवर्ती चार खलीफ़ाओं का गुणानुवाद किया और

अपने पीर का परिचय देकर उसके प्रति भी पूरी श्रद्धा प्रदर्शित की। उन्होंने ऐसा करते समय बराबर इस बात की ओर भी ध्यान रखा कि अपने समकालीन बादशाह वा शासक की भी प्रशंसा कर दें और तब कही, अपना परिचय देते समय, अपने उद्देश्य अथवा वर्ण्य विषय की कुछ चर्चा करें। अपनी इन रचनाओं के लिए वे या तो किसी पूर्व प्रचलित कहानी का कथानक ले लिया करते थे अथवा इसके लिए अपनी कल्पना का प्रयोग करते थे। परन्तु, प्रत्येक दशा में, वे अपने पूर्व निश्चित नियमों का ही अनुसरण करते दीख पड़ते थे। उनके इस प्रकार परंपरा का पालन करते आने के कारण, एक विशिष्ट रचना-पद्धति का रूप निखरता चला आया। उनका यह कार्य सूफ़ीमत की प्रेमप्रणाली वा प्रेमसाधना के स्पष्टीकरण और प्रचार का उद्देश्य रखता था जिस कारण, यह उनके अपने एक श्रेष्ठ कर्तव्य की कोटि का भी समझा जा सकता था। एक उत्कृष्ट आध्यात्मिक जीवन का स्वरूप निरूपित करने की दृष्टि से यह उनके लिए सर्वथा धार्मिक ही कहा जा सकता था। अतएव इसके लिए किसी सांसारिक प्रेमकहानी की रचना करते समय उन्हें स्वभावतः कुछ न कुछ अनौचित्य का भी बोध हो सकता था। सूफ़ी कवियों ने इसी कारण, बराबर इस बात की भी चेष्टा की कि उसका रूप अंत में, किसी रूपक वा उपमिति कथा का ही जान पड़े। इसके लिए उन्होंने इनमें प्रसंगवश अपने सिद्धान्तों का समावेश किया तथा कभी-कभी उक्त गूढ़ रहस्य का उद्घाटन तक भी कर दिया।

(३)

सूफ़ीमत का प्रवेश भारत में सर्वप्रथम, कब और कैसे हुआ इसका निश्चित पता नहीं चलता। परन्तु इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता कि इस्लाम धर्म यहाँ पर मुहम्मद बिन कासिम द्वारा सिंध का आक्रमण किये जाने अर्थात् सन् ७११ ई० तक अवश्य पहुँच गया था। अरब देश के व्यापारियों के साथ मालाबार के समुद्र तट पर तथा कदाचित्, पेशावर की ओर भी ऐसे धर्मोपदेशकों का तब तक आकर अपने धर्म का प्रचार करने लगना और वहाँ इसका न्यूनाधिक प्रभाव का पड़ने लगना भी प्रसिद्ध है। फिर भी, जहाँ तक सूफ़ीमत के यहाँ तक पहुँच पाने का सम्बंध है, यह घटना संभवतः ईसवी सन् १००० के पहले

नहीं घट सकती थी। इसके प्रचार की चेष्टा करने वाले धर्मप्रचारकों में सर्व-प्रथम नाम बहुधा शेख इस्माइल का लिया जाता है जो सन् १००५ ई० में, लाहौर में आये थे^१। किंतु इनका भी पूरा परिचय नहीं मिलता। केवल इतना ही पता चलता है कि वे एक प्रभावशाली व्यक्ति थे और उन्होंने बहुत से लोगों को धर्मान्तरित भी किया था^२। निश्चित रूप में यहाँ सूफ़ीमत का प्रचार आरंभ करने वाले अल्-हुज्जिवरी ही कहे जा सकते हैं जो सन् १०३६ ई० में यहाँ एक वंदी के रूप में पहुँचे थे। ये अफ़गानिस्तान देश के ग़ज़नी नगर के निवासी थे और एक बहुत बड़े विद्वान् एवं धर्माचार्य भी थे। इन्होंने अपना जीवन, अविवाहित रूप में तथा धर्मप्रचार करते-करते ही यापन किया। इन्होंने अपने समय तक प्रचलित सूफ़ीमत की रूपरेखा को फ़ारसी भाषा के माध्यम द्वारा प्रस्तुत करने का सर्वप्रथम श्रेय भी, यहीं पर प्राप्त किया। इन्हीं का लिखा हुआ 'कश्फ़ुल महज़ूब' नामक वह प्रसिद्ध ग्रंथ है जिसकी चर्चा इसके पहले की जा चुकी है तथा जिसके रचनाकाल का लगभग सन् १०५० ई० में होना अनुमान किया जाता है।

अल्-हुज्जिवरी के जीवन-काल तक सूफ़ी कवियों द्वारा रची जाने वाली प्रेम-गाथाओं की परंपरा, कदाचित् प्रतिष्ठित भी नहीं हो पायी थी। सूफ़ीमत के प्रचारक उस समय तक अधिकतर अपने छोटे-बड़े निबंधों जैसे कुछ ग्रंथों द्वारा ही काम लेते आ रहे थे। वे इनमें अपने मत का निरूपण करते, उसके विविध अंगों की विस्तृत व्याख्या कर देते तथा कभी-कभी, उसके अनुसार आध्यात्मिक जीवन-यापन करने वाले प्रसिद्ध महापुरुषों का परिचय देकर भी अतनी बातों का समर्थन किया करते थे। ऐसे ग्रंथ बहुधा अरबी भाषा में ही लिखे जाते थे और इन्हें प्रायः धर्म पुस्तकों जैसा महत्व भी दिया जाता था। ईराक़ देश में सूफ़ीमत का प्रचार हो जाने पर इसके लिए फ़ारसी भाषा का भी प्रयोग आरंभ हो गया और बहुत से सूफ़ी इसमें अपनी कविताओं की रचना तक करने लग गए। इस समय तक इस मत के क्रमिक विकास का 'आचरण प्रधान' प्रथम

1. T. W. Arnold : The Preaching of Islam (1935) P. 280

२. गुलाम सरवर : ख़जीनतुल असफ़िया (लाहौर) भाग २ पृ० २३०।

युग व्यतीत हो चुका था और इसका 'चितन प्रधान' द्वितीय युग भी समाप्त होने लगा था तथा इसके उस तृतीय युग का आरंभ हो गया था जिसमें इसके 'तुलनात्मक अध्ययन' की भी एक विशिष्ट परंपरा चल निकली और इसके प्रचारकों ने इसे मूल इस्लाम धर्म की परिधि के भीतर प्रतिष्ठित कर देने की भी चेष्टा आरंभ कर दी। अल् हुज़िवरी ऐसे ही लोगों में से अन्यतम थे और इसी प्रकार के यत्न पीछे अल् गज़ाली आदि के द्वारा भी किये गए। फ़ारसी कवियों ने, इनके साथ सहयोग करते समय, अपनी सरस रचनाओं से भी पूरा काम लिया और इस प्रकार उन्होंने एक विशाल सूफ़ी काव्य-साहित्य की सृष्टि कर दी। जब अल् हुज़िवरी के अनन्तर, भारत में सूफ़ीमत की लोकप्रियता बढ़ी और उसके चिश्तिया, सुहर्वदिया तथा कादिरिया जैसे कई संप्रदायों द्वारा उसके प्रचार-कार्य को विशेष बल मिला तो यहाँ के सूफ़ियों में वैसी काव्य-रचना की प्रवृत्ति भी स्वभावतः जग उठी और न केवल फ़ारसी, अपितु यहाँ की स्थानीय भाषाओं तक के माध्यम आपसे आप अपनाये जाने लगे। जब ईरान में फ़ारसी की प्रेम-गाथाओं की रचना होने लगी तो उनके अनुकरण में, यहाँ के सूफ़ी कवियों में वैसी शैली को भी प्रश्रय देना आरंभ कर दिया।

'कश्फूल महज़ूब' की रचना के एक सौ से भी अधिक वर्षों के अनन्तर उधर निज़ामी ने अपनी प्रेमगाथाओं का लिखना आरंभ किया और इसके लगभग डेढ़ सौ वर्ष पीछे यहाँ पर अमीर ख़ुसरो ने अपनी रचनाओं द्वारा उसका अनुकरण किया। अमीर ख़ुसरो के अनन्तर फिर कुछ अन्य भारतीय फ़ारसी कवियों ने भी ऐसी प्रेमगाथाओं को लिखने का प्रयास किया जिनमें से एक अर्थात् मौलाना जमीरी बिलग्रामी (मृ० सन् १५९४ ई०) ने बादशाह हुमायूँ के शासन-काल में, अपनी 'लैला व मजनूँ' अथवा 'सर गुजश्त मजनूँ' का प्रणयन किया^१। इसी प्रकार दूसरे कवि फ़ैज़ी (मृ० सन् १५९५ ई०) ने सम्राट् अकबर के शासन-काल में अपनी प्रसिद्ध प्रेमकथा 'नलदमन' को, 'महाभारत' के 'नलोपाख्यान' का

-
1. M. A. Ghani : A History of Persian Language and Literature at the Mughal Court, Part II Humayun (Allahabad 1930) p. 104.

आधार ले कर पूरा किया। फ़ैज़ी कवि को तो सम्राट् अकबर ने सन् १५८५ ई० में निज़ामी के 'पंजगंज' के अनुकरण में, कोई खम्स लिखने का भी परामर्श दिया था और इसके लिए पाँच ग्रंथ भी चुन लिये गए थे, किंतु उनमें से केवल 'नलदमन' को समाप्त करने पर ही इस कवि की मृत्यु हो गई। इस प्रेमाख्यान के अन्तर्गत राजा नल और उनकी रानी दमयन्ती की प्रसिद्ध कहानी कही गई। इसकी आलोचना करते हुए मुल्ला बदायूनी ने बतलाया है, "यह सच है कि ऐसी मसनवी इन तीन सौ वर्षों में, 'खुसरो शीरी' के बाद हिंद में शायद ही किसी ने लिखी हो।" फ़ैज़ी की इस रचना में, अमीर खुसरो की मसनवियों से भी कहीं अधिक भारतीय वातावरण के चिह्न लक्षित होते हैं। इसे इस कारण भी विशेष महत्त्व दिया जा सकता है कि उस कवि ने इसका कथानक भी भारतीय कथा-परंपरा से ही गृहीत किया है। परंतु फिर भी वह न तो फ़ारसी भाषा के प्रयोग का मोह त्याग सका है, न एक भारतीय प्रेमाख्यान को 'ईरानी मसनवी' का रूप दे डालने से ही विरत रहा है। इस दूसरी बात के उदाहरण हम उन 'हिंदवी' की रचनाओं में भी पाते हैं जो भारत के दक्षिण प्रदेश में लिखी गई है। उनमें से 'चंद्र बदन व महियार' को 'मुकीम' ने सन् १६२५ ई० और १६३५ ई० के भीतर किसी समय लिखा था। उसके पहले 'कदम राव व पदम' सन् १४५७ ई० तथा 'कुतुब मुश्तरी' सन् १६०९ ई० की रचना हो चुकी थी। इन सभी के कथानक भी भारतीय प्रेमकहानियों की घटनाओं से ही सम्बद्ध थे, किंतु इनमें से सभी पर फ़ारसी की मसनवी-पद्धति की ही पूरी छाप लगी रह गई।

फ़ारसी की मसनवी-पद्धति से तो वस्तुतः उत्तरी भारत के भी वे सूफ़ी कवि अपने को नहीं बचा सके जिन्होंने अपनी प्रेमगाथाओं को इधर की अवधी में लिखा तथा जिन्होंने दक्खिनी 'हिंदवी' वालों से कहीं अधिक भारतीय प्रसंगों को भरसक सुरक्षित रखने की भी चेष्टा की। इन्होंने भी उसी प्रकार अपनी रचनाएँ परमात्मा की स्तुति से आरंभ की, हज़रत मुहम्मद के अलौकिक 'नूर' का गुणगान किया, उनके परवर्ती खलीफ़ाओं की स्तुतियों में दो-चार शब्द कहे तथा अपने

पीरों की प्रशंसा में भी बहुत कुछ लिख डाला । इन्होंने उसी शैली के अनुकरण में अपने 'शाहेवक्त' का भी वर्णन किया तथा फिर पुस्तक के बीच-बीच में प्रेम-साधना के स्वरूप की ओर संकेत किया । इसके सिवाय जब कभी इन्होंने अपना परिचय देना चाहा उस समय भी, इन्होंने बहुधा यही यत्न किया कि स्वयं अपने को किसी प्रसिद्ध सूफ़ी संप्रदाय के साथ सम्बद्ध सिद्ध करें तथा अपनी रचना का उद्देश्य भी मसनवी-पद्धति जैसा ही प्रकट करें । इनमें से एकाध कवि हमें ऐसे भी मिल जाते हैं जिनका लक्ष्य इस्लाम धर्म के विशिष्ट महत्व तथा उसके सामने अन्य धर्मों की हीनता स्थापित करने का जान पड़ता है और ये कभी-कभी अपने को उसका प्रचारक होना तक स्वीकार करने में नहीं चूक पाते । परंतु इन जैसी अनेक बातों के होते हुए भी, इन सूफ़ी कवियों का झुकाव बहुत कुछ भारतीय परंपराओं के अनुसार की ओर ही होता जान पड़ता है । ऐसा करते समय, ये बहुत अंशों तक उनके प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट करते हुए से भी प्रतीत होते हैं । इनमें से बहुत से कवि हमें ऐसे ही मिला करते हैं जिन्होंने यहाँ के धर्म, समाज, साहित्य एवं संस्कृति को भरसक उनके अपने वास्तविक रूप में ही, चित्रित करने का प्रयास किया है तथा इनके विषय में अपना अच्छा ज्ञान भी होना सिद्ध कर दिया है । इनकी एक विशेषता इस बात में भी लक्षित होती है कि ये अधिकतर या तो अपने कथानकों को लोकप्रचलित कहानियों से ग्रहण करते हैं अथवा यदि कभी अपनी कल्पना से काम लेते या ऐतिहासिक तथ्य के ऊपर अपना रंग चढ़ाते हैं तो वहाँ पर भी, ये हमें अपनी उसी मनोवृत्ति का परिचय देते हैं जो किसी स्थानीय वातावरण के साथ उपयुक्त संगति बनाये रखने में प्रदर्शित की जा सकती है । इसके सिवाय इनकी भाषा में पाये जाने वाले संस्कृतनिष्ठ तत्सम एवं तद्भव शब्दों की प्रचुरता, मुहावरों तथा कहावतों के सटीक प्रयोग, परंपरागत काव्यरूढ़ियों की स्वीकृति एवं छंदों का व्यवहार आदि भी कुछ ऐसी बातें हैं जो इन्हें उनसे पृथक् कर देती हैं ।

सारांश यह कि उत्तरी भारत के हिन्दी सूफ़ी प्रेमालखानों में हमें कतिपय ऐसी विशेषताएँ देख पड़ती हैं जो इन्हें भारतीय प्रेमालखानों की प्राचीन काल से आती हुई परंपरा के भी बहुत निकट ला देती हैं । दक्खिनी हिन्दी अथवा 'हिदवी'

की ऐसी उपलब्ध रचनाओं के साथ इनकी तुलना करते समय हमें पता चलता है कि ये उनसे कम से कम लगभग ८० वर्ष पहले लिखे जाने लगते हैं। इनमें से सबसे पहली प्रेमगाथा जो उपलब्ध हो सकी है वह 'चंदायन' है जिसका रचना-काल हि० सन् ७८१ वा ७७९ दिया हुआ मिलता है जो ईसवी सन् के अनुसार क्रमशः सन् १३७९ वा १३७७ ई० कहा जा सकता है। इसकी रचना का स्थान डलमऊ 'नयर' वा नगर (जि० रायबरेली) है जो उत्तर प्रदेश के प्रायः उस क्षेत्र से अधिक दूर नहीं जो पटियाली (जिला एटा) में जन्मग्रहण करने वाले अमीर खुसरो कवि का था। अमीर खुसरो का देहान्त सन् १३२५ ई० में हुआ था। इस प्रकार उसके द्वारा रची गई फ़ारसी मसनवियाँ उस समय तक अवश्य प्रचलित और प्रसिद्ध भी हो चुकी होंगी जिस समय मुल्ला दाऊद ने 'चंदायन' की रचना की। परंतु, फिर भी यह कवि अपने उस परम योग्य समानधर्मा का अक्षरशः अनुकरण करना अपना कर्तव्य नहीं समझता। यह न केवल अपनी उस कृति के अन्तर्गत केवल अवधी भाषा को ही अपनाता है, अपितु इसके साथ साथ यह उसके लिए एक ऐसा कथानक भी चुन लेता है जो साधारण भारतीय समाज की कहानियों में उपलब्ध है तथा जिसके साथ सूफीमत वा सूफी साहित्य का कोई प्रत्यक्ष मेल भी नहीं हो सकता, न इसी कारण, उनके प्रचार-कार्य में किसी प्रकार की समुचित सहायता ही ली जा सकती है।

दक्खिनी हिंदी वा 'हिंदवी' के सर्वप्रथम कहे जाने वाले प्रेमाख्यान 'कदम रोव व पदम' के विषय में हमें यथेष्ट विवरण उपलब्ध नहीं है। केवल इतना ही बतलाया जाता है कि इसकी रचना सन् १४५७ ई० में हुई होगी जो समय उक्त 'चंदायन' के रचना-काल से प्रत्यक्षतः पीछे चला जाता है। इसके अनन्तर लिखे गए ऐसे प्रेमाख्यानों में से 'क़ुतुब मुश्तरी' का आधार, उसके कवि ने अपने समय के शाहजादा मुहम्मद कुली की एक प्रेमकहानी को प्रायः उसी प्रकार बनाया है जिस प्रकार उत्तरी भारत के अमीर खुसरो ने अपनी 'दुबल देवी व ख़िज़्र ख़ां' नामक फ़ारसी रचना का निर्माण करते समय किया था। यह लगभग उसी प्रकार, उसे एक विचित्र काल्पनिक रूप देने तथा मसनवी शैली में ढालने का भी यत्न करता है। इसके सिवाय उसके अनन्तर जो प्रेमगाथा 'चंदर बदन व माहियार' नाम से

लिखी जाती है उसमें लोकजीवन को चित्रित करते समय भी इस्लाम धर्म की महत्ता सिद्ध की जाने लगती है ।

अतएव, हमें यह बात कुछ विचित्र-सी भी लग सकती है कि एक ओर जहाँ उत्तरी भारत का सूफ़ी प्रेमाख्यान-कवि मुल्ला दाऊद अपने निकट उपलब्ध होने वाले अमीर खुसरो के रचनादर्श का अनुसरण न करके इधर की भारतीय परंपरा को प्रश्रय देता है, वहाँ दक्खिनी 'हिंदवी' के वैसे कवि उसका पालन अधिक दूरवर्ती होते हुए भी, प्रायः अक्षरशः करने लग जाते हैं । ये लोग संभवतः अपने क्षेत्र में प्रतिष्ठित वैसे परंपरा की ओर से भी आँखें मूँद लेना ठीक समझते हैं जो नल एवं दमयन्ती तथा उपा एवं अनिरुद्ध अथवा रुक्मिणी एवं कृष्ण की पौराणिक कथाओं को लेकर प्रतिष्ठित थी और जो उनके निकट बोली जाने वाली कन्नड़ एवं मराठी भाषाओं में संस्कृत के आधार पर लिखी जाने वाली प्रेमगाथाओं के कारण, उनके कुछ पहले से ही चल निकली थी । परंतु उत्तरी भारत के एक दरबारी कवि फ़ैज़ी का ध्यान अपनी फ़ारसी की रचना के लिए भी, उनकी ओर आप से आप आकृष्ट हो जाता है और वह अपनी उस 'नल दमन' नामक मसनवी की रचना कर देता है जिसकी चर्चा इसके पहले भी की जा चुकी है ।

(४)

'हिंदवी' वाले दक्खिनी सूफ़ी प्रेमाख्यानों तथा उत्तरी भारत वाली वैसे अवधी की प्रेमगाथाओं में जो उपर्युक्त अन्तर लक्षित होता है उसका एक प्रत्यक्ष कारण यह हो सकता है कि, प्रथम वर्ग वाली रचनाओं के लिए जहाँ उनकी भाषा में कोई रचना-शैली की पूर्व प्रचलित परंपरा नहीं थी, वहाँ द्वितीय वर्ग वाली कृतियों के लिए वैसे रचना-शैली का एक आदर्श बहुत पहले से ही प्रतिष्ठित हो चुका था । 'हिंदवी' दक्खिनी भारत की ओर मुस्लिम शासकों के साथ गई थी और वह अधिकतर बोलने की व्यावहारिक भाषा के ही रूप में चालू हुई थी । मुस्लिम धर्मोपदेशकों ने उसे वहाँ, अपने धर्म-प्रचार का भी माध्यम बनाकर व्यवहार में लाना आरंभ किया । उस क्षेत्र के लिए बहुत कुछ विदेशी होने के कारण, वे किसी ऐसी साहित्यिक शैली को अपनाने में असमर्थ रहे जो वहाँ के लिए

सर्वथा परिचित कही जा सकती थी। इसके सिवाय अभी तक यह भी पता नहीं चल सका है कि उनके द्वारा प्रयुक्त भाषा में उस काल तक कोई रचना भी कहीं प्रस्तुत की जा सकी थी या नहीं, प्रत्युत इस सम्बंध में बहुधा यही अनुमान किया जाता है कि उसके मूल रूप वाली 'कौरवी' भी तब तक केवल बोलचाल की ही भाषा रही थी। परंतु ठीक यही बात हम उत्तर वाली अवधी के लिए भी नहीं कह सकते। इसके विषय में डॉ० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या का अनुमान है कि "ईसवी सन् की बारहवीं शताब्दी के मध्यकाल तक यह भाषा लगभग उस कोटि तक विकसित हो चुकी थी जिस तक यह इस समय भी दीख पड़ती है^१" और तदनुसार दामोदर की उपलब्ध रचना 'उक्ति व्यक्ति प्रकरण' के अन्तर्गत उन्हें 'पूर्ण विकसित कोसली' का रूप दीख पड़ा है। इसी प्रकार, 'प्रिस ऑफ़ वेल्स म्यूज़ियम (बंबई)' में सुरक्षित एक शिलालेख के आधार पर पढ़ी गई किसी 'राउल वेल' (राजकुल विलास) नामक रचना के विषय में, डॉ० माता प्रसाद गुप्त ने अनुमान किया है कि वह कदाचित् 'उक्ति व्यक्ति प्रकरण' के भी पहले निर्मित हुई होगी तथा उसमें वर्णित नखशिख जैसे विषय को देखकर हम यह भी कह सकते हैं कि उसके रचना-काल तक 'सरस काव्य' भी रचे जाते रहे होंगे। डॉ० गुप्त के अनुमान से यह रचना ईसवी सन् की ग्यारहवीं शताब्दी की हो सकती है और इसकी भाषा भी प्रधानतः पुरानी 'दक्षिण कोसली' है^२।

वास्तव में, यदि मुल्ला दाऊद के पहले से ही 'कोसली' अथवा अवधी में कोई साहित्यिक रचना-पद्धति प्रतिष्ठित हो चुकी थी और उसके अनुसार इसमें 'राउल वेल' जैसी शृंगाररस से सम्बद्ध रचनाएँ प्रस्तुत की जा रही थीं, उस दशा में कदाचित्, हमारा यह अनुमान कर लेना भी अनुचित न समझा जाय कि इस

-
१. दामोदर : उक्ति व्यक्ति प्रकरण (भारतीय विद्याभवन, बम्बई, सन् १९५३ ई० के भूमिका भाग में डॉ० चाटुर्ज्या का अंग्रेजी लेख, पृ० ७०)
 २. 'हिन्दी-अनुशीलन' (भारतीय हिन्दी परिषद्, प्रयाग) के 'धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक' (१९६० ई०) में प्रकाशित डॉ० गुप्त का रोडा कृत 'राउलवेल (राजकुल विलास)' शीर्षक लेख, पृ० २१-३८।

भाषा के माध्यम द्वारा, उस समय तक दो-चार प्रेमकहानियाँ भी लिखी या रची गई होंगी। इसके लिए हमें एक समर्थन इस बात से भी मिल जाता है कि प्रेम-गाथाओं की एक ऐसी परंपरा को अपभ्रंश काल से ही कोई न कोई रूप मिल चुका था। जैन कवियों में से कुछ ने 'चरिउ' काव्यों की रचना करके उनमें से अधिकांश में प्रेमाख्यानकों की वर्णन-शैली का सूत्रपात कर दिया था। वैसी रचनाओं के अन्तर्गत कभी नायक एवं नायिका के परस्पर एक दूसरे के प्रति आकृष्ट हो जाने तथा उसके साथ सम्मिलन के लिए यत्नशील हो पड़ने और कभी-कभी उसके लिए सिंहल तक की यात्रा करने एवं कष्ट भोगने की कथाएँ आ जाती हैं। इसवी सन् की दसवीं शताब्दी में पुष्पदन्त द्वारा रचित 'णाय कुमार चरिउ' (नागकुमार चरित) के अन्तर्गत चित्रदर्शन के आधार पर प्रेमोत्पत्ति का होना तक निर्देश किया गया मिलता है। संभवतः ग्यारहवीं शताब्दी में रचे गए कवि 'चाहिल' के 'पउमसिरी चरिउ' (पद्मश्री चरित) में प्रेमपरक विह्वलता एवं विरहयातना का सजीव चित्रण किया गया देख पड़ता है तथा बारहवीं शताब्दी में हरिभद्र द्वारा निर्मित 'सनत्कुमार चरित' के अन्तर्गत प्रेमासक्ति, यत्न एवं बाधा-सम्बन्धी विविध घटनाओं की योजना भी लगभग उसी प्रकार की गई मिलती है जो सूफ़ी प्रेमाख्यानों की विशेषता है। इसके सिवाय, संभवतः हरिभद्र के ही समकालीन मुस्लिम कवि अद्दहमाण (अब्दुर्रहमान) द्वारा रचित प्रसिद्ध 'संदेश रासक' नामक प्रेमकाव्य में हमें उस विरह-संदेश का भी एक उत्कृष्ट उदाहरण मिल जाता है जिसका वर्णन हिन्दी के सूफ़ी कवियों ने किया है। अपभ्रंश वाले 'चरिउ' काव्यों में हमें उस चौपाई-दोहा पद्धति के अनुसार लिखी जाने वाली प्रेमगाथा का भी आदर्श मिल जाता है जो विशेषकर अवधी में निर्मित हुई और जिसकी एक स्पष्ट परंपरा प्रायः फ़ारसी की मसनवियों जैसी ही चल पड़ी। मुल्ला दाऊद के लिए ये सभी बातें पथ-प्रदर्शन कर सकती थीं और तदनुसार निर्मित साँचे में वह अपनी 'चंदायन' वाली लोकगाथा को ढाल भी सकता था। राजस्थानी हिन्दी के दामो कवि ने भी, अपनी प्रेमकथा 'लखमसेन पद्मावती' की रचना करते समय, पीछे इसी रचना-शैली को न्यूनाधिक अपनाना आवश्यक समझा और मुल्ला दाऊद के परवर्ती सूफ़ी प्रेमगाथा कवियों के लिए तो यह अनिवार्य

मान कर सकते हैं कि उक्त पाँच वर्गों में से एक से अधिक के उदाहरण, केवल एक ही कथा के अन्तर्गत एकत्र मिल जाते रहे होंगे। यदि हम एक मात्र नल एवं दमयन्ती की प्रेमकथा पर ही विचार करने लगे तो भी पता चलेगा कि एक ओर जहाँ इन दोनों प्रेमियों के प्रथम जागृत प्रेम वा पूर्वानुराग को हम 'विशुद्ध प्रेम' की कोटि में रख सकते हैं। उन दोनों के बीच वैवाहिक सम्बंध हो जाने के पहले वाले उनके यत्नों तथा उनकी दशाओं को वैसे प्रेमियों के उत्कृष्ट प्रेमव्यापारों में स्थान दे सकते हैं, वहाँ उन दोनों के एक दूसरे से वियुक्त हो जाने अथवा एक साथ रहने की दशाओं के आधार पर हम उपर्युक्त दाम्पत्यप्रेम को भी उदाहृत कर सकते हैं। इसके सिवाय वियोगावस्था में प्रेमिका पत्नी दमयन्ती के प्रति कामासक्ति का भाव प्रकट करने वाले व्यक्तियों की ओर जो उसका तिरस्कार पूर्ण भाव व्यक्त हुआ है तथा जिस प्रकार उसने अपनी परीक्षा लेने वालों के प्रति कठोर उपेक्षा का भाव प्रदर्शित किया है उसमें स्पष्ट है कि इस कथा पर आधारित प्रेमालयान को हम उपर्युक्त पातिव्रतपरक प्रेम के भी उपयुक्त उदाहरणों में स्थान दे सकते हैं। इसी प्रकार जिस पूर्व प्रचलित लोरिक एवं चंदा की लोकगाथा का मुल्ला दाऊद ने अपने प्रेमालयान 'चंदायन' का आधार स्वीकार किया उसके भीतर भी हमें इनमें से एक से अधिक वर्गों का समावेश किया गया दीख पड़ेगा और वहाँ पर हमें ऐसा भी प्रतीत हो सकता है कि उसमें कोई गूढ़ रहस्य भी निहित है। 'चंदायन' वाली प्रेमकहानी उन दिनों कदाचित्, अधिकतर अपने मौखिक रूप में ही प्रचलित रही, जहाँ ऐसी अन्य उपर्युक्त कथाओं का पता किन्हीं पुराणों, काव्य-ग्रंथों, कथानक रचनाओं अथवा धार्मिक पुस्तकों तक में लगाया जा सकता था। सूफ़ी प्रेमगाथाओं के कवियों का उद्देश्य, अपनी ऐसी रचनाओं द्वारा अपने मत का सर्व साधारण में प्रचार करना भी रहा जिस कारण, उनके लिए यह अधिक स्वाभाविक था कि वे भरसक इनके लिए केवल ऐसे कथानकों को ही चुनें जो पूर्व प्रचलित एवं लोकप्रिय भी कहे जा सकते हों और जिनकी ओर इसी कारण, वे अपने पाठकों वा श्रोताओं का ध्यान सुगम रूप में आकृष्ट कर उन पर यथेष्ट प्रभाव भी डाल सकते रहे हों। फ़ारसी के कवि अमीर खुसरो ने इस सम्बंध में, बहुत कुछ ईरान के कवि निज़ामी का अनुसरण करना उचित समझा। उसने अपनी

ऐसी रचनाओं का माध्यम उन प्रेमकथाओं को ही बनाया जिन्हें उस कवि ने भी अपनाया था और संभवतः एक दरबारी कवि के नाते, उसका ध्यान इस बात की ओर भी चला गया कि हम अपने आश्रयदाता को भी किसी आदर्श प्रेमी के ही रूप में चित्रित कर डालें। दक्खिनी 'हिंदवी' के ऐसे कवियों में से 'कुतुबमुश्तरी' के रचयिता मुल्ला वज़ही का ध्यान भी, कदाचित् अपने आश्रयदाता को प्रसन्न करने की ही ओर गया तथा अपनी 'सबरस' नामक प्रेमगाथा के द्वारा भी उसने किसी विदेशी फ़ारसी कवि का ही अनुसरण किया। यदि उसके अतिरिक्त अन्य ऐसे कवियों ने स्थानीय प्रेमकथाओं को महत्व दिया अथवा वैसी काल्पनिक कहानियाँ गढ़ीं, उस दशा में वे भी केवल इतना ही कर सके कि उन्हें उन्होंने फ़ारसी भाषा का जामा न पहना कर, अपनी 'हिंदवी' में निर्मित कर दिया। इस दशा में भी उन्होंने भरसक फ़ारसी के ही छंदों से काम लिया तथा उस रचना-शैली का ही अनुकरण किया जिसे फ़ारसी कवियों ने उन्हें उत्तरी भारत के हिंदी वाले सूफ़ी कवियों की भाँति, इतना और भी न सूझ सका कि हम अपनी प्रेमगाथाओं का रूप यहाँ की पूर्व प्रचलित ढाँचों में ढाल देने का यत्न करें और, इस प्रकार उन्हें अधिक लोकप्रिय बन जाने का समुचित अवसर भी प्रदान कर दें।

दक्खिनी 'हिंदवी' वाले इन सूफ़ी कवियों के विषय में एक यह बात भी उल्लेखनीय जान पड़ती है कि ये प्रायः सभी दरबारी कवि कहे जा सकते थे। इनके आश्रयदाता सुलतानों पर अधिकतर अरबी एवं फ़ारसी के पंडित मुल्लाओं का प्रभाव रहा करता था। उनके दरबारों में भी फ़ारसी भाषा का ही बोलबाला था जिसकारण, ये स्वभावतः उन छंदों को ही अपनाना अधिक उचित समझ सकते थे जो यद्यपि मूलतः अरबी के मात्रिक छंद थे, किंतु जिन्हें स्वयं फ़ारसी के कवियों ने भी अपनी रचनाओं के लिए स्वीकार कर लिया था। इसके विपरीत उत्तरी भारत के हिंदी सूफ़ी कवियों के भी सम्बंध में ऐसा कहने के लिए हमें कोई कारण नहीं दीख पड़ता। यदि हम ऐसे सर्वप्रथम कवि मुल्ला दाऊद से लेकर सन् १९१७ ई० में 'प्रेम-दर्शन' की रचना करने वाले कवि नसीर तक पर एक दृष्टि डालें तो जान पड़ेगा कि इनमें से प्रायः सभी इस प्रकार के ही कवि थे जिन्होंने अपनी रचनाएँ किसी सुलतान विशेष अथवा आश्रयदाता की प्रेरणा से नहीं लिखी, न

इन्होंने किन्हीं ऐसे स्वामियों वा पोषकों को प्रसन्न करने के उद्देश्य से ही अपना कार्य आरंभ किया था। ये लोग अधिकतर शासन-केन्द्रों से कुछ न कुछ दूरवर्ती नगरों के निवासी थे और इनके लिए कदाचित् कोई राजवृत्ति भी निर्धारित नहीं थी। कम से कम अभी तक उपलब्ध सामग्रियों के आधार पर इतना ही पता चल पाता है कि मुल्ला दाऊद डलमऊ (जिला रायबरेली) के रहने वाले थे, मलिक मुहम्मद जायसी भी जायस (जिला रायबरेली) के ही निवासी थे, शेख नबी का निवास-स्थान जौनपुर सरकार के अन्तर्गत कोई 'अदले मऊ' नामक नगर था, क़ासिमशाह दरियाबाद (जिला लखनऊ) के रहने वाले थे, शेख निसार का जन्म-स्थान जिला फ़ैजाबाद का शेखपुर नामक नगर था, ख़वाज़ा अहमद का जन्म प्रतापगढ़ जिले के बाबूगंज नामक गाँव में हुआ था, शेख रहीम जरवल (जिला बहाराइच) के रहने वाले थे तथा कवि नसीर का जन्म-स्थान भी जमनिया नामक नगर था जो गाज़ीपुर जिले में वर्तमान है। यही कारण है कि इनमें से प्रायः सभी ने 'शाहेवक़्त' की चर्चा करते समय अपने समकालीन दिल्ली के शासक का ही नाम लेना पर्याप्त समझ लिया है जिससे रचना-काल का पता चल सके। शेख रहीम ने तो इसके लिए सम्राट् सप्तम एडवर्ड तक की चर्चा कर दी है। केवल शेख कुतबन ही एक मात्र ऐसे कवि दीख पड़ते हैं जिन्होंने अपनी 'मृगावती' के अन्तर्गत 'साहे हुसेन' का नाम लिया है जो जौनपुर का हुसेन शाह शर्की माना जा सकता है। परन्तु यह कवि भी, दक्खिनी 'हिदवी' वालों की भाँति फ़ारसी साहित्य की रचना-पद्धति को नहीं अपनाता जिसका कारण, कदाचित् यही हो सकता है कि उसके लिए इसे कोई विशेष प्रेरणा नहीं मिली होगी और उसने उसे हिंदी की प्रचलित रचना-शैली में ही लिख दिया होगा।

जिस प्रकार उत्तरी भारत के वर्तमान उत्तर प्रदेश प्रान्त को हम हिंदी की सूफ़ी प्रेमगाथाओं का प्रधान क्षेत्र कह सकते हैं, उसी प्रकार इसके 'पूर्वी' एवं 'पश्चिमी' हिंदी की सूफ़ी प्रेमगाथाओं का प्रधान क्षेत्र कह सकते हैं, उसी प्रकार इसके 'पूर्वी' एवं 'पश्चिमी' बंगाल प्रांतों को बंगला भाषा वाले सूफ़ी प्रेमाख्यानो का क्षेत्र भी ठहरा सकते हैं। उधर के चटगाँव, रोसाँग (आराकान) एवं सिलेहट, भुरसुटी आदि के बंगला कवियों ने भी इस प्रकार की अनेक रचनाएँ निर्मित की हैं।

रोसाँग अथवा आराकान में इसकी ओर कदाचित् सर्व प्रथम उल्लेखनीय यत्न किये गए। रोसाँग के राजा श्री सुधर्म (सन् १६२२-३८ ई०) के वज़ीर अशरफ़ खां के अनुरोध से वहाँ के दौलत काज़ी नामक कवि ने अपनी 'सती मयना ओर लोर चन्द्राणी' रचना का लिखना आरंभ किया, किंतु वह उसे पूरा नहीं कर सका। उसके परवर्ती अलाओल कवि ने उसे समाप्त किया जिसका आश्रयदाता सुलेमान (सन् १६५२-८४ ई०) था तथा जिसने एकाध अन्य प्रेमाख्यानों की भी रचना की। इन दोनों कवियों के अनन्तर पीछे सैयद हमज़ा ने 'मधुमालती' लिखी, बहराम ने 'लैलामज़नू' का प्रणयन किया तथा खलील ने 'चन्द्रमुखी' तथा मुहम्मद खातिन ने 'मृगावती' जैसे कुछ प्रेमाख्यान लिखे। परंतु इनमें से कदाचित् किसी भी कवि को उन अरबी एवं फ़ारसी साहित्य की मुख्य रचना-शैलियों को महत्व देना उचित नहीं जा पड़ा जितना दखिखनी 'हिदवी' के उपर्युक्त कवियों की समझ में आया था। इसका कारण यह हो सकता है कि दौलत काज़ी एवं अलाओल जैसे दरबारी कवियों तक के आश्रयदाताओं को भी इसकी कोई विशेष चिंता नहीं थी और उनका मुख्य उद्देश्य यही था कि हिंदी जैसी भाषाओं के लोकप्रिय प्रेमाख्यानों को अपनी बंगला भाषा के माध्यम से तथा भरसक उसी की रचना-शैली द्वारा भी सर्व साधारण के लिए सुलभ बना देना चाहिए। उन्हें कदाचित् इस बात की भी प्रबल इच्छा नहीं थी कि ऐसी रचनाओं के द्वारा सूफ़ीमत के प्रचार में विशेष सहायता ली जाय। 'हिदवी' के सूफ़ी कवियों ने संभवतः मत-प्रचार एवं रचना-शैली का प्रयोग, इन दोनों दृष्टियों से काम करने की चेष्टा की है।

उत्तर प्रदेश के पश्चिम पंजाब की ओर भी बहुत से सूफ़ी प्रेमाख्यानों की रचना हुई है। वास्तव में पंजाब की भाषा पंजाबी के साहित्य का आरंभ ही कवियों की कृतियों से किया जाता है और कहा जाता है कि उसका प्रथम ज्ञात कवि बाबा फ़रीद शकरगंज (सन् ११७३-१२५६ ई०) रहा जिसकी कतिपय रचनाएँ पुरानी (लहंदी) के गेय पद्यों में उपलब्ध हैं। बाबा फ़रीद के अनन्तर बहुत काल तक फ़ुटकल काव्यों की ही रचना होती रही और जहाँ तक पता चलता है, सम्राट अकबर के समय (सन् १५५६-१६०५ ई० के बीच) किसी दामोदर नामक कवि ने सर्वप्रथम, 'हीर और रौझा' नामक प्रसिद्ध प्रेमियों की प्रेमकहानी

लिखी जो पीछे आने वाली प्रेमगाथाओं के लिए आदर्श रचना बन गई। दामोदर कवि संभवतः हिंदू कवि था और उसे सूफ़ी भी कहने के लिए हमारे यहाँ कोई आधार नहीं है। परंतु उसकी यह प्रेमकथा इतनी लोकप्रिय बन गई और इसकी रचना-शैली आदि का लोकमानस पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि उसके परवर्ती सूफ़ी कवियों तक ने उसके द्वारा प्रयुक्त कथानक को अपनाकर तथा अन्य वैसे प्रेम सम्बंधी वृत्तान्तों के भी आधार ग्रहण कर प्रेमाख्यानों का लिखना आरंभ कर दिया। उदाहरण के लिए 'हीर और रांझा' की प्रेमकहानी को लेकर अहमद कवि (सन् १६९३ ई०) और हामद (सन् १७७० ई०) ने भी अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की तथा वारिश शाह (सन् १७३८-१७९८ ई०) ने तो एक ऐसी प्रेमगाथा रच डाली जिसने उसके दोनों प्रेमियों को अमरत्व प्रदान कर दिया। इसी प्रकार 'मिरजा साहिबा' की प्रेमकहानी के आधार पर भी, कई कवियों ने वैसे प्रेमाख्यान लिखे जिनमें से जहाँगीर तथा शाहजहाँ बादशाहों के समकालीन पोलू कवि की रचना सर्वाधिक प्रसिद्ध हुई और प्रायः उसके समकालीन कवि हाफ़िज बरखुरदार ने इस कहानी के अतिरिक्त 'यूसुफ़ जुलेखा' तथा 'सस्सी पुन्नू' विषयक वृत्तान्तों को भी लेकर मृथक्-मृथक् प्रेमगाथाएँ लिखीं। इसके सिवाय प्रेमाख्यानों के रचयिताओं में हाशम (सन् १७५३-१८२३ ई०) तथा अहमद यार (सन् १७६८-१८४५ ई०) भी विशेष प्रसिद्ध हुए। हाशम की 'सस्सी पुन्नू' सम्बंधी रचना सर्वाधिक प्रसिद्ध हुई, किंतु उसकी 'सोहनी महिवाल', 'शीरीं फ़रहाद' और 'लैला मजनू' वाली प्रेमकथाएँ भी कम महत्व की नहीं हैं। अहमद यार ने तो इस प्रकार की बीसों रचनाएँ प्रस्तुत कर दी जिनमें से 'हीर-रांझा', 'सस्सी पुन्नू', 'यूसुफ़ जुलेखा', 'लैला मजनू', 'सैफ़ुल मुलूक', 'सोहनी महीवाल' तथा 'चंदर बदन' आदि की गणना उत्कृष्ट सूफ़ी प्रेमाख्यानों में की जा सकती है। इन पंजाबी सूफ़ी कवियों की एक विशेषता यह रही कि इन्होंने अधिकांश वैसे बंगाली कवियों की भाँति किसी राज्याश्रय भी अपेक्षा नहीं की, न अपने सामने वहाँ तक फ़ारसी रचनाओं तथा सूफ़ी सिद्धान्तों तक के आदर्श का रखना उचित समझा। जहाँ तक दक्खिनी 'हिदवी' के ऐसे कवियों ने किया इन्होंने अपने लिए ऐसे कथानक भी चुने जो या तो अपने यहाँ लोकगाथाओं के रूप में प्रसिद्ध हो चले थे अथवा प्रसिद्ध फ़ारसी रचनाओं

में संगृहीत हो चुके थे। उनके आधार पर प्रेमाख्यानों की रचना करते समय इन्होंने लोकजीवन सुलभ मार्मिक स्थलों के चित्रण को ही सर्वाधिक महत्व दिया। अत-एव, कदाचित् ऐसा कहना भी अनुचित न होगा कि, जहाँ तक सूफ़ीमत और इस्लामी संस्कृति-सम्बंधी प्रचार-कार्य का प्रश्न है, इन पंजाबी सूफ़ी कवियों ने भी इस विषय में दक्खिनी 'हिंदवी' के वैसे कवियों की अपेक्षा अधिक उदारता से ही काम लिया।

(५)

उत्तरी भारत के उत्तर प्रदेश वाले क्षेत्र में सूफ़ी कवियों की प्रेमगाथाएँ, बंगाल एवं पंजाब की अपेक्षा लगभग दो-ढाई सौ वर्ष पहले लिखी जाने लगी थी और दक्खिनी 'हिंदवी' की ऐसी रचनाओं का लिखा जाना भी इनसे प्रायः ८० वर्ष पीछे ही संभव हो सका होगा। उत्तर प्रदेश की हिंदी सूफ़ी प्रेमगाथाओं में से जो सर्वप्रथम रचना अभी तक उपलब्ध है वह 'चंदायन' है जिसका रचनाकाल उपर्युक्त सन् ७७९ (हि०) वा सन् १३७७ ई० है। इसकी कोई पूरी प्रति अभी तक प्रकाशित नहीं है, किंतु इसका जितना अंश आज तक मिल सका है उसके आधार पर इसके विषय में हमें बहुत कुछ पता चल जाता है उसके आधार पर इसके विषय में हमें बहुत कुछ पता चल जाता है। इस प्रकार, हमें ऐसा अनुमान करने के लिए पर्याप्त साधन भी मिलता है कि ईसवी सन् की १४वीं शती से लेकर आज तक की, लगभग छह सौ वर्षों की अवधि में ऐसी अन्य अनेक रचनाएँ भी प्रस्तुत की गई होंगी जिन्हें हम, भारतीय साहित्यिक परंपरा के आदर्शों पर निर्मित 'सूफ़ी प्रेमाख्यान' का नाम दे सकते हैं। अब तक पायी गई ऐसी रचनाओं की संख्या भी कम से कम ३० वा ४० तक ठहरायी जा सकती है और इनमें कतिपय उन प्रेमाख्यानों को भी स्थान दिया जा सकता है जो वर्तमान राजस्थान एवं बिहार प्रान्तों में भी लिखे गए थे। उत्तर प्रदेश वाली ऐसी रचनाओं में से काल क्रमानुसार जिस दूसरी प्रेमगाथा का नाम लिया जाता है वह शेख़ क़ुतबन की 'मिरगावति' वा 'मृगावती' है जिसकी रचना हिज़री सन् ९०९ अर्थात् सन् १५०९ ई० में हुई थी और जो इस प्रकार, 'चंदायन' से कम से कम सवा सौ वर्ष पीछे की सिद्ध होती है। इस लम्बे काल में लिखी गई किसी ऐसी अन्य रचना का पता

इधर नहीं चलता। इसके भीतर निर्मित केवल उपर्युक्त 'कदम राव व पदम' का नाम लिया जाता है जिसका रचना-काल, उसके रचयिता 'निज़ामी' का हि० सन् ८६५-७ में वर्तमान रहना मानकर^१, सन् १४०६ ई० के लगभग ठहराया जा सकता है और जिसके लिए यह भी कहा जा सकता है कि वह दक्षिण के बहमनी सुल्तानों के समय में वहाँ की 'हिंदवी' में लिखी गई थी। इस रचना की भी कोई पूरी प्रति उपलब्ध नहीं है जिस कारण, अपर्याप्त सामग्री के आधार पर इसकी मूल प्रेमकहानी के विषय में भी कुछ नहीं कहा जा सकता, न यही बतलाया जा सकता है कि इसमें सूफ़ीमत सम्बंधी बातों का कहाँ तक समावेश किया गया है। यदि यह भी सूफ़ी प्रेमगाथाओं की कोटि की ही ठहराया जा सके तो केवल इतना और भी कहा जा सकता है कि दक्षिण भारत की ओर भी, इसके अनन्तर 'क्रुतुब-मुश्तरी' के रचनाकाल (सन् १६०८ ई०) तक की लगभग डेढ़ सौ वर्षों की अवधि में कोई अन्य वैसे प्रेमाख्यान नहीं लिखा गया होगा।

मुल्ला^२ दाऊद की सूफ़ी प्रेमगाथा 'चंदायन' का उल्लेख सर्वप्रथम, कदाचित् 'नूरक चंदा' के नाम से किया गया था और पहले हमें इस बात का भी निश्चित पता नहीं था कि उसके कथानक का सम्बंध किसी पूर्व प्रचलित लोकगाथा से भी जोड़ा जा सकता है वा नहीं। हिंदी साहित्य का इतिहास लिखने वाले प्रायः इस रचना का नाममात्र लेकर ही संतोष कर लिया करते थे और इसका अस्तित्व संदिग्ध जैसा बना रहा। सन् १८५८ ई० में प्रकाशित 'गजेटियर ऑफ़ दि प्राविंस ऑफ़ अवध' (भाग १) में इस रचना का नाम 'चन्दैनी' के रूप में उल्लिखित हुआ और वहाँ पर बतलाया गया कि फ़िरोज शाह तुगलक (सन् १३५१-८८ ई०) के समय डलमऊ (जि० रायबरेली) के मुल्ला दाऊद नामक कवि ने "भाषा

१. नसीरुद्दीन हाशमी : दकन में उर्दू (सन् १९५२ ई०) उर्दू बाज़ार लाहौर पृ० ३३
२. दाऊद को मुल्ला के स्थान पर 'मौलाना' कहना अधिक संगत समझा गया है। (कल्पना, सितंबर ६१, पृ० १६)

में चन्दैनी नामक ग्रंथ का सम्पादन किया^१” जिसके द्वारा इसके सम्बंध में कुछ अधिक स्पष्ट संकेत प्राप्त हो सका। परंतु जब तक इसकी किसी अधूरी अथवा पूरी हस्तलिखित प्रति का भी परिचय नहीं मिला तब तक इसके विषय में कोरे अनुमान ही किये जाते रहे। अनेक ऐसी प्रतियों के पते बतलाये जाते थे और उन्हें पूरा वा अधूरा मात्र कहकर काम चलता कर दिया जाता था। पटना के प्रो० अस्करी ने^२ अपने एक अंग्रेजी निबन्ध में इस रचना का नाम ‘चंदायन’ देते हुए, इसकी मनेर शरीफ़ से प्राप्त किसी अधूरी प्रति के आधार पर इसके विषय में कुछ अधिक प्रकाश डाला। फिर, अपने एक दूसरे निबन्ध में^३, उस परिचय को और भी अधिक स्पष्ट कर देने का यत्न किया। उनके इस द्वितीय निबन्ध में, हमें इतनी और सूचना भी मिलती है कि उन्होंने न केवल ‘चंदायन’ की उक्त मनेर शरीफ़ वाली अधूरी प्रति की ही खोज की है, अपितु उन्होंने इसकी भोपाल वाली सचित्र प्रति का संधान-सूत्र भी दे दिया है जिसके माध्यम से वह प्रति (बंबई म्यूज़ियम) की ओर से ऋय की जा सकी है और वह इस प्रकार, अधिक प्रसिद्धि में भी आ गई है। इसके अतिरिक्त ऐसी दो अन्य सचित्र प्रतियों का भी पता चलता है जो क्रमशः लाहौर में तथा काशी के ‘कला भवन’ में वर्तमान हैं। इसकी ऐसी कुछ अधूरी प्रतियों के आधार पर संपादित होकर यह रचना आगरा में प्रकाशित भी होने जा रही है। प्रो० अस्करी के ही अनुसार इस रचना की एक अन्य पूर्ण प्रति का पता हिंदी विद्यापीठ आगरा विश्वविद्यालय के श्री उदयशंकर शास्त्री को लग चुका है जो नागरी अक्षरों में लिखी गई है, किन्तु जो अधिक मूल्य माँगे जाने के कारण, आज तक ऋय नहीं की जा सकी है^४। डॉ० परमेश्वरी लाल गुप्त

१. पृ० ३५५।

2. Prof. H. Askari: Rare Fragments of Chandain and Mrigawati.

3. Prof. H. Askari 'Mujla Daud's Chandain and Sadhans Maina Sat (Patna University Journal, 1960).

4. Do. p. 62.

को विदेश से जो प्रति फ़ारसी लिपि में उपलब्ध हुई है उसे भी संभवतः सम्पूर्ण नहीं कहा जा सकता। डॉ० त्रिलोकीनारायण दीक्षित के अनुसार डलमऊ के ठाकुर शिवमंगल सिंह के पास जो प्रति है वह देखने तक को सुलभ नहीं है। इसी प्रकार इसकी एक प्रति श्री रावत सारस्वत के भी पास है जो कदाचित् अधूरी ही है जिसमें ४३८ कड़वक है। एक अन्य खण्डित प्रति के अमेरिका में होने का भी पता चला है।

प्रो० अस्करी द्वारा संकलित किये गए कतिपय विवरणों के आधार पर 'चंदायन' के वर्ण्य विषय की एक रूपरेखा प्रस्तुत की जा सकती है और इसके सम्बंध में हम एक अपनी कामचलाऊ धारणा भी बना सकते हैं। इसके सिवाय, इस विषय में विशेष रुचि रखने वाले खोजी विद्वानों में आजकल क्रमशः जिज्ञासा की वृद्धि होते जाने के कारण, अनेक ऐसे साधन भी सामने आने लगे हैं जिनकी सहायता से हम इस समय इसके सम्बंध में कुछ अधिक विचार कर सकने की स्थिति में आते जा रहे हैं। इस प्रकार, संभव है कि 'चंदायन' की पूरी प्रामाणिक प्रति के प्रकाशित होने के पहले भी, हम वास्तविक बातों के निकट तक पहुँच जायँ। प्रो० अस्करी ने अपनी संगृहीत पंक्तियों के आधार पर इस प्रेमाख्यान की कहानी का संक्षिप्त परिचय देते हुए बतलाया है कि "लोरक एक पराक्रमी ग्वाला था जो गौर वा गौरा का निवासी था और उसका विवाह मैना के साथ विधिवत् हो चुका था। किंतु वह सहदेव महर की पुत्री चंदा के प्रति आसक्त हो गया जो बावन के साथ व्याही गई थी। चंदा भी उसी प्रकार लोरक के प्रति अनुरक्त थी। ये दोनों रोहिनी से होते हुए हरदी की ओर चल पड़े और उन्हें ऐसा करते पाकर लोरक के भाई कुँवर ने उन्हें उपालम्भित करना चाहा जो व्यर्थ सिद्ध हुआ। बंधा चमार, राव रूपचंद, असुर और एक मलाह जो चंदा की ओर आकृष्ट हुए सभी, और स्वयं बावन तक हरा दिये तथा मार डाले गए। कई लड़ाइयाँ हुईं जिनमें लोरक बराबर विजयी होता चला गया, किंतु किसी रात को एक पाकड़ के नीचे सोती हुई चंदा को साँप ने डँस लिया। फिर भी भगवती को दया आ गई और उन्होंने उस शोकाकुल प्रेमी लोरक के निकट किसी गारुड़ वा ओझा को भेज दिया जिसने अपने मंत्रबल द्वारा चंदा की रक्षा की और उसे पुनर्जीवन प्रदान

कर दिया तथा फिर दोनों मिल गए। उसके कुछ वर्षों के अनन्तर अंत में किसी भाट सुर्जन ब्राह्मण से यह समाचार पाकर कि उसकी विवाहित पत्नी की दशा दयनीय हो गई है, लोरक फिर उसकी ओर भी वापस आ गया^१।”

प्रो० अस्करी ने इसी प्रकार, उस लोकगाथा का भी सारांश दे दिया है जो विशेषकर भागलपुर के “अनेक स्थानों में प्रचलित है और जो सर डब्ल्यू. डब्ल्यू. हंटर के अनुसार, उत्तरी बिहार के भागों में ‘वीर लोरिक के गीत’ के रूप में गायी जाती है। उनका कहना है, “लोरिक गौरा का निवासी था और दुर्गा भगवती का प्रिय भक्त भी था। उसकी पत्नी मंजरी ने अपने पति को सहदीप महारा की पुत्री के साथ प्रेम करते देखा जो उसी गाँव का राजा था और जो जाति का कहार भी था। उसका नाम चनैन था। चनैन की ओर से उसे विरत करने में यत्नशील बनी पत्नी एवं माता के होते हुए भी लोरिक ने भगवती की कृपा से उसके साथ भेंट कर ली। अंत में, वे दोनों प्रेमी हरदी की ओर चल पड़े जो मधुपुर के इलाके में पड़ती है। किसी रात को एक पेड़ के नीचे सोते समय चनैन को साँप ने डँस लिया और वह मर गई जिस कारण दुखी होकर लोरक आग में कूद पड़ा। परंतु भगवती ने आकर उसकी रक्षा की और दोनों प्रेमी अपने मार्ग में फिर आगे बढ़े तथा महापात्र स्वर्णकार राजा के सेवकों ने उन्हें जुए में फँसा दिया। उन्होंने वहाँ लोरिक का सर्वस्व, यहाँ तक कि स्वयं चनैन तक को जीत लिया। फिर उसने उस राजा को हराकर सभी कृष्ण वापस ले लिया तथा वहाँ से वे दोनों हरदी की ओर बढ़े जहाँ के राजा के साथ लोरिक की सात दिन तथा सात रात तक लड़ाई होती रह गई। भगवती ने उसे इस दशा में, विजयी बनाया जब चनैन को यह प्रतिज्ञा करनी पड़ी कि अपनी प्रथम संतान का बलिदान कर दूंगी। लोरक ने हरदी के राजा हडंबर को जीत लिया और वह उस नगर में बारह वर्षों तक राज्य करता रहा। एक बार, जब उसने किसी वृद्धा स्त्री को अपने प्रवासी पुत्र के लिए प्रतीक्षा करते हुए देखा, उसे अपनी प्रथम पत्नी एवं माता के प्रति अन्याय का स्मरण हो आया और वह इनके यहाँ लौट आया^२।” जिससे जान पड़ता है कि इस कथा

1. Mulla Daud's Chandain etc. p. 64.

2. Rare Fragments of Chandain etc. p. 9.

और 'चंदायन' के मूल कथानक में कोई विशेष अन्तर नहीं है ।

परंतु, बिहार प्रान्त में ही प्रचलित इस कहानी के विविध रूपों को देखने पर पता चलता है कि इसका कलेवर बहुत बड़ा होगा । वहाँ इसे साधारणतः 'लोरिकायन' का नाम दिया गया दीख पड़ता है । इसकी विशालता के विषय में चर्चा करते समय, वहाँ पर यह भी कहा जाता है कि जैसे 'रामायण' के सात काण्ड हैं, उसी प्रकार 'लोरिकायन' के भी अनगिनत वा अगणित काण्ड हैं । किसी क्षेत्र में इसके कोई अंश विशेष गाये जाते हैं जो अन्यत्र इसके दूसरे अंश प्रसिद्ध हैं और सम्पूर्ण गीत के जानकार गायक संभवतः कहीं भी नहीं मिल सकते अथवा कोई विरले ही हो सकते हैं । 'लोरिकायन' के कुछ खण्ड प्रकाशित भी हो चुके हैं, किंतु उन पर किन्हीं आधुनिक रचयिता के नाम दिये गए दीख पड़ते हैं जिस कारण, कहा नहीं जा सकता कि उनका कितना अंश प्राचीन रचना के साथ और कहाँ तक मेल खाता है तथा कितना सर्वथा नवीन एवं काल्पनिक माना जा सकता है । 'लोरिकायन' के जो तीन खण्ड वहाँ पर प्रमुख रूप में गाये जाते हैं वे 'सँवरू का व्याह', 'लोरिक का व्याह' तथा 'हल्दी की लड़ाई' के नामों से प्रसिद्ध हैं और अधिक अनुसंधान करने पर पता चलता है कि इनमें से प्रायः सभी के अनेक रूपान्तर भी वर्तमान होंगे^१ । श्री हरिहर निवास द्विवेदी ने स्व-संपादित 'साधन-कृत मैना-सत' की भूमिका वाले अंश में बिहार वाले 'लोरी चन्दैनी आख्यान' का जो सारांश दिया है उसमें बावन को शिवधर नाम दिया गया दीख पड़ता है और वह चन्दैनी से विवाह कर लेने पर पार्वती के शापवश नपुंसक हो जाता है । इसी प्रकार मंजरिया वा मंजरी यहाँ पर लोरी की विवाहिता पत्नी नहीं हैं, प्रत्युत एक ऐसी लड़की है जिसके साथ उसकी केवल सगाई हुई रहती है । चन्दैनी को यहाँ पर लोरी से एक पुत्र भी जन्म लेता है और लोरी घर वापस आने पर मंजरी के पातिव्रत की परीक्षा लेता है । यहाँ पर लोरी के सम्बंध में यह भी बतलाया गया है कि उसकी सफलताओं के कारण इन्द्र को ईर्ष्या होती है और वह इसे नष्ट करने

१. श्री विक्रमादित्य मिश्र : 'लोरिकायन का तुलनात्मक अध्ययन' भारतीय साहित्य (आगरा, अप्रैल, १९५९ ई०) पृ० १९-२०

के यत्न करता है, किन्तु दुर्गा की सहायता के यह किसी प्रकार, अपने को बचा लेना है। अंत में काशी के मणिकर्णिका घाट पर पत्थर के रूप में परिणत हो जाता है।^१ भोजपुरी क्षेत्र में, साधारणतः इस कथा का कुछ न कुछ ऐसा ही रूप गाया जाता जान पड़ता है।

परंतु इसका एक अन्य छत्तीसगढ़ी रूप भी है जिसके अनुसार 'लोरी' किसी धोबी के रूप में पाया जाता है और एक धोबिन के द्वारा ही लोरी और 'चंदा' के बीच प्रेम की बातें भी आगे बढ़ती हैं और मंजरिया (मंजरी) यहाँ पर कोई महत्वपूर्ण भाग लेती हुई नहीं दीख पड़ती^२। इसी प्रकार, एक अन्य छत्तीसगढ़ी रूप के अनुसार वावन 'वीर वावन' के रूप में आता है, दो सौ पचास गायों का दूध पीता है और वह चन्दैनी का पति है जिस पर आसक्त होकर वीर बथआ नामक चमार उसे अपनाना चाहता है और वह अपनी सहायता में इसके ऊपर विजय पाने वाले लोरिक रावत पर आसक्त हो जाती है। अन्त में इन दोनों का प्रेम बढ़ता है, दोनों निकल भागते हैं, वीर वावन इनका पीछा करता है, किन्तु ये गौरागढ़ चले आते हैं^३। छत्तीसगढ़ी का ही एक तीसरा रूपान्तर भी प्रसिद्ध है जिसमें चन्दैनी, लोरिक की वंशी का रव ध्रुवण कर उसके प्रति आसक्त होती है, उसके साथ झूला झूलती है तथा उसके साथ भागते समय इसे अनेक प्रकार के विघनों का सामना भी करना पड़ता है। छत्तीसगढ़ के क्षेत्र में यही गाथा वहाँ की मौलिक प्रेमकथा समझी जाती है और वहाँ के रायपुर जिले में 'आरग' नामक स्थान पर इन दोनों प्रेमियों का एक स्मारक भी पाया जाता है^४। अतएव, जान पड़ता है कि मुल्ला दाऊद की रचना 'चंदायन' का कथानक जितना विहार वाले रूप के निकट है उतना छत्तीसगढ़ी वाले के साथ उसका सम्बंध नहीं है। यह

१. पृ० ३८-९

२. भारतीय प्रेमाख्यान की परम्परा, पृ० ६४

3. Dr. V. Elwin : Folk Songs of Chhattisgarh (Oxford University Press, 1946) pp. 342-70.

4. Do. pp. 41-8 and 7-8.

संभव है कि इस कवि ने इसे बिहार प्रान्त से ही लिया है अथवा उसे अपनाया हो जो इसके स्वयं अपने निकट के अवधी क्षेत्र में ही प्रचलित रहा हो और जो बिहार वाले से बहुत कुछ मिलता-जुलता भी हो। श्री द्विवेदी द्वारा उद्धृत सारांस भी डॉ० एलविन की पुस्तक 'फोक सांग्स ऑफ़ छत्तीसगढ़' में दिया गया दीख पड़ता है और वह शाहाबाद जिला (बिहार प्रान्त) की ओर विशेष रूप में प्रचलित बतलाया गया है^१। उस लेखक ने वहाँ पर भी लिखा है कि मिर्जापुर के जिले में प्रचलित इस प्रेमकहानी के अनुसार चन्द्रैनी को कोई महत्व नहीं दिया जाता। वहाँ पर लोरिक की प्रेमपात्री मजरी है जो सोन नदी पर अवस्थित 'अगोरी' नामक दुर्ग के राजा की दासी है और वह जाति की अहीरिनी है। उसे लेकर लोरिक और सँवरू दोनों भाई भाग निकलते हैं और मार्ग में अपनी बाधाओं पर विजय पाते हुए अंत में सफल हो जाते हैं। ऋक ने इस कहानी के प्रसंग में, यह भी बतलाया है कि 'मर्कंडे पास' के निकट एक चट्टान दिखलाया जाता है जो लोरिक द्वारा हाथी के निहत होने का स्मारक समझा जाता है^२। काशी के निकट सारनाथ में भी एकाध ऐसे टीले दिखलाये जाते हैं जिनके साथ लोरिक की कथा जोड़ी जाती है। लोरिक और चंदानी के प्रेमव्यापारों की एक अन्य कहानी हैदराबाद (दक्षिण) की ओर भी प्रचलित है जिसके आधार पर किसी कवि ने 'मसनवी किस्सा मैना सतवंती' की रचना की है तथा जिसके अनुसार लोरिक और उसकी प्रेमपात्री मैना निर्धन हो कर कहीं चल निकलते हैं और लोरिक, पशु-चारण करते समय, चंदा के प्रेम में फँस जाता है तथा इसे भी ले भागता है^३।

इस प्रकार लोरिक एवं चन्द्राणी वा चंदा की प्रेमकहानी के कई अन्य भी रूप प्रचलित हो सकते हैं। यहाँ पर उल्लेखनीय केवल इतना ही है कि इसके

१. Folk Songs of Chhatisgarh pp. 340-1.

२. Do. p. 34.

३. श्रीराम शर्मा : दक्खिनी का पद्य और गद्य (हैदराबाद १९५४ ई०) पृ०

नायक लोरक का सम्बंध दो स्त्रियों के साथ बतलाया जाता है जिनमें से मैना, मंजरी वा मंझरिया या तो उसके साथ विधिवत् व्याही गई रहती है अथवा उसके साथ उसकी सगाई मात्र ही हुई रहती है । इनमें से किसी भी दशा में वह चंदा, चंदैनी वा चंद्राणी नामक सुदरी के प्रति भी आसक्त हो जाता है और उसे लेकर भागते समय कई बाधाओं का सामना करता है । अंत में, सबके ऊपर विजय पाकर या तो दोनों के साथ सुखी बन कर रहता है अथवा किसी प्रकार नष्ट हो जाता है । इसके सिवाय, इस कथा के संदर्भ में एक बात यह भी सूचित होती है कि लोरक की प्रथम प्रेमपात्री वा पत्नी उसके प्रति अधिकतर 'सत' वा पातिव्रत धर्म के अनुसार चलती हुई दीख पड़ती है, जहाँ दूसरी का प्रेम प्रधानतः वासना पर ही आश्रित रहा करता है तथा इसे प्राप्त करने के लिए लोरक को विशेष प्रयास भी करना पड़ता है । तदनुसार, यदि इन दोनों दशाओं की प्रेमपद्धति पर विचार किया जाय तो, हम यह भी कह सकते हैं कि इसका मैना वाला अंश अधिकतर हिंदू प्रेमभावना के अनुकूल है, जहाँ चंदावाला सूफ़ी प्रेमसाधना को उदाहृत करने का अधिक उपयुक्त साधन ठहराया जा सकता है । मुल्ला दाऊद ने कदाचित् इसी कारण, इस कथा के चंदा वाले अंश को ही अधिक महत्व दिया है । उन्होंने अपनी रचना का नाम तक 'चंदायन' रख दिया है जिसके आधार पर अनुमान किया जा सकता है उनके समक्ष अपनी सूफ़ी भावना ही काम करती रही होगी । प्रो० अस्करी द्वारा उद्धृत पंक्तियों के अनुसार मुल्ला दाऊद अपनी रचना को किसी मलिक नाथन के कहने पर प्रस्तुत करते हैं जो इसकी प्रेम-कहानी से संभवतः स्वयं भी परिचित रहा करता है, किंतु जिसके सम्बंध में हमें कुछ अधिक पता नहीं चलता । अपने निबंध की पादटिप्पणी में उन्होंने किसी 'मौलाना नाथन' की चर्चा की है जिसका प्रसंग, १४वीं शताब्दी वाले बिहारी सूफ़ी हुसेन नौशाह तौहीद की जीवनचर्याओं का वर्णन करते समय किसी 'मूनी-सुल कुलूब' नामक पुस्तक में आया है, किंतु वह 'मलिक नाथन' से भिन्न भी हो सकता है^१ । यदि उसका 'मलिक' होना उसके पूर्व पुरुषों की किसी पदवी मात्र

1. Rare Fragments of Chandain etc. p. 12.

का ही सूचक हो, जैसा उसके परवर्ती मलिक मुहम्मद जायसी के भी विषय में कहा जाता है तो, यह भी संभव हो सकता है कि वह 'मौलाना' भी रहा होगा, जैसा कई मुसलमानों का उनके धर्माचार्य होने पर ही होना समझा जाता है। जो हो, प्रो० अस्करी द्वारा अपने दूसरे निबंध के साथ प्रकाशित कतिपय चित्रों में से कुछ में मुल्ला दाऊद के भी चित्र दिये गए जान पड़ते हैं और इनमें से एक के साथ किसी एक ऐसे व्यक्ति का भी चित्र है जिसके 'मलिक नाथन' होने का भी अनुमान किया जा सकता है^१। शेख नसीरुद्दीन महमूद चिरागो देहली (मृ० हि० ७५७-सन् १३५६ ई०) के किसी कथन से सिद्ध होता है कि उनके एक मित्र पटना के कोई नाथू थे जिन्होंने उन्हें उपवास के समय दो रोटियाँ दी थी और जो, मौलाना दाऊद के समकालीन भी हो सकते हैं।^२ यहाँ पर मुल्ला दाऊद के सामने एक 'रिहल' वा रेहल पर कोई 'कुरान शरीफ' अथवा किसी अन्य धर्मग्रंथ जैसी पुस्तक रखी हुई दीख पड़ती है। उसकी दूसरी ओर संभवतः 'मलिक नाथन' ही बैठा है जिसकी मुख-मुद्रा से उसका किसी बात को सुनने के लिए सावधान रहना ही सूचित होता है। मुल्ला दाऊद के उठाये हुए हाथ की किसी छोटी-सी छड़ी जैसी वस्तु से यह भी प्रतीत होता है कि ये उसे अपनी चेष्टाओं द्वारा कही जाने वाली बातों को भलीभाँति समझाते भी जा रहे हैं जिससे उस 'मलिक नाथन' का इनका शिष्य तक होना अनुमान किया जा सकता है। मुल्ला दाऊद की दाहिनी बांह में कोई माला भी लटकती दीख रही है जो इनके एक अन्य चित्र में बाँयों बांह में लटकी है और इनके सिर पर कोई कुलाहदार पगड़ी भी पायी जाती है जिसकी आकृति, इनके तीन चित्रों तक में ठीक एक ही प्रकार से अंकित की गई जान पड़ती है। इनके तीसरे चित्र में भी पहले चित्र की जैसी एक 'रिहल' है जिस पर रखी हुई पुस्तक के किसी पन्ने को ये झुककर पढ़ रहे हैं और वह इनके हाथ में है। ऐसे ही चित्रों में से एक में 'चंदायन' की प्रमुख नायिका चंदा तथा उसकी सौत मैना के संभवतः किसी झगड़े का भी चित्रण

1. Mulla Daud's Chandain etc. p. 71.

२. प्रो० हबीब का निबंध Islamic Culture, Aligarh

किया गया जान पड़ता है। यहाँ पर मैना क्रुद्ध होकर उसके सिर के बालों को नोचने तक में प्रवृत्त दिखलायी गई है जिससे उस रचना की किसी ऐसी घटना पर भी प्रकाश पड़ सकता है तथा इसके साथ यह भी अनुमान किया जा सकता है कि दोनों सपत्नियों में परस्पर मेल नहीं रहा करता था। इसके सिवाय चंदा यहाँ पर उत्तेजित नहीं दिखलायी गयी है जिससे यह परिणाम भी निकाला जा सकता है कि रचना वाली मूल घटना में न केवल मैना की ओर से आक्रमण कराया गया होगा, अपितु चंदा को उससे अधिक सभ्य अथवा निर्दोष तक भी सिद्ध किया गया होगा।

उपर्युक्त 'साधन कृत मैनासत' की भूमिका वाले अंश में श्री हरिहर निवास द्विवेदी ने उस रचना विषयक धारणा का 'चंदायन' की कहानी अथवा मूला दाऊद की इस नाम वाली कृति में पीछे से जोड़ दिया जाना अनुमान किया है। उन्होंने यहाँ तक भी कल्पना कर ली है कि यह कार्य कहीं दिल्ली के आसपास किया गया होगा, क्योंकि भोपाल वाली प्रति भी "दिल्ली से आई थी"^१ और तदनुसार इस समय "जो कुछ प्राचीनतम प्राप्त है सन् १५०० ई० के लगभग का मैनासत-संयुक्त पाठ है"^२ जैसा कभी पहले नहीं हो सकता था। इसी प्रकार उनकी यह भी धारणा है कि बंगाली कवि दौलत काजी ने अपनी रचना प्रस्तुत करते समय जिस प्रति का उपयोग किया होगा वह इसके "संभवतः तीसरा संस्करण की रही होगी और वह 'मैनासत' के नाम से दौलत काजी के पास आराकान पहुँचा^३ होगा।" श्री द्विवेदी ने अपनी इस धारणा की पुष्टि में अला-ओल कवि की कुछ पंक्तियाँ भी उद्धृत की है और कहा है "वह स्पष्ट लिखता है कि पहले खण्ड में चन्द्राणी कथा है और दोप खंड में मैना की कथा है अर्थात् ये दोनों कथाएँ स्वतंत्र हैं जो एक में गूँथ दी गई हैं।"^४ परंतु जान पड़ता

१. साधन कृत मैनासत (ग्वालियर, सन् १९५९ ई०) पृ० ३७।

२. वही, पृ० ३९

३. वही, पृ० ४१

४. वही, पृ० ४७

है कि श्री द्विवेदी ने इसके साथ कतिपय अन्य बातों की ओर भी ध्यान नहीं दिया है जिनके आधार पर इससे भिन्न परिणाम भी निकाला जा सकता है और कहा जा सकता है कि उस कवि ने अपना कार्य पूरा नहीं किया, प्रत्युत वह उसे अधूरा छोड़ कर ही मर गया और उसके शेष अंश को (जिसका प्रस्तुत कर दिये गए अंश से सर्वथा 'स्वतंत्र' होना अनिवार्य नहीं कहा जा सकता) अलाओल ने समाप्त किया। दौलत काज़ी कवि की उक्त रचना 'सती मयनावती और लोर चन्द्राणी' के नाम से प्रकाशित हो चुकी है और उसके इस नाम के पूर्वार्द्ध से तथा उसकी 'प्रशस्ति' वाले अंश की कतिपय अंतिम पंक्तियों से भी पता चलता है कि दौलत काज़ी का आश्रयदाता 'महामति' अशरफ़ खाँ 'लोरक राज मयनार भारती' अर्थात् लोरक और मैना की कथा को ही श्रवण करने के लिए उत्सुक था और वह जानना चाहता था कि "कौन मते हइल मयना पतिव्रता सती" किस प्रकार मैना ने अपने पतिव्रत धर्म का सफलता पूर्वक निर्वाह किया। उसके अनुसार साधन कवि ने इसे "ठैठा चौपाइ या दोहा" में कहा था और उसकी 'गोहारी भापा' को वहाँ पर कोई विरले व्यक्ति ही समझ पाते थे। इस कारण दौलत काज़ी ने उसकी अभिलाषा की पूर्ति के लिए, इस "मयनार भारती" अर्थात् मैना की कथा को ही 'पांचाली छंद' में निर्मित कर दिया। इसी प्रकार उक्त रचना के प्रथम खंड की कतिपय अंतिम पंक्तियों द्वारा भी अशरफ़ खाँ के मुख से यही प्रश्न कराया गया मिलता है "जिस समय तक लोर वा लोरक चन्द्राणी के देश में प्रवासित रहा तब तक मयनावती अपने यहाँ क्या करती रही?" और "किस प्रकार वह लौट कर फिर 'मयनावती राज्य' में आया? तथा इसी के साथ, वहाँ पर यह भी पूछा गया दीख पड़ता है कि लोर मयना और चन्द्राणी फिर अंत में, किस प्रकार एक स्थान पर एकत्र हो गए। ऐसी दशा में, यदि उस रचना के अंतर्गत किसी बाहर से जोड़े गए अंश के विषय में अनुमान किया जा सकता है तो वह स्वभावतः, चन्द्राणी वा चंदा की कहानी वाला ही अंश हो सकता है जिसे दौलत काज़ी ने उसके खंड में कदाचित् प्रासंगिक रूप में स्थान दे दिया है। यह अनुमान इस प्रकार भी पुष्टि पा सकता है कि दौलत काज़ी की रचना का स्पष्ट आधार साधन की ही कृति

है जिसकी उपलब्ध प्रतियों में कहीं पर चंदा का प्रसंग विस्तृत रूप में दिया गया नहीं दीख पड़ता, प्रत्युत एक अन्य एवं भिन्न कथा का ही समावेश किया गया पाया जाता है। विश्व भारती के डॉ० सत्येन्द्र नाथ घोषाल ने साधन कृत 'मैनासत' से एक पद्य उद्धृत करके उसके बंगला अनुवाद का दौलत काज़ी की रचना में लगभग अक्षरशः पाया जाना दिखलाया है जिससे भी इस बात को ही समर्थन मिलता है।^१ इस कवि की प्रेमगाथा में प्रथम खंड के अंतर्गत लोरक और चन्द्राणी की कथा आती है और दूसरे खंड में मयनावती के विरह का वर्णन, वारहमासे के माध्यम से आषाढमास से लेकर बैशाख तक चलता है और 'ज्येष्ठ-मास परवेश' का अवसर आने पर अचानक बंद हो जाता है और उसे फिर अलाओल पूरा करता है।

जहाँ तक मुल्ला दाऊद की 'चंदायन' वाली मूल रचना के अंतर्गत मैनासत के प्रसंग के रहने वा न रहने का प्रश्न है इसका अंतिम समाधान कदाचित् तब तक नहीं किया जा सकता जब तक उस कवि द्वारा रचित मूल प्रति वा उसकी प्रामाणिक प्रतिलिपि न मिल सके। परंतु अब तक उपलब्ध प्रतियों के आधार पर इन दोनों कथाओं के आरंभ से ही एकत्र पाये जाने के विषय में कोई प्रत्यक्ष सन्देह नहीं किया जा सकता, न ऐसा करने के लिए यहाँ पर कोई स्पष्ट संकेत ही दीख पड़ता है। प्रेमाख्यानों के अंतर्गत किसी प्रेमी नायक का अपनी विवाहिता पत्नी के होते हुए भी किसी अन्य सुंदरी के प्रति आकृष्ट हो जाना तथा

१. एक एक करत (रटत) जिउ देऊं । जग दूसर को नांव न लेऊं ॥

फाटहि तासु नारि को हिया । एक छाड़ि जेहि दोसर किया ॥

—साधन का मैनासत (जिसका पाठ श्री द्विवेदी द्वारा संपादित पुस्तक (पृ० १८१ पर) किंचित भिन्न है)

एक एक करि मुइ दिमु निज प्राण । जगते दोसर नाम न लइमु आन ।

फाटउ कसे नारीर हृदय दारुण । एक छाड़ि भावय ये दोसरक गुन ॥

—दौलत काज़ी की रचना

उसे प्राप्त करने के लिए यत्न करने लगना बहुत अधिक पाया जाता है और कहीं-कहीं तो उसकी वैसी पत्नियों की संख्या एक से अधिक भी दीख पड़ती है। बदिद साहित्य के राजा पुरुरवा तथा महाभारत के राजा दुष्यंत विवाहित रहने पर तथा अनेक रानियों के रनिवास में होते हुए भी, क्रमशः उर्वशी एवं शकुंतला के प्रति प्रेम कर सकते थे। उनकी कहानियों को लेकर प्रेमगाथात्मक रचनाएँ प्रस्तुत की जा सकती थीं। इसके उदाहरण मध्यकालीन इतिहास में भी कम नहीं मिलेंगे, जहाँ पर अपने पति के इस प्रकार प्रवास में जाने के कारण पूर्व पत्नियों का विरहिणी बन कर झूरना तक दिखलाया गया रहता है। लोरक वा लोरिक को प्रायः किसी राजा वा वैसे ही समर्थ व्यक्ति के रूप में दिखलाया भी जाता है तथा भोजपुरी क्षेत्र से लेकर छत्तीसगढ़ तक पायी जाने वाली उसकी लोकगाथाओं के अंतर्गत, कदाचित् कोई भी ऐसा उदाहरण न मिले जहाँ पर केवल चंदा के ही साथ उसके प्रेमव्यापार का वर्णन किया गया हो तथा मैना वा मंजरी के प्रसंग का सर्वथा त्याग कर दिया गया हो। हाँ, इतना अवश्य है कि हैदराबाद (दक्खिन) की ओर पायी गई एकाध ऐसी रचनाओं में चंदा वाले अश का समावेश किया गया नहीं दीख पड़ता और उनमें वर्णित कथा प्रधानतः मैना के प्रसंग तक ही सीमित रह जाती जान पड़ती है। अतएव, यदि किसी प्रकार इस प्रेम-कहानी का प्राचीनतम रूप वह दक्षिण वाला ही सिद्ध किया जा सके तो यह अनुमान करना भी अनुचित नहीं कहा जायगा कि लोरक एवं मैना के प्रेम-प्रसंग अथवा कम-से-कम मैना के ही 'सत प्रसंग' की कथा सर्वप्रथम अस्तित्व में आयी होगी और चंदा की कथा पीछे जोड़ दी गई होगी। इसके सिवाय हमें, इस सम्बंध में इतना और भी अनमान कर लेने का आधार मिल सकेगा कि मैना एवं चंदा वाली दोनों कथाओं के एक साथ मिल जाने के संभवतः पीछे ही मुल्ला दाऊद ने अपना प्रेमालयान रचा भी होगा। इस प्रसंग में एक यह बात भी उल्लेखनीय है कि प्रवासी नायकों तथा उनके विरह में घर पर झूरने वाली उनकी विरहिणी पत्नियों की कथाओं का स्वतंत्र रूप से निर्मित होता आना कई अपभ्रंश में रचित कृतियों जैसे 'नेमिनाथ फाग', 'संदेशरासक', 'बीसलदेवरास' आदि से भी सिद्ध किया जा सकता है। अतएव, इस प्रकार की रचना-शैली के अनुसार

लोरक एक मैना की प्रेमकहानी का सर्वप्रथम रचा गया होना अस्वाभाविक भी नहीं कहा जा सकता, न यही असंभव माना जा सकता है कि चंदा वाली कथा को उसके साथ पीछे मिला दिया गया होगा। परन्तु यदि ऐसा सिद्ध नहीं किया जा सकता तो यह स्वीकार कर लेने में भी कोई हानि नहीं कि पूरी कथा संभवतः आरंभ से ही निर्मित होकर प्रचार में आयी होगी और उसके विभिन्न रूप क्रमशः पीछे बनते चले गए होंगे जैसा लोकगाथाओं द्वारा भी सिद्ध किया जा सकता है।

लोरक वा लोरिक की कोई न कोई कथा कदाचित् बहुत पहले से ही प्रचलित रहती चली आई है और न केवल उत्तर प्रदेश, गुजरात, मध्यप्रदेश, हैदराबाद (दक्षिण), राजस्थान, बिहार एवं बंगाल तक पाये जाने वाले विविध लोकगीतों में, अपितु संभवतः सर्वसाधारण में खेले जाने वाले अनेक नाट्य प्रसंगों में भी इसके किसी न किसी रूप के उपलब्ध होने का अनुमान किया जा सकता है। चौद-हवीं ईसवी गताब्दी में वर्तमान मैथिल कवि ज्योतिरीश्वर शेखराचार्य की प्रसिद्ध रचना 'वर्णरत्नाकर' में एक स्थल^१ पर 'लोरिक नाच्यो' का उल्लेख किया गया मिलता है जिसकी रचना का ठीक समय यदि सन् १३२६ ई० मान लें तो, 'चंदा-यन' उसके केवल ५२ वर्ष ही पीछे निर्मित हुई होगी और इस प्रकार मुल्ला दाऊद के जीवन-काल में भी वैसी बातों का प्रसिद्ध रहना असंभव नहीं कहला सकता।

यह लोरक वा लोरिक मूलतः कौन था? वह कोई ऐतिहासिक पुरुष था अथवा यों ही यहाँ की लोकगाथाओं में प्रसंगवश प्रवेश पा जाने वाले ऐसे कतिपय वीरों में था जिनके विषय में अनेक पौराणिक वा परंपरागत कथाएँ प्रचलित हैं? इसका तब तक उत्तर नहीं दिया जा सकता, जब तक इस सम्बंध में पूरा अनुसंधान-कार्य न किया जाय। यों तो इसका सम्बंध, नामसाम्य के आधार पर, उस भूमि के साथ भी जोड़ा जा सकता है जिसे टालमी ने समुद्र तट से भीतरी क्षेत्र तक फैली सिंध से भड़ौच तक की भूमि बतलाकर 'लारिके' (Larike) का नाम दिया है और जिसकी राजधानी का उज्जयिनी होना भी कहा है।^२ अथवा

१. दे० अध्याय १ वाले प्रथम पैरा के अंत में।

२. डॉ० मोतीचन्द : सार्यवाह (बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, पटना, सन् १९५३ ई०) पृ० १०५।

यदि हम चाहें तो, लोरक के कथा के किसी न किसी अंश की व्याख्या खगोल-सम्बन्धी घटनाओं से भी की जा सकती है, किन्तु हमारे पास अभी तक ऐसे अनुमानों को भी सार्थक रूप देने का साधन नहीं है। इसमें सन्देह नहीं कि यह प्रसंग बहुत प्राचीन काल से प्रचलित रहता आया है और एक विस्तृत क्षेत्र में लोकप्रिय भी हो जाने के कारण, इसके विभिन्न रूपों की सृष्टि हो गई है।

लोकगीतों, लोकगाथाओं अथवा लोकनाट्यों के माध्यम से प्रचलित लोरक, चंदा एवं मैना-सम्बन्धी कथा का आरंभ कहाँ, कब, किस के द्वारा तथा किस रूप में किया गया और इसका कोन-सा मूल आधार रहा इसका निर्णय करना अभी अत्यन्त कठिन जान पड़ता है। अभी तक उपलब्ध सामग्री को देखते हुए हम केवल इतना ही अनुमान कर सकते हैं कि इसके कथानक को लेकर सर्वप्रथम प्रबन्धात्मक रचना प्रस्तुत करने का प्रयास कदाचित् मुल्ला दाऊद ने ही किया होगा। उन्होंने इसे कहाँ तक प्रचलित कथा के अनुसार लिखा तथा कहाँ तक इसमें अपनी कल्पना का प्रयोग किया इसके विषय में कहा नहीं जा सकता। परन्तु इतना मान लेने में कदाचित् सत्य से अधिक दूर जाना नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने इसे अपने मत प्रचार का साधन बनाने का विचार भी अवश्य किया होगा तथा ऐसा करते समय, उन्होंने इसके अंतर्गत कतिपय तदनुकूल बातों का समावेश भी कर दिया होगा। मुल्ला बदार्थूनी (सन् १५४०-९६ ई०) ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'मुन्त-ख़िवुत् तवारीख़, में इसके सम्बन्ध में लिखा है "सन् ७७२ हि० (सन् १३७० ई०) में ख़ाँ जहाँ मक़बूल का देहान्त हुआ जो फ़ीरोज़शाह तुग़लक़ का बज़ीर था और उसकी जगह उसका पुत्र जूनाशाह नियुक्त हुआ और हिंदी की मसनवी 'चंदायन' जिसमें लोरिक एवं चंदा की प्रेमकहानी दी गई है और जो सचमुच प्रेरणा प्रदान करने वाली है उसको मुल्ला दाऊद ने उसके (जूनाशाह के) ही नाम पर निर्मित की। इस क्षेत्र में यह इतनी प्रसिद्ध है कि इसकी प्रशंसा करने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। एक अवसर पर मख़दूम शेख़ तकी उद्दीन वायज़ ख़वानी ने इसके कुछ अंश पढ़े जिसे सुनकर लोग एक विचित्र प्रकार के आनन्द में मग्न हो गए। जब उस समय के कुछ व्यक्तियों ने शेख़ से इस मसनवी को काम में लाने का कारण जानना चाहा तो उन्होंने उन्हें बतलाया कि यह सारी की सारी रचना ईश्वरीय

सत्य एवं गौरव से भरपूर है, गंभीर साधकों वा जानकारों के लिए आनन्ददायक है तथा उनके उल्लासपूर्ण चिन्तन के लिए भी उपयुक्त है। इसके सिवाय हम इसे कुरान शरीफ़ की कतिपय 'आयतों' और 'हिंद' के मधुर संगीत के अनुकूल भी पाते हैं। इस समय भी इस रचना के सरस गीतों का गान करके लोग श्रोताओं के हृदयों पर अपना अधिकार जमा लिया करते हैं^१।" इस प्रकार जान पड़ता है कि इस इतिहास लेखक तथा इसके प्रसिद्ध समसामयिक सम्राट् अकबर राज्य-काल (सन् १५५६-१६०५ ई०) में यह रचना बहुत लोकप्रिय रही होगी। पता चलता है कि कदाचित् इसके पहलेही, अब्दुलकदूर-संगोही (सन् १४५६-१५३७ ई०) ने 'चंदायन' का फ़ारसी अनुवाद भी आरंभ किया था, किन्तु वह बहलोल लोदी एवं हुसेनशाह शर्की की किसी लड़ाई के समय नष्ट हो गया। इसकी चर्चा उनके पुत्र शाह रुकनुद्दीन ने अपनी रचना 'लतायफ़े कुद्दूसिया' में भी की है जिसे उसने अपने पिता के सम्बंध में लिखी है^२। श्री नसीरुद्दीन हाशमी की पुस्तक 'दकन में उर्दू' में कहा गया है कि उधर के गवासी नामक कवि (१७ वीं शताब्दी) ने भी अपनी एक हिंदवी मसनवी 'चंदा और लोरक' की रचना किसी फ़ारसी ग्रंथ के ही आधार पर सन् १०३५ हि० अर्थात् सन् १६२५ के पहले ही होगी^३, किन्तु इसकी उस मूल पुस्तक का भी कोई पता नहीं चलता। गवासी की ही एक उपलब्ध रचना 'मसनवी गवासी दकनी' की कुछ पंक्तियों के "तू चंदा मैं लोरक हूँ नौकर तेरा^४" जैसे अंशों के आधार पर कहा जा सकता है कि उसके अंतर्गत

1. Rare Fragments etc. के पृ० ७ पर उद्धृत।

२. शाह रुकनुद्दीन के अनुसार कुद्दूसी ने मूल पुस्तक की ये पंक्तियाँ भी दी थी—

“ऊँच बिरख बहुर लाग अकासा । हाथ चढ़े की नाहीं आसा ।

कह जो कथ को बाँह पसारे । तरवर डाल झुकै को पारे ॥

रैन दिवस बहुत रखवारा । नैनन देख जाय सुमारा ॥”

३. लाहोर (सन् १९५२ ई०) संस्करण, पृ० ७८।

४. श्रीराम शर्मा : दक्खिनी का पद्य और गद्य (हैदराबाद सन् १९५४ ई०)

पृ० २८७।

भी लोरक चंदा वाले ही प्रेमाख्यान की कथा कही गई होगी अथवा उसके किसी अंश का वर्णन किया गया होगा ।

मुल्ला दाऊद के पीर के बारे में इनना अवश्य पता चलता है कि निजामुद्दीन औलिया के खलीफ़ा ख़ास नसिरुद्दीन अवधी 'चिराग़ देहली' के भाजे खलीफ़ा शेख़ ज़ैनुद्दीन थे जिनकी चर्चा अब्दुल हक़ और प्रो० हबीब ने की है^१ ।

मुल्ला दाऊद की रचना 'चंदायन' के अनन्तर लिखी गई किसी उत्तरी भारत की हिंदी प्रेमगाथा का सूफ़ी कवियों द्वारा लिखे जाने का पता सवा सौ वर्षों तक नहीं चलता और उस समय के पीछे सन् १५०३ ई० में निर्मित शेख़ कुतबन की 'मृगावती' ही अभी तक उपलब्ध है । परंतु, संयोग की बात है कि इस रचना की भी पूरी प्रति अभी तक नहीं मिल सकी है, अथवा कम से कम कहीं से प्रकाशित नहीं हो पाई है । इसकी आज तक प्राप्त अधूरी प्रतियों के आधार पर जिस कथानक का अनुमान किया जा सका है वह इस प्रकार है—“चन्द्रगिरि के राजा गनपति देव का पुत्र राजकुंवर आखेटप्रिय था, जिस कारण एक दिन उसने किसी सतरंगी हरिणी के पीछे अपना घोड़ा डाल दिया । परंतु उसका वह शिकार किसी सरोवर में छिप गया जिसमें इसने स्नान किया और उसकी खोज में व्यस्त हो गया । इधर इसके साथी राजा के यहाँ लौट आये और उनसे अपने पुत्र की दशा का परिचय पाकर उसने स्वयं जंगल में जाकर उसे समझाना चाहा । परंतु जब राजकुंवर वापस जाने को तैयार न हुआ तो उसने उक्त सरोवर के निकट इसके लिए कोई मन्दिर बनवा दिया । राजकुंवर वहीं पर उस हरिणी के लिए व्याकुल पड़ा रहता था । तत्पश्चात् किसी दिन उसमें स्नान करने के लिए सात अप्सराएँ आयीं जिन्हें उड़ने तथा अपना रूप परिवर्तित कर देने की कला का अभ्यास था । राजकुंवर ने उनमें से एक अर्थात् मृगावती के प्रति आकृष्ट होकर उसे अपनाना चाहा, किंतु वह उड़ गई । फिर, किसी दूसरे दिन उनके वहाँ आने पर इसने मृगावती के वस्त्र छिपा दिये जिससे विवश होकर यह इसके समक्ष प्रकट हुई और इसने उससे अपनी दशा का वर्णन किया । मृगावती भी इस पर प्रेमासक्त हुई

१. 'अख़्तराहल अख़्तियार' और नसीरुद्दीन पर प्रो० हबीब की पुस्तक देखिये ।

और दोनों ने फिर मन्दिर में जाकर प्रेमालाप किया तथा मृगावती ने अपने हरिणी होने की भी चर्चा की । इस प्रकार दोनों वहाँ से चन्द्रगिरि भी चले आए और आनन्दपूर्वक रहने लगे । परंतु एक दिन अपने छिपाये गए वस्त्र को पाकर मृगावती वहाँ से उड़ गई और सेविका को अपना पता बतला कर अपने पिता रूप मुरारि के यहाँ कंचनपुर चली गई । फलतः राजकुंवर उसके विरह में फिर दुखी हो गया और सेविका से संकेत पाकर एक दिन वह योगी के वेश में निकल पड़ा । मार्ग में इसने समुद्र से घिरे हुए किसी पहाड़ पर रुक्मिणी नामक सुंदरी को किसी राक्षस के चंगुल से छुड़ाया और उसके पिता ने इसका व्याह उसके साथ कर दिया । इसी बीच मृगावती के पिता का देहान्त हो चुका था और वह स्वयं उसके सिंहासन पर आसीन थी । राजकुंवर कंचनपुर पहुँचकर उसके यहाँ गया, उससे मिला तथा उसके साथ वहाँ पर १२ वर्षों तक रहकर दो पुत्रों को भी जन्म दिया । इधर इसके पिता गनपति देव इसके लिए चिन्तित हो रहे थे, जिस कारण उन्होंने इसकी खोज में अपने पुरोहित को भेजा । यह उसके कहने पर मृगावती के साथ अपने घर वापस आ गया । मार्ग में इसने रुक्मिणी को भी अपने साथ ले लिया और यहाँ दोनों सहित भोगविलास करने लगा । परंतु यहाँ, किसी दिन आखेट करते समय, राजकुंवर हाथी से गिरकर मर गया और इसकी दोनों ही रानियाँ इसके शव को लेकर सती हो गई ।

शेख कुतबन ने अपनी इस रचना का निर्माण-काल (संवत् १५६० तथा सन् १०९ हि० अर्थात् सन् १५०३ ई०) भी दिया है और बतलाया है कि इसकी कथा कदाचित् पहले से ही प्रचलित रही जिसे उसके 'अर्थ' को भी खोलते हुए उसने दोहा, चौपाई, सोरठा, अरिल्ल आदि के द्वारा लिख दिया । ऐसा करते समय, उसने इसके अंतर्गत देशी शब्दों एवं मुहावरों के भी प्रयोग कर इसको बहुत आकर्षक बना दिया । इस कवि ने अपने 'पीर' का नाम शेख बुढन दिया है तथा 'शाहे-वक्त' का नाम भी 'साहे हुसेन' बतलाकर उसके 'छत्रसिंघासन' का 'छाजा' होना कहा है । इस बादशाह वा सुलतान को शेख कुतबन ने एक महादानी, धर्मात्मा एवं ऐश्वर्य सम्पन्न भी ठहराया है । इसे कर्ण एवं युधिष्ठिर तक का समकक्ष बतलाते हुए इसकी इतनी प्रशंसा कर दी है जिससे इसके विषय में ठीक-ठीक पता लगा

पाना कठिन हो जाता है। कुछ लोगों ने इसे शेरशाह का पिता हुसेन समझ लिया था जो वस्तुतः उसके 'हुसेन खाँ' होने से ठीक नहीं कहा जा सकता। यह इस कारण भी, अमान्य ठहराया जा सकता है कि इस पठान सरदार को उस समय 'बड़राजा' की कोई पदवी भी नहीं दी जा सकती थी। उत्तर कुतबन के समसामयिक दो अन्य ऐसे 'हुसेन शाह' भी वर्तमान थे जिनके विषय में उक्त प्रकार की बातों का कहना उपयुक्त हो सकता था। इनमें से एक जौनपुर का शासक सुलतान हुसेन शाह शर्की था जिसे सिकन्दर लोदी ने सन् १४९४ ई० में बनारस के निकट हराया था और जो वहाँ से भागकर बंगाल के शासक की शरण में गया तथा भागलपुर जिले के 'कहलगाँव' में रहते समय, सन् १५०० ई० में मर गया। उस बंगाल जिले के शासक का भी नाम अलाउद्दीन हुसेन शाह (सन् १४९३-१५१९ ई०) था तथा वह बहुत उदार एवं कला-साहित्य का प्रेमी भी था। अतएव, यह प्रश्न उठ सकता है कि शेख कुतबन ने यहाँ पर अपने आश्रयदाता हुसेन शाह शर्की का नाम लिया है अथवा इसने उसको भी शरण देने वाले बंगाली हुसेनशाह की ओर संकेत करते हुए उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा कर दी है। स्पष्ट है कि 'मृगावती' के रचना-काल सन् १५०३ ई० तक हुसेन शाह शर्की का देहान्त हुए लगभग तीन-चार साल व्यतीत हो चुके थे। इसकी रचना केवल "दो मास एवं दस दिन" में ही पूरी हो जाने के कारण, उसके जीवन काल के अंतर्गत इसका आरंभ होना तक भी नहीं कहा जा सकता था। उसका नाम केवल उसी दशा में लिया जा सकता था जब उसे, 'शाह हुसेन बड़राजा' रहा है और इसका 'छत्र सिंघासन' भी कभी मुगोभित रह चुका है जैसे शब्दों के प्रयोग द्वारा न स्मरण किया जाय, जो यहाँ पर खींचातानी की स्थिति में ही संभव होगा। परंतु, यदि बंगाल के हुसेन शाह का सम्बंध उपर्युक्त प्रशंसा के साथ जोड़ा जा सके तो केवल इतनी ही कठिनाई पड़ सकती है कि वह बंगला भाषा का उच्चायक शासक शेख कुतबन की अवधी कृति के लिए उत्साह प्रदान करने वाला नहीं ठहराया जा सकता है। प्रो० अस्करी ने इसीलिए उसे विदेशी (of alien origin) कहा है और अनुमान किया है कि उसे उत्तर प्रदेश एवं अवधी से कुछ भी प्रयोजन न होगा, क्योंकि वह अधिक से अधिक बिहार तक ही अपना अधिकार जमा सका

था । इसके विपरीत हुसेन शाह शर्की तिरहुत एवं उड़ीसा तक विजय प्राप्त कर चुका था, दिल्ली के मुलतानों से लड़ा था तथा कवि एवं संगीतज्ञ भी रहा¹ । फिर भी, इसका मरण हो जाने के कारण, शेख कुतबन द्वारा इसके नाम का 'शाहे-वक्त' के रूप में लेना तथा इसके विषय में 'आहि वड़ाजा' अर्थात् 'बड़े राजा हैं' तक कहना अनुपयुक्त ही समझा जा सकता है, जहाँ इसके शरणदाता हुसेन के लिए वैसा कह डालना उतना अनुचित न जान पड़ा होगा ।

शेख कुतबन के पीर शेख बुढ़न कौने थे, इस विषय में भी मतभेद ही दीख पड़ता है । 'आईन-ए-अकबरी' में किये गए उल्लेख से प्रकट होता है कि एक शेख बुढ़न शत्तारी शेख अब्दुल्ला शत्तारी के वंशज थे और सुलतान सिकन्दर लोदी (सन् १४८९-१५१७ ई०) के समकालीन भी थे । वहाँ पर यह भी कहा गया मिलता है कि उस ग्रन्थ के रचयिता के पिता के बड़े भाई शेख रिज़क उल्लाह शेख बुढ़न से मिले थे और उनसे उन्होंने 'ज़िक्र' की साधना की शिक्षा भी ग्रहण की थी² । परन्तु इस शेख बुढ़न का नाम 'अखवारुल असफ़िया' एवं 'अखवारुल अखियार' में भी शेख 'बोधन' न कि 'बुढ़न' दिया गया जान पड़ता है । 'मृगावती' की ही एक पंक्ति 'सुहर्वदी जिन्ह लग निरमरे' द्वारा यह भी सूचित होता है कि जिस अपने "पीर के चरणों में शेख कुतबन बैठ चुके थे" उसका सम्बन्ध सूफ़ियों की सुहर्वदी शाखा से हो सकता है । अतएव, उनके शत्तारी होने का अनुमान हमें साधार नहीं प्रतीत होता और वह अधिक से अधिक संदिग्ध बना रह जाता है । चाहे शेख बुढ़न जिस किसी भी शाखा के रहे हों शेख कुतबन ने उनके प्रति अपार श्रद्धा प्रदर्शित की है और उन्हें अपना 'सबसे बड़ा पीर' भी कहा है । प्रो० अस्करी द्वारा किये गए एक उल्लेख से पता चलता है कि शेख कुतबन की एक मज़ार भी वर्तमान है, किन्तु उसका और विवरण उपलब्ध नहीं है । शेख कुतबन के पीर बुढ़न का नाम लेते समय डॉ० सुकुमार सेन ने उसे 'बुरहान' भी कहा है जिससे जान पड़ता है कि वे इन दोनों शब्दों को एक दूसरे का पर्याय जैसा

1. Rare Fragments of Chandain etc. p. 23.

2. Dr. Mohan Singh : Kabir and the Bhakti Movement, Vol. I p. 93.

मानते हैं तथा इसी के आधार पर उन्होंने शेख बुदुन का चिश्तिया शाखा का भी होना बतलाया है^१। आचार्य शुक्ल ने भी अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' के अंतर्गत पहले ऐसा ही मत प्रकट किया था। परन्तु इन दोनों में से किसी ने भी, अपनी इस धारणा की पुष्टि में कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया था, न उक्त 'मुहबंदी' के साथ कोई सामंजस्य बिठा सके थे, क्योंकि उनके वैसा लिखने के समय तक अभी कदाचित् इस शब्द वाली पंक्ति का पता नहीं चल पाया था। डॉ० सेन द्वारा उद्धृत—

धरम जुदिष्ठिल उनको छाजा । हम सिर छाह जियो जगराजा ।

दान देई औ गनत न पारे । बलि ओ करन न सरवर थारे ॥^२

पंक्तियों में आये हुए आशीर्वादात्मक 'जियो' तथा वर्तमान काशीन 'देइ' शब्दों के आधार पर यह अवश्य सूचित हो सकता है कि शेख कुतबन के इन्हें प्रयोग करते समय हुसेन शाह संभवतः जीवित होगा और दान भी देता रहा होगा तथा इसके द्वारा उपर्युक्त अनुमान का समर्थन भी किया जा सकता है कि यह 'जीवित' सुलतान बंगाल का ही रहा होगा। यह अवश्य है कि 'मृगावती' की सम्पूर्ण प्रति का प्रामाणिक पाठ मिल जाने पर ही इस विषय में, कोई अन्तिम बात कही भी जा सकती है। पता चला है कि श्री उदयशंकर शास्त्री ने 'मृगावती' की पूरी प्रति सम्पादित कर उसे प्रकाशनार्थ दे रखी है।

शेख कुतबन के इस प्रकार कहने से कि इस रचना के अंतर्गत कही गई प्रेम-कहानी पहले से चली आती थी, यह पूर्णरूप से स्पष्ट नहीं हो पाता कि 'चंदायन' की प्रेमकथा की भाँति वह किसी लोकगाथा वा लोकगीत के रूप में वर्तमान थी अथवा इसके विषय में किसी पुस्तक का निर्माण भी हो चुका था और यदि यह दूसरी बात रही तो वह रचना कौन-सी थी। उससे केवल इतना ही पता चल पाता है कि उसे इन्होंने 'फिर से' अपने ढंग से 'गेय रूप दे दिया'। इस कवि

१. डॉ० सुकुमार सेन : बाँगला साहित्येर इतिहास (प्रथम खण्ड) कलिकाता

सन् १९५० ई०, पृ० ५६३।

२. वही पृष्ठ।

के द्वारा मूल आधार बनायी गई ऐसी कथा के सम्बंध में अभी तक संभवतः किसी ने कोई निश्चित अनुमान भी नहीं किया है। इसके सिवाय अभी तक हमें इस बात का भी कोई पता नहीं चल सका है कि इसके कथानक को लेकर वा उसको अंशतः अपनाते हुए भी, किसी हिन्दी कवि ने पीछे कोई रचना की हो। 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' द्वारा प्रकाशित 'हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण' (पहला भाग) से पता चलता है कि किसी मेघराज प्रधान नामक कवि ने 'मृगावती की कथा' नाम से कोई रचना सं० १७२३ (सन् १६६६ ई०) में लिखी थी जिसमें "कुँअर इन्द्रजीत और मृगावती की प्रेमकथा का वर्णन" पाया जाता है और उसकी उपलब्ध प्रति का लिपिकाल सं० १८०६ (सन् १७४९ ई०) है वही पर एक नीचे वाली टिप्पणी के आधार पर यह भी ज्ञात होता है कि यह कवि सं० १७१७ (सन् १६६० ई०) के लगभग वर्तमान था, जाति का कायस्थ रहा तथा वह ओरछा नरेश राजा सुजान सिंह का 'आश्रित' भी था।^१ संभवतः इसी मेघराज प्रधान की 'मकरध्वज की कथा' नामक रचना का विवरण 'सभा' वाले 'चौदहवे वार्षिक विवरण' में भी दिया गया दीख पड़ता है^२, किंतु इससे अधिक ज्ञात नहीं है इसके अतिरिक्त हमें इस प्रकार के जान पड़ने वाले ग्रंथों में से दो जैन कवियों की रचनाओं की भी सूचना मिलती है जिनमें से एक विनय समुद्र की कृति 'मृगावती' चौपाई सं० १६०२ (सन् १५४५ ई०) है^३ और दूसरी समय सुन्दर द्वारा निर्मित 'मृगावती रास' सं० १६६८ (सन् १६११ ई०) है^४ जिसका भी नाम अन्यत्र 'मृगावती चौपाई' ही दिया गया दीख पड़ता है^५। इनमें

१. (बनारस, सं० १९८०), पृ० १२४

२. हस्तलिखित हिन्दी ग्रंथों का चौदहवाँ वार्षिक विवरण (काशी, सं० २०११ वि०) पृष्ठ ४३९-४४०।

३. डॉ० हीरालाल माहेश्वरी : राजस्थानी भाषा और साहित्य (कलकत्ता १९६० ई०) पृ० २५७।

४. 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' (वर्ष ५७, अंक १, सं० २००९) पृ० १७।

५. जैन गुर्जर कविओ (प्रथम भाग), (अहमदाबाद, सन् १९२६ ई०) पृ० ३४३।

से प्रथम रचना का कोई संक्षिप्त परिचय भी हमें उपलब्ध नहीं है और जो दूसरी का विवरण मिलता है उसके आधार पर विदित होता है कि इसके अंतर्गत 'उदयन कुमर मृगावती राणी' की कथा दी गई है तथा इसमें शील के प्रभाव को उदाहृत भी किया गया है। इसके तृतीय खण्ड के सम्बंध में किये गए संकेतों द्वारा यह भी जान पड़ता है कि इसके अन्तर्गत "श्री विरागमन, मृगावती दीक्षा, उदयन श्रावक व्रत ग्रहण, मृगावती चंदना केवलोत्पत्ति तन्निर्वाण वर्णन" जैसे विषयों का समावेश किया गया है^१ जिससे यह शंख कुतवन की रचना वाले विषय से सम्बद्ध न होगा।

परन्तु उस विषय को अथवा 'मृगावती' के कथानक को पूर्णतः अथवा अंशतः लेकर तथा कभी-कभी उसे अपने ढंग से और अधिक विस्तृत रूप भी देकर लिखने वालों में, कई बंगला कवियों के नाम लिये जा सकते हैं जिनमें से दो 'द्विज पशुपति' एवं 'द्विज राम' नामों द्वारा अभिहित किये गए हैं जो इसी कारण, हिन्दू जान पड़ते हैं। इन दोनों में से 'द्विज पशुपति' की रचना का नाम 'चन्द्रावली' है जिसे संभवतः १७वीं ईसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध काल में लिखित कहा जा सकता है^२। इसमें नायक का नाम, विश्वकेतु दिया गया मिलता है जो कनकानगर के राजा किसी अश्वकेतु तथा उसकी रानी सुलक्षणी का पुत्र है। इसी प्रकार इसकी नायिका का नाम 'चन्द्रावली' है जो रत्नपुर के राजा चन्द्रसेन की पाँच कन्याओं में से सबसे छोटी है। चन्द्रावली इन्द्र की सभा में नृत्य किया करती है और इसके प्रति उन्हे प्रेम भी हो जाता है, किंतु इसका यह प्रत्याख्यान कर देती है जिस पर क्रुद्ध होकर वे इसे बारह वर्षों तक हरिणी के रूप में वर्तमान रहने तथा वन के काम सरोवर में डुबकी लगाकर मुक्ति पाने के विषय में शाप देते हैं। इस बारह वर्ष की अवधि के पूर्ण होते समय विश्वकेतु किसी दिन आखेट में इस 'चन्द्रावली हरिणी' को देख लेता है जो वन में प्रवेश कर जाती है तथा जिसे काम-सरोवर में डुबकी लगाते ही अपना पूर्व रूप मिल जाता है। वह विश्वकेतु को

१. वही, पृ० ३४४-३४६।

२. डॉ० सुकुमार सेन : इसलामि बांगला साहित्य, पृ० ३४।

अपना परिचय देकर अन्तर्हित हो जाती है। विश्वकेतु उसके लिए विरही बनकर वहीं ठहरा जाता है और उसका पिता उसके लिए वहाँ एक प्रासाद बनवा कर उसकी परिचर्या के लिए किसी 'धात्री सुमति' को नियुक्त कर देता है जिसके परामर्श द्वारा इस राजपुत्र को कुछ धैर्य मिलता है। निर्दिष्ट दिन को पाँचों बहनों, अप्सराओं के रूप में काम सरोवर पर आती है और विश्वकेतु उनके वस्त्र छिपा देता है जिससे वे जल के बाहर नहीं आ पातीं। इसी समय 'चन्द्रावली' किसी पद्मपत्र पर एक श्लोक लिखकर छोड़ देती है जिसे पकड़ने के प्रयास में विश्वकेतु और उसके साथी झगड़ने लग जाते हैं और अप्सराएँ भाग निकलती हैं। राजपुत्र और भी दुखी हो जाता है, किंतु दूसरे ऐसे अवसर पर, वह 'चन्द्रावली' के वस्त्र छिपा देता है और यह उसके वश में आ जाती है। तत्पश्चात् ये सभी राजधानी में जाते हैं और राजा 'चन्द्रावली' के साथ विश्वकेतु का विवाह करने की तैयारी में लग जाता है, किंतु यह ज़िद करती है कि मैं अपनी बहनों के आने पर ही विवाह करूँगी। इस पर इसे समति के पास रखकर पिता-पुत्र विवाह के व्यवस्था में लगते हैं। तब तक यह अपने छिपाये गए वस्त्रों को पाकर फिर एक बार अन्तर्हित हो जाती है और जाते समय यह सुमति को कुछ संकेत भी दे जाती है जिसके आधार पर इससे विश्वकेतु की फिर रत्नपुर में भेंट हो सकती है।

विश्वकेतु को जब उसके अन्तर्धान होने का पता चलता है तो वह कालिका देवी का पूजन करता है और योगी के वेश में निकल पड़ता है। कुछ दूर जाने पर उसके कानों में 'बयालिस स्वरों का गीत' सुनायी पड़ता है जिसकी शिक्षा पाने के लिए वह बचपन से ही व्यग्र रहता था। वह उसी ओर जाता है जहाँ उसकी भेंट किसी श्री वत्सर से होती है जिसकी सहायता करके यह उससे उन बयालिस रागों को खोज लेना चाहता है। फिर यह उससे संगीत विद्या प्राप्त कर तथा उसके द्वारा नियुक्त चतुर्ध्वज नामक सुन्दरी को छोड़कर रत्नपुर की ओर आगे बढ़ता है। वह फिर नाना देशों से घूमता-फिरता समुद्र की धाराओं में पड़ जाता है और वहाँ पर किसी घड़ियाल का उद्धार कर फिर किसी राक्षस द्वारा ग्रस्त तरुणी को भी बचा लेता है जिसके फलस्वरूप वहाँ का राजा प्रसन्न होकर उस कन्या के साथ इसका विवाह भी कर देता है। इसके अनन्तर विश्व-

केतु के मार्ग में घोर वन पड़ जाता है जिसके भीतर इसे कुछ नैराश्य प्रतीत होने लगता है, किंतु यह फिर किसी एक बुढ़िया की कुटिया में जाकर विश्राम कर लेता है। पीछे उससे भी विदा ले किसी दूसरे वन में पहुँच जाता है जिसमें यह स्वर्ण शय्या पर पड़ी हुई किसी चित्रमाला नामक तरुणी को देखता है। वह किसी राक्षस द्वारा अपहृत की गई रहती है जिसके साथ मल्लयुद्ध करके यह उसका वध कर देता है और चित्रमाला को उसके पिता के यहाँ पहुँचा देता है जिसका नाम उदय-चन्द्र है और जो प्रसन्न होकर इसे अपनी उस कन्या को अर्पित कर देता है। फिर विश्वकेतु विहड़ नगर में जाता है, जहाँ के लोग भेड़ा पालते और मांस खाया करते हैं तथा जहाँ के राजपुत्र को बन्दी बनाने वाले 'मसाम्बर' को मार कर यह किसी अन्य बुढ़िया और उसके अनुचरों के फेर में पड़ जाता है, किंतु वहाँ से निकल कर वह कांचननगर के राजा के यहाँ पहुँचता है और उसे 'वयालिस राग' सुनाता है। वहीं पर इसे किसी योगी गुरु रुद्रभारत से रत्नपुर के मार्ग का पता चल जाता है और यह उससे योगसाधना की भी शिक्षा ग्रहण करता है। फिर वह योगी इसके उरु का मांस काट कर काली-पूजा करता है और इसे मंत्र में देता है। इसके अनन्तर विश्वकेतु फिर आगे बढ़ता है, दो समुद्रों को पार कर तीसरे समुद्र में जाता है और डोंगी के उलट जाने पर तिमिंगल मछली से धक्का खाता है और नाव की किसी पटरी के सहारे पार उतर पाता है। वहाँ यह किसी तीसरी बुढ़िया का आश्रय ग्रहण करता है और एक अजगर का उद्धार करके उससे एक मणि प्राप्त करता है। उसे लेकर यह अंत में 'चन्द्रावली' के जलाशय तक पहुँच जाता है और इसकी राजपुत्र सुलभ आकृति से प्रभावित होकर उसकी दासियाँ उसे इसकी सूचना दे देती हैं। 'चन्द्रावली' वहाँ पर इसकी परीक्षा लेने का भी यत्न करती है, किंतु, फिर इसे भली भाँति पहचान कर इसे अपना लेती है। दोनों की विवाह-विधि भी सम्पन्न हो जाती है तथा उसे एवं चित्रमाला को साथ लेकर विश्वकेतु अपने यहाँ वापस आ जाता है^१। 'चन्द्रावली' की इस कथा

१. डॉ० सुकुमारसेन : इसलामि बांगला साहित्य (वर्द्धमान साहित्य सभा, बंगाल १३५८), पृ० ३४-९ ।

की कुछ बातें 'कथा सरित्सागर' की 'मृगावती' वाली उस कथा के प्रसंगों से मिलती है जिसमें अलम्बुषा नामक अप्सरा का इन्द्र के शाप द्वारा मृत्युलोक में आकर अयोध्या के राजा कृतवर्मा की पुत्री मृगावती होना पड़ता है और उसे तिलोत्तमा के शाप से अपने प्रेमी सहस्रानीक से १४ वर्षों तक वियुक्त होना पड़ जाता है^१। इस प्रकार शेख कुतबन की 'मृगावती' वाली कथा तथा 'द्विज पशुपति' की इस 'चन्द्रावली' वाली कहानी के वस्तुतः एक होने में कोई सन्देह नहीं रह जाता। हो सकता है कि दोनों का मूल कथानक किसी तीसरी कथा से लिया गया हो अथवा पर-वर्ती कवि ने पूर्ववर्ती का अनुसरण किया हो।

'द्विजराम' कवि की रचना का नाम 'मृगावती चरित्र' है जिससे पता चलता है कि इसमें भी, संभवतः उसी प्रेमाख्यान का विषय होगा। परंतु, इस सम्बंध में अधिक विवरण उपलब्ध न हो सकने के कारण, कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। 'द्विज पशुपति' की 'चन्द्रावली' के अंतर्गत उसके कथानक के 'मृगावती' जैसा होने के अतिरिक्त, कुछ ऐसी बातें भी लक्षित होती हैं जिनके द्वारा उसका कम से कम सूफ़ी प्रेमाख्यानों के आदर्श पर लिखा जाना अनुमान किया जा सकता है। परंतु, इस दूसरी रचना के भी सम्बंध में इस प्रकार समझ लेने के लिए कोई साधन हमें नहीं मिलता। इसके विपरीत एक तीसरे बंगला प्रेमाख्यान 'मृगावती यामिनी भान' के विषय में कहा जाता है कि उस पर "बंगला इसलामी पद्धति की छाप पूर्ण मात्रा में पायी जाती है^२।" इस प्रेमकहानी का नायक यामिनी भान बनारस के राजा जगत् चन्द्र राय तथा उसकी रानी भवानी का पुत्र है और इसकी नायिका मृगावती परी कांचीपुर के राजा रूपरंग राय की पुत्री है और इसके सम्बंध में इतना और भी कहा गया मिलता है कि यह न केवल एक छोटी सी कथा है, अपितु यह किसी कुतबन की 'मृगावती' से भिन्न एवं परिवर्ती काल की हिन्दी रचना के आधार पर निर्मित की गई जान पड़ती है। 'मृगावती यामिनी भान' के रचयिता का नाम मुहम्मद खातेर दिया गया है, किंतु

१. द्वितीय लम्बक, प्रथम तरंग।

२. डॉ० सुकुमार सेन : इसलामि बांगला साहित्य, पृ० ४०

इसके रचनाकाल का उल्लेख नहीं किया गया है। इसी प्रकार किसी करीमुल्ला हवि द्वारा रचित 'यामिनी भान' की भी चर्चा की गई है और बतलाया गया है कि यह छोटी-सी पुस्तक न होकर कदाचित् मुहम्मद खातेर की प्रेमकहानी से बड़ी है और यह संभवतः १८वीं शताब्दी में निर्मित की गई है। इसी प्रकार 'मृगावती वरित्र' की भाषा के विषय में कहा गया है कि वह "कामरूपी उपभाषा है" जिसे पुरानी असमी' भी कह सकते हैं^१।

शेख़ कुतबन की 'मृगावती' की रचना, ठीक-ठीक उसके पूर्ववर्ती प्रेमाख्यान 'चंदायन' के ही आदर्श पर की गई थी, ऐसा नहीं कहा जा सकता। 'चंदायन' का नायक लोरक पहले से विवाहित रहा करता है अथवा कम से कम, उसकी सगाई तक मंजरी से हो गई रहती है जो बात हमें 'मृगावति' के नायक राजकुंवर के यहाँ भी नहीं दीख पड़ती और यह संभवतः आरंभ से ही प्रेमी-जैसा जीवन व्यतीत करने योग्य निर्मित रहता है। इसी प्रकार 'चंदायन' की कथा में जहाँ नायिका को भगा ले जाने, उसे लाते समय मार्ग में अनेक प्रतिद्वन्द्वियों के साथ टुट्ट करन तथा इस प्रकार, उसके प्रति विभिन्न व्यक्तियों की कामासक्ति प्रदर्शित करने की भी प्रवृत्ति दीख पड़ती है, वहाँ ऐसा कोई अवसर 'मृगावति' के अंतर्गत नहीं उपस्थित किया जाता। इसके नायक को अपनी प्रेमपात्री को प्राप्त करने के लिए जो यत्न करने पड़ते हैं अथवा जो बाधाएँ झेलनी पड़ती हैं उनके प्रसंग इससे मिलने के पूर्व ही आ जाते हैं। 'चंदायन' का नायक एक ऐसे वीर पुरुष के रूप में चित्रित किया गया है जो भलीभाँति शिक्षित एवं संस्कृत नहीं जान पड़ता, न जिसे अपनी बुद्धि के बल पर कोई कार्य करने आता है अथवा जो छलछिद्र के साथ किसी के प्रति कोई व्यवहार ही कर सकता है। वह अपनी लड़ाइयों में जीतता है, हारता है और ठगा तक जाता है, किंतु सदा भाग्यचक्र द्वारा ही प्रेरित होता जान पड़ता है। जहाँ 'मृगावति' का राजकुंवर अपने निश्चित उद्देश्य को लेकर प्रेममार्ग में अग्रसर होता है, एकान्तनिष्ठ होने के कारण, विभिन्न कठिनाइयों को झेलता हुआ तथा दूसरों के संपर्क में आकर उनसे कुछ न कुछ लाभ भी उठाता

हुआ चलता है और अत में 'मृगावती' से मिल कर ही दम लेता है। अतएव, इन जैसी कतिपय अन्य बातों के भी आधार पर हम कह सकते हैं कि 'चंदायन' की प्रेमकहानी का कथानक जितना दो व्यक्तियों के पारस्परिक प्रेम तथा उनके जीवन में पड़ने वाले विघ्नों के चित्रण की ही सामग्री प्रस्तुत करता है, वहाँ 'मृगावति' की कथावस्तु अन्य ऐसी अनेक बातों के भी वर्णन का अवसर उपस्थित कर देती हैं जिनके सहारे हमें प्रेममत्त्व और प्रेमसाधना का रहस्य समझ पाने में भी सहायता मिल सके। इसी कारण, इस दूसरे प्रेमाख्यान को हम सूफ़ीमत की व्याख्या के सम्बंध में अधिक उपयुक्त भी ठहरा सकते हैं। 'चंदायन' की रचयिता का कार्य इस दृष्टि से उतना सरल नहीं था जिस कारण पीछे के हिन्दी सूफ़ी प्रेमाख्यानों में उसका ठीक-ठीक अनुसरण नहीं किया गया।

फिर भी, इन दोनों प्रारंभिक रचनाओं के तुलनात्मक अध्ययन से पता चलता है कि शेख कुतबन 'चंदायन' द्वारा अवश्य प्रभावित रहे होंगे^१। इसे उन्होंने पढ़ा-सुना होगा तथा इसमें लक्षित होने वाले महत्वपूर्ण सकेतों से उन्होंने कुछ न कुछ लाभ भी उठाया होगा। परंतु ऐसा लगता है कि हिन्दी के सूफ़ी प्रेमाख्यान-रचयिताओं के लिए आदर्श उपस्थित करने में जितना 'मृगावति' सफल हो सकी, उतना 'चंदायन' नहीं हुई और जहाँ इस दूसरी रचना का साधारण उल्लेख तक किया जाना कठिन हो गया, वहाँ पहली की कथा की ओर प्रायः सकेत किये जाते आए। 'मृगावती' की किसी उपलब्ध प्रति में अथवा पिछली ऐसी रचनाओं में जहाँ 'चंदायन' वा उसकी प्रेमकहानी का कही साधारण उल्लेख भी नहीं पाया जाता, वहाँ राजकुंवर के मिरिगावति के लिए जोगी बनकर कंचनपुर जाने^२ का प्रसंग जायसी की 'पद्मावत'^३ में लाया गया दोख पड़ता है। उसमान की 'चित्रावली' के अंतर्गत 'मृगावती' के रूप के प्रभाव में पड़कर राजकुंवर के प्रेम का शिकार बन जाने^३ की स्पष्ट चर्चा की गई मिलती है जिससे अनुमान किया जा सकता है कि इसे

1. The Journal of the Bihar Research Society (December, 1955) p. 484.

२. राजकुंवर कंचनपुर गयऊ। मिरिगावति कहं जोगी भयऊ—पद्मावत (२३३)।

३. मृगावली मुखरूप बसेरा। राजकुंवर भयो प्रेम अहेरा।—चित्रावली (दो०३०)

ऐसे लोग अवश्य महत्व देते रहे होंगे। जैन महाकवि बनारसीदास के आत्मचरित 'अर्द्धकथानक' (सन् १६४१ ई०) से तो ऐसा प्रतीत होता है कि इसकी कथा उस समय दिन तथा रात में भी पढ़ी जाया करती थी^१। जायसी अथवा उसमान ने जहाँ 'चंदायन' अथवा उसकी कथा का अपने यहाँ प्रेम के प्रभाव को उदाहृत करने के प्रसंग में स्मरण करना भी आवश्यक नहीं समझा, वहाँ दूसरी ओर 'पद्मावत' एव मंझन की 'मधुमालती' पर हमें 'मृगावती' की रचना-शैली, क्रम-योजना एवं भावाभिव्यक्ति और शब्द-प्रयोगों तक का प्रभाव स्पष्ट देख पड़ता है^२ और हमें ऐसा लगता है कि यह रचना बहुत लोकप्रिय रही होगी। पर अभी तक अपनी पूर्णप्रति के रूप में संपादित होकर वह हमारे सामने नहीं आ सकी है, किन्तु जहाँ तक पता चलता है, इसकी कई अधूरी तथा एकाध पूरी प्रतियाँ भी उपलब्ध हो चुकी हैं और संभव है कि, इसका कोई प्रामाणिक संस्करण भी प्रकाशित हो जाय। इसकी प्रथम चर्चा कदाचित् सन् १९०० ई० की खोज रिपोर्ट में की गई थी और फिर 'सभा' को यह चौखंभा के 'भारतेन्दु पुस्तकालय' में कैथीलिपि में उपलब्ध हुई थी जो आकार-प्रकार की दृष्टि से अधूरी ही कही जा सकती थी। परन्तु इस समय इसकी किसी प्रायः पूर्ण प्रति का किसी श्री देसाई के यहाँ से प्रो० अस्करी के यहाँ आ जाना कहा जाता है और डॉ० जयगोपाल मिश्र का भी कहना है कि उनके पास इसकी एक प्रामाणिक प्रति सुरक्षित है।

(७)

'मृगावती' के अनन्तर लिखी गई हिंदी की सूफ़ी प्रेमगाथाओं में से जो अब तक उपलब्ध हो सकी है, सर्वप्रथम का नाम 'पद्मावत' आता है जो मलिक मुहम्मद जायसी की रचना है और जिसका रचनाकाल सन् १५४० ई० समझा जाता है। जायसी ने अपनी प्रेमकहानी का कथानक राजस्थान के इतिहास से लिया है और

१. हिन्दुस्तानी (प्रयाग, अप्रैल, १९३८ ई०) पृ० २१२।

२. Prof. Askari's above article in the Bihar Research Society Journal p. 459.

उसे अपने ढंग से काम में लाया है। चित्तौर के राजा रतनसेन की विवाहिता स्त्री नागमती उसके यहाँ पहले से ही रहा करती है, किंतु वह एक सुए से सिंहलगढ़ की पद्मावती के सौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर उसके प्रति आकृष्ट हो जाता है तथा उसकी प्राप्ति के लिए जोगी का वेश धारण करके निकल पड़ता है। उसे मार्ग में अनेक प्रकार के कष्ट झेलने पड़ जाते हैं, किंतु वह इन बातों की परवाह नहीं करता। अंत में, वह सिंहल पहुँच जाता है तथा पद्मावती का साक्षात् दर्शन करके और भी बेचैन होकर उसे कई परीक्षाओं के अनन्तर प्राप्त करता है और घर वापस आता है। परंतु यहाँ उसे फिर दिल्ली के सुलतान अलाउद्दीन से पद्मावती के ही कारण शत्रुता मोल लेनी पड़ जाती है। वह इसे किसी प्रकार उसे न समर्पित करने पर भी, इसके साथ सुखमय जीवन व्यतीत नहीं कर पाता और इस कथा का अंत दुःखमय बन जाता है। राजा रतनसेन किसी युद्ध में मारा जाता है, उसकी रानियाँ उसके साथ सती हो जाती है और इस प्रकार पद्मावती सुलतान के भी हाथ नहीं लगती। 'पद्मावत' के कथानक में इस प्रकार, दो घटना-चक्रों का समावेश किया गया है जिनमें से एक राजा रतनसेन द्वारा पद्मावती के लिए जोगी बनकर यात्रा करने से आरंभ होकर उसे लेकर चित्तौर लौटने तथा उसके साथ भोगविलास करने लगने तक समाप्त हो जाता है, जहाँ दूसरे का आरंभ सुलतान अलाउद्दीन द्वारा उस रूपवती के लिए युद्ध छेड़ने से होता है। अंत तक उसे न पा सकने एवं उसके अपने पति के साथ जलकर भस्म हो जाने तक की घटनाओं के साथ सुलतान के पश्चात्ताप से समाप्त होता है। इन दोनों में से पहले के प्रसंग में दिये गए विवरणों के साथ जहाँ 'मृगावती' की प्रेमकहानी का साम्य लक्षित होता है, वहाँ दूसरे में वर्णित घटनाओं को वस्तुतः 'चंदायन' को प्रमुख संघर्ष प्रधान प्रसंगों वाली कोटि में रखा जा सकता है। राजा रतनसेन भी 'मृगावती' के राजकुमार की ही भाँति जोगी का वेश धारण करके अपनी प्रेमपात्री के लिए घर छोड़ता है और लगभग उसी की भाँति अपने मार्ग में विविध कष्टों को झेलता हुआ भी दीख पड़ता है तथा इसे भी बहुत कुछ उसी प्रकार परीक्षाएँ देनी पड़ जाती हैं, जिस प्रकार 'मृगावती' का नायक देता है। इसी प्रकार जायसी ने अपनी 'पद्मावत' के दूसरे खण्ड में उन विघ्न-बाधाओं की भी चर्चा

छेड़ दी है जो लोरक के सामने 'चंदायन' में जैसे, अपनी प्रेमपात्री के साथ लौटते समय न आकर रतनसेन के सिंहल से घर पहुँच कर सुखपूर्वक रहते समय आ जाती हैं और उनके कारण इसे वस्तुतः प्रतिहत भी हो जाना पड़ता है। यहाँ पर उल्लेखनीय यह जान पड़ता है कि 'पद्मावत' के रचयिता ने जितना महत्व इसके पूर्वाश की घटनाओं को दिया है उतना उत्तरांश को नहीं प्रदान किया है, प्रत्युत उसने कदाचित् इसे केवल भौतिक प्रेम एवं जीवन की क्षणभंगुरता को उदाहृत करने के लिए ही उसके साथ जोड़ दिया है।

जहाँ तक राजा रतनसेन की विवाहिता पत्नी नागमती के उस कथा में समाविष्ट होने की बात है इसे हम 'मृगावती' के अनुसरण में किया गया नहीं ठहरा सकते, प्रत्युत इसको 'चंदायन' वाली मैना वा मंजरी की जगह लायी गई कह सकते हैं। इसलिए, इसके कारण 'पद्मावत' के अंतर्गत हमें, एक हिन्दू नारी के उस पातिव्रत की भी एक झाँकी मिल जाती है जिसे 'चंदायन' के दूसरे अंश को विस्तृत रूप देने वाले कुछ कवियों ने बड़े सुन्दर ढंग से उदाहृत किया है। वास्तव में नागमती वाले प्रसंग को 'पद्मावत' में समाविष्ट करके जायसी ने इसमें भारतीय प्रेमाख्यानों के सबसे महत्वपूर्ण अंग 'सत निर्वाह' की भी प्रतिष्ठा कर दी है। यद्यपि इसमें यहाँ पर इसके उस रूप का भी प्रदर्शन नहीं हो पाया है जो 'सत' की परीक्षा द्वारा ही संभव हो सकता है तथा जिसे अन्यत्र देवपाल एवं अलाउद्दीन की दूतियों के प्रसंगों द्वारा पद्मिनी के सम्बंध में दरसाया गया है। फिर भी, यहाँ पर उत्कृष्ट पतिप्रेम का आदर्श तो उपस्थित ही कर दिया गया है। इस प्रकार, वह रचना अधिक पूर्ण कहलाने में समर्थ भी कही जा सकती है। भारतीय प्रेमाख्यानों की यह विशेषता रही है कि या तो उनमें किसी विवाहिता नारी की आदर्श पति-भक्ति के उदाहरण उपस्थित किये जाते रहे अथवा यदि उनकी कोई नायिका विवाहिता नहीं रहा करती, वहाँ पर वर्ण्य प्रेम-भाव को प्रायः वैसा रूप दे दिया जाता रहा जिसमें कामासक्ति भी प्रचुर मात्रा में विद्यमान रहे। ऐसे उदाहरणों का अन्तर अधिकतर या तो गांधर्व विवाह में कर दिया जाता था अथवा उन्हें वैध परिणय के प्रसंगों तक भी पहुँचा दिया जाता था। किंतु, वैसी रचनाओं के बहुधा निरुद्देश्य लिखे जाने के कारण, वहाँ उन परिस्थितियों का भी समावेश कर देना

अनिवार्य नहीं समझा जाता था जिनका निर्माण नायक एवं नायिका के प्रेमभाव वाले प्रारंभिक विकास की ही दशा में कर दिया जाता है तथा जिनका बाहुल्य हमें विशेषकर सूफ़ियों द्वारा रचे गए प्रेमाख्यानों में ही लक्षित होता है। इसके सिवाय हमें इस प्रसंग में, यह बात भी उल्लेखनीय जान पड़ती है कि जो-जो कठिनाइयाँ अथवा भीषण बाधाएँ, सूफ़ी प्रेमाख्यानों के अंतर्गत उनके नायकों के प्रेममार्ग पर अग्रसर होते समय उपस्थित की जाती हैं, प्रायः उन सभी का समावेश भारतीय प्रेमाख्यानों के उस अंश में कर दिया जाता है जिसमें उनकी पतिपरायणा नारियों की दशा का वर्णन पाया जाता है। छल-बल द्वारा परित्यक्त हुई विरहिणी दमयन्ती के मार्ग में ऐसे अनेक विघ्न उपस्थित कर दिये जाते हैं जो हमें सूफ़ी प्रेमाख्यानों के अंतर्गत उनके नायकों के मार्ग में रखे गए से दीख पड़ते हैं और जिनकी भीषणता उसके नारी होने के कारण कही और भी बढ़ गई जान पड़ती है। सूफ़ी परक प्रेमाख्यानों में जहाँ ऐसी कठिनाइयाँ प्रेमी नायकों के एकान्तिक प्रेम की शक्ति को उदाहृत करती हैं, वहाँ परंपरागत भारतीय प्रेमाख्यानों के अंतर्गत वे ही पतिपरायणा नारियों के पातिव्रत परक बल का आदर्श उपस्थित करती जान पड़ती हैं।

जायसी ने अपनी 'पद्मावत' की नायिका पद्मावती के सामने उक्त परिस्थितियों को उतना नहीं आने दिया है, प्रत्युत इन्हें उसके नायक रतनसेन तक ही सीमित रखा है और इस प्रकार उस रचना को विशुद्ध सूफ़ी प्रेमगाथा का ही रूप दे डालना चाहा है। परंतु, इसमें नागमती परक विरह वर्णनों का भी समावेश हो जाने के कारण, हमें उक्त भारतीय रंग की भी एक झलक मिल जाती है। जायसी ने इस अंग में जिस बारहमासा का प्रसंग उपस्थित किया है वह भी भारतीय परंपरा के ही अनुकूल है। यद्यपि हमें इसके उदाहरण कुतबन की 'मृगावती' जैसे प्रेमाख्यानों में भी उपलब्ध होते हैं। इसका सूफ़ी प्रेमाख्यानों के साथ परंपरागत सम्बंध नहीं जोड़ा जा सकता, न कदाचित् इसे हम फ़ारसी की पुरानी प्रेमगाथा तक निर्दिष्ट ही कर सकते हैं। जहाँ तक पता चलता है, इस प्रकार के प्रसंगों का मूलस्रोत उन सन्देश परक रचनाओं में ही ढूँढ़ा जा सकता है जिनके अनेक उदाहरण यहाँ के समृद्ध संस्कृत साहित्य में उपलब्ध हैं और जो यहाँ पर पहले

साधारणतः ऋतुओं के वर्णन अथवा कतिपय मासों की विशेषताओं के चित्रण से ही सम्बद्ध थे तथा जिनकी सूचना द्वारा वियुक्त व्यक्ति की मनोभावना का भी परिचय दे दिया जाता था। महाकवि कालिदास के विरही यक्ष से लेकर अपभ्रंश रचना 'सन्देशरासक' की विरहिणी 'वरस्मणि' द्वारा प्रेषित विरह सन्देशों तक के वर्णनों में हम ऋतुजन्य प्रभावों की ही ओर निर्देश किया गया तथा उन्हें क्रमशः अधिक व्यापक रूप दिया जाता हुआ पाते हैं। कतिपय जैन कवियों के 'रास-ग्रन्थों' अथवा 'बीसलदेव रास' जैसी रचनाओं तक यह विशेषता साहित्य के एक निश्चित 'प्रकार' को जन्म दे देती है। ऋतु विशेष का वर्णन अथवा उसके उद्दीपक अंगों का विशद चित्रण क्रमशः पङ्क्तु वर्णनों में परिणत होता हुआ अंत में, वर्ष के बारहों मासों के विस्तृत परिचय तक पहुँच जाता है। उसके व्याज से हमें तदनुसार परिवर्तित होती जाने वाली विरहदशा के विभिन्न रूपों को भी प्रत्यक्ष कर लेने का पूरा साधन मिल जाया करता है। सूफ़ी प्रेमाख्यानों के रचयिताओं ने इस का समावेश प्रायः वैसी स्थितियों में ही किया है, जहाँ पर दो प्रेमियों का सम्बंध अभी किसी वैवाहिक बंधनों द्वारा पुष्ट किया गया नहीं रहता।

वाह्य प्रकृतिगत परिवर्तनों के प्रभाव में मानव हृदय की अंतःप्रकृति के भी आ जाने के विषय में कभी किसी को सन्देह नहीं हो सकता। हम प्रायः नित्य देखा करते हैं कि जब कभी हमारे ऋतुकालीन वातावरण में किसी प्रकार की विशेषता आ जाती है तो हमारा हृदय आप से आप उल्लासमय हो उठता है। इसी प्रकार जब कभी उसमें हमें किसी मन्दता का अनुभव होने लगता है तब हम स्वभावतः खिन्न से दीख पड़ने लग जाते हैं। कभी-कभी तो यहाँ तक भी प्रतीत होता है कि हमारा जीवन ही वैराग्यपूर्ण बन गया है। इतना ही नहीं, प्रत्युत यदि कभी हमारी मनोवृत्ति किसी दुरवस्था का शिकार बनी रहा करती है उस दशा में जैसे प्राकृतिक परिवर्तन, मनोमोहक बने रहते हुए भी हमें अपनी विवशता के कारण, नितान्त विपरीत रूप में प्रभावित करते जान पड़ते हैं और हम उनके द्वारा आनन्द का अनुभव करने की जगह कटु विपाद के ही भागी बन जाते हैं। 'मेघदूत' का विरही यक्ष आषाढ़ के आह्लादकारी नवीन मेघों की ओर दृष्टिपात करता है, किंतु उसे अपने प्रवास की दशा में आन्तरिक दुःख का ही अनुभव होने

लगता है। ऋतु-परिवर्तन की विविध भूमिकाएँ इसी प्रकार, हमारे साहित्य के ऐसे अन्य अनेक प्रेमी नायकों एवं नायिकाओं की भी मनोवृत्तियों पर अपने-अपने ढंग से ही प्रभाव डालना चाहती हैं, किंतु उनकी पूर्वदशा के अनुसार ही वे उन्हें प्रभावित कर पाती हैं। वसंत की मनोमोहकता, उन्हें अपनी संयोगावस्था का स्मरण दिलाकर उनमें एक विचित्र विवशता की टीस उत्पन्न कर देती हैं। वर्षा वाले बादलों की सुखद रिमझिम एवं शारदी ज्योत्स्ना की आकर्षक प्रभा तक उनके लिए बराबर विषम स्थिति के ही उपस्थित करने का कारण बन जाती हैं। भारत कृषि प्रधान देश है और इसके निवासियों के अधिकतर प्रकृति के संपर्क में आते रहने के कारण, उनके सामाजिक ऋतों, त्योहारों तथा उत्सवों तक की योजना में ऋतु-परिवर्तन तथा अन्य वातावरण का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। इसके प्राचीन संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश से लेकर विविध आधुनिक प्रादेशिक भाषाओं तक के साहित्यों में उनके वर्णन यथास्थल किये गए देख पड़ते हैं। परंतु, इनके साथ ही जो ऐसे विवरण हमें, उनके प्रेमालयानों वाले नायकों अथवा नायिकाओं की मनोदशा का चित्रण करने के उद्देश्य से दिये गए उपलब्ध होते हैं, वे इसकी विशेषताओं के कारण, कहीं अधिक मार्मिक और सजीव बन जाया करते हैं।

‘पद्मावत’ वाले ‘बारामासा’ का आरंभ आषाढ़ से होता है और वह जेठ तक चल कर एक वर्ष पूरा कर लेता है, जहाँ ‘मृगावती’ में इसे सावन से आरंभ किया गया रहता है और इसे स्वभावतः आषाढ़ तक पूरा किया जाता है। शेख कुतबन के इस रचनादर्श को जायसी के अनन्तर आने वाले तथा ‘मधुमालती’ की रचना करने वाले शेख मंझन ने भी अपनाया है। परंतु उसमान की ‘चित्रावली’ में उसका “जैसे बारह मास, छह ऋतु बीते मोहि^१” कहलाकर वसंत ऋतु से आरंभ किया जाता है तथा शिशिर ऋतु के वर्णन से उसका अंत कर दिया जाता है जिस कारण, इसे ठीक ठीक ‘बारामासा’ भी नहीं कहा जा सकता। ‘हंस जवाहिर’ के रचयिता कासिम शाह ने फिर अपने बारामासा का आरंभ जायसी की भाँति आषाढ़ से ही किया है और उसका अंत भी जेठ तक कर दिया है जिससे

पता चलता है कि हिन्दी के सभी सूफ़ी प्रेमगाथा कवियों ने इस सम्बंध में, किसी एक ही आदर्श का पालन नहीं किया है। जहाँ तक पङ्क्तियों के वर्णन की बात है इसका आरंभ कम से कम कालिदास के 'ऋतु संहार' की रचना के समय तक तो हो ही गया था। परंतु बारामासे के रूप में वर्णन प्रस्तुत करने वाली रचना-शैली का आरंभ कब हुआ इसका ठीक पता नहीं चलता। हाफ़िज महमूद खाँ शीरानी का अनुमान है कि इसे सर्वप्रथम, ख्वाजा मासूद साद सलमन म० हि० सन् ५१५ (सन् ११२०) १ ई० ने आरंभ किया होगा^१ जिसका जन्म लाहोर में हुआ था और जिसके फ़ारसी कवि होने के अतिरिक्त प्रथम मुस्लिम हिन्दी कवि होने का भी उल्लेख किया जाता है। उसकी रचना 'द्वाज़दह माहा' हमें उपलब्ध नहीं जिस कारण कहा नहीं जा सकता कि उसमें पहले किस मास का वर्णन किया गया है। नरपतिनाल्ह की रचना 'बीसलदेव रास' में तो स्पष्ट सूचित हो जाता है कि उसके नायक के कार्तिक मास में प्रवासित होने के कारण उसका 'बारामासा' भी कार्तिक से ही आरंभ किया गया है और उसे वहाँ आश्विन तक पहुँचा दिया गया है। हिन्दी के सूफ़ी कवियों के प्रबन्ध काव्यों में भी कदाचित्, इस बात की ओर ध्यान दिया गया होगा। इसी प्रकार विभिन्न ऋतुओं के अनुसार निर्मित रचनाओं के सम्बंध में भी कहा जा सकता है, यद्यपि इस विषय में कुछ भी निश्चित रूप से अभी नहीं निर्धारित किया जा सकता है।

'इन्द्रावति' नामक हिन्दी सूफ़ी प्रेमाख्यान के रचयिता नूर मुहम्मद ने भी अपनी उस रचना के अंतर्गत विवाहित होकर अपने पिता भूपति की राजगद्दी पर बैठने वाले राजकुंवर को ही प्रेमी नायक के रूप में अवतरित किया है। राजकुंवर यद्यपि रतनसेन की भाँति किसी सुए से रूप सौन्दर्य का वर्णन सुन कर प्रेमासक्त नहीं होता, प्रत्युत इसके लिए उसके साधनों में स्वप्न-दर्शन, एवं चित्र-दर्शन की चर्चा की जाती है और यह 'तपी गुरुनाथ' को अगुआ बनाकर चलता तथा विविध कष्टों को झेलता हुआ आगे बढ़ता है। इस जोगी को स्वप्न में ही देखकर सुन्दरी इन्द्रावती अपने यहाँ उसकी ओर आकृष्ट होती हुई भी दिखलायी जाती है। फिर

भी जहाँ तक उसके एकान्तनिष्ठ बनकर सोत्साह यत्न करने तथा परीक्षाओं में खरा उतरने का प्रश्न है, यहाँ पर भी उसे रतनसेन की ही भाँति व्यवहार करना पड़ता है और तब कहीं वह अपनी प्रेमपात्री को प्राप्त कर पाता है। नूर मुहम्मद की यह रचना भी अपने पूर्वांश में यहीं तक समाप्त हो जाती है, जिस प्रकार जायसी की 'पद्मावत' में दीख पड़ता है। यह कवि अपने 'दीन' का प्रचार करने के लिए बहुत उद्योगशील जान पड़ता है। इस बात को उसने अपनी दूसरी रचना 'अनुराग बाँसुरी' के एकाधिक उल्लेखों द्वारा भी सिद्ध करा दिया है। किंतु 'इन्द्रावत' के दूसरे खंड की भी आवश्यकता का अनुभव करने के कारण वह संभवतः जायसी की उपर्युक्त रचना-शैली का अनुसरण करता हुआ भी दीख पड़ता है। फिर भी जायसी ने जहाँ अपनी एक अन्य रचना 'चित्ररेखा' के भी द्वारा हिन्दुओं के समाज में समादृत पातिव्रत धर्म एवं 'सत' पालन को महत्व देने की चेष्टा की है, वहाँ पर नूर मुहम्मद ने अपनी 'अनुराग बाँसुरी' द्वारा भी उस प्रेमसाधना के स्पष्टीकरण की ही चेष्टा की है जो मुस्लिम सूफ़ियों को अपने चरमलक्ष्य की सिद्धि के लिए अनिवार्य प्रतीत होती है और जिसको उसने यहाँ पर विभिन्न पात्रों के विशिष्ट नाम देकर भी समझाया है। पता नहीं, इसने अपनी रचना 'नलदमन' में क्या किया होगा^१।

इन सूफ़ी प्रेमगाथाओं के नायक, इस प्रकार अधिकतर अविवाहित ही रहने के कारण, राजकुमार अथवा शाहजादे ही रहा करते हैं और यदि कभी वे किसी राजवंश के नहीं होते तो भी प्रायः यही देखा जाता है कि वे अपने माता-पिता की प्रिय संतान हैं। इन कथानायकों के सम्बंध में बहुधा यह भी दीख पड़ता है कि इनके माता-पिता पहले संतान-रहित रहा करते हैं तथा उनकी ओर से इसके लिए अनेक यत्न किये जाते हैं और आशीर्वाद एवं वरदान तक प्राप्त किये जाते हैं। इस प्रकार की चेष्टा कभी-कभी इन प्रेमकहानियों की नायिकाओं के लिए भी की गई पायी जाती है और ये भी अपने माता-पिता की लाड़िली ही हुआ

१. आगे हिंदि — समुद्र तिराना । भाखा इन्द्रावति जो जाना ।

फेर कहा नलदमन कहानी । कौन गनावै दूसरि वानी ॥

—अनुराग बाँसुरी (बरवें २) ।

करती हैं। 'चंदायन' के नायक लोरिक के विषय में पूरा विवरण उपलब्ध नहीं होता, किंतु 'मृगावती' का नायक 'राजकुंवर' चन्द्रगिरि के राजा गनपति देव का पुत्र है जो अपने पिता के बहुत कुछ दान पुण्यादि करने पर भी उसके घर जन्म लेता है, जिस कारण, उसके लिए अत्यन्त प्रिय भी बन जाता है। लगभग इसी प्रकार की बातें हमें 'मधुमालति' के नायक राजकुमार मनोहर के सम्बंध में भी दीख पड़ती है और उसका पिता राजा सूरजभान इसके जन्म के लिए किसी 'तपा' को प्रसन्न करके उससे लगभग उसी प्रकार 'पिंड' ग्रहण करता तथा उसे अपनी रानी को देता है जिस प्रकार अयोध्या के राजा दशरथ ने अग्निदेव से 'हव्य' प्राप्त करके उसे अपनी तीनों रानियों को दिया था और तदनुसार गर्भवती होकर उन्होंने उनके चार राजकुमारों को जन्म दिया था। 'चित्रावली' का नायक 'सुजान' का भी जन्म अपने राजा धरनीधर के यहाँ शिव-पार्वती के प्रसाद से ही होता है तथा कनकावति के नायक 'परमरूप', 'रतनावति' के मोहन, 'ज्ञान दीप' के ज्ञान दीप, 'हंस जवाहर' के हंस और 'नूरजहाँ' के 'खुरगीद' विषय में भी या तो इनको अपने माता-पिता के यहाँ किसी अनुष्ठान विशेष द्वारा जन्म लेते देखते हैं अथवा हज़रत ख्वाजा खिज़्र या पीर दस्तगीर जैसे महापुरुषों की कृपा द्वारा अवतार ग्रहण करते हुए पाते हैं। शेख रहीम कवि की प्रेमगाथा 'भापा प्रेमरस' के अंतर्गत हम उसकी नायिका चन्द्रकला को भी उसकी निःसंतान माता रूपमती के गर्भ से लक्ष्मी देवी की कृपा से ही जन्म लेते देखते हैं और वह अपने माता-पिता के लिए परम प्रिय बन जाती है। इस प्रकार के नायक एवं नायिका, अपने बाल्यकाल से ही विभिन्न कलाओं में प्रवीण होते दीख पड़ते हैं। इनके रूप-गुण की प्रशंसा भी प्रायः इस प्रकार की गई पायी जाती है जिसमें हमें अतिशयता ही लक्षित होती है। ऐसे राजकुमार वा शाहजादे इस प्रकार भावुक एवं कोमल हृदय के रहा करते हैं कि इन्हें केवल किसी स्वप्न वा चित्र में ही नहीं, अपितु किसी के द्वारा सौन्दर्य-वर्णन मात्र सुनकर भी, किसी सुन्दरी के प्रति सहसा आकृष्ट हो जाना पड़ता है। ये प्रायः प्रेम-विह्वल तक बन जाते हैं और अपने शारीरिक योग-क्षेम की कुछ भी चिन्ता न करके हुए विकट यात्राओं तक में निकल पड़ते हैं। कभी-कभी उन्हें आखेटप्रिय के रूप में भी दिखलाया जाता है तथा उसके ही व्याज

से ये किसी रूपवती का साक्षात् दर्शन कर उसके प्रति मुग्ध हो जाया करते हैं । अधिकांश प्रेमकहानियों के लिए उपर्युक्त बातें कथा-रूढ़ियों जैसी बनी हुई पायी जाती हैं ।

ऐसा क्यों किया जाता है इसका कोई प्रत्यक्ष कारण नहीं दीख पड़ता । परंतु अनुमान किया जा सकता है कि उक्त सारी बातें, इन प्रेमगाथाओं के रचयिताओं द्वारा किसी न किसी उद्देश्य विशेष के ही कारण, समाविष्ट की गई हो सकती हैं । नायकों वा नायिकाओं के माता-पिता के प्रायः निःसंतान होने पर उनके यहाँ इनका अनेक यत्नों के ड़ी फलस्वरूप जन्म लेना तथा इनका सर्वगुण सम्पन्न भी हो जाना इनके प्रति हमारा स्वाभाविक आकर्षण जागृत करने के लिए हो सकता है । इनके ऐसे गुणों के ही कारण हम इनके प्रति कथारंभ से ही अपनी सहानुभूति सी प्रकट करते लग जाते हैं । पीछे जब हम इन्हें किसी प्रकार के फेर में पड़कर कष्ट झेलने की दशा में पाते हैं तो हम इनके लिए मोह में पड़कर प्रायः चिन्तित भी बन जाते हैं । जब कभी इन्हें किसी राक्षस का सामना करना पड़ता है वा इन्हें कोई अजगर वा मगरमच्छ निगल जाता है अथवा जब कभी ये किसी विस्तृत समुद्र की तरंगों पर वा बीहड़ बनों के बीच संकटापन्न हो जाते हैं तो हम इनकी रक्षा के लिए परम उत्सुक हो उठते हैं । ऐसा चाहते हैं कि ये जिस प्रकार भी हो सके, ऐसी बाधाओं से मुक्ति पाकर फिर हमारे सामने उपस्थित हो जायँ । इस प्रकार हम इनके प्रति एक विचित्र प्रकार की आत्मीयता के भाव का अनुभव करते हुए इनके साथ-साथ हो लिया करते हैं । इनके पीछे-पीछे, एक मूक द्रष्टा की भाँति चलते हुए इन्हें इनकी सिद्धि की सीमा तक पहुँचा कर ही स्वयं दम लेना चाहते हैं । हमारी इस प्रकार की मनःस्थिति उत्पन्न करने के लिए कवि न जाने कितने प्रकार की अनहोनी घटनाओं तक का समावेश कर देता है । वैसे नायकों की निपुणता अथवा कभी-कभी कतिपय चमत्कारों का सहारा देकर हमें उस नैराश्य से भी बचा लेना चाहता है जिसके कारण, न केवल कथाप्रवाह की रोचकता नष्ट हो सकती थी, अपितु हमें कोई ठेस तक लग जा सकती है । अंत में, जब वैसे नायकों को अपने यत्नों में सफलता प्राप्त हो जाती है तो हम स्वभावतः संतोष की साँस लेने लग जाते हैं । हमें कभी-कभी यहाँ तक भी प्रतीत

होने लग जाता है कि वह विजय केवल उस नायक की न होकर वस्तुतः हमारी भी कही जा सकती है। इसी कारण, ऐसी प्रेमकथा का एक स्पष्ट चित्र हमारे हृदयों पर भी उभर आता है और हमें पूर्ण प्रभावित कर देता है। फलतः हमें ऐसा लगता है कि यदि इन सूफ़ियों की ऐसी रचनाओं का उद्देश्य अपने मतानु-मोदित प्रेमसाधना के विविध अंगों का चित्रण अथवा उसके आरंभ, विकास एवं परिणति का यथावत् स्पष्टीकरण मात्र ही रखा करता हो, यदि ये उन नायकों के रूप में अपने सालिकों को अंकित कर उनकी विविध चेष्टाओं के उदाहरणों द्वारा इनके क्रमिक अभ्यास जनित प्रगति का हमें कोई आभास दिलाना चाहते हों तो इसमें सन्देह नहीं कि ये उसमें बहुत कुछ कृतकार्य भी कहे जा सकते हैं। इस प्रकार की रचना-शैली का आरंभ, सर्वप्रथम चाहे जहाँ से भी हुआ हो और इसकी वर्णन-पद्धति का मूलस्रोत चाहे किसी अनिश्चित काल से आती हुई लोक-प्रचलित प्रेमकहानियों तक में ही न ढूँढ़ा जा सकता है इसे अपनाकर सूफ़ी कवियों ने बड़ी दूरदर्शिता से काम लिया है और इसकी सहायता द्वारा ये एक ऐसे दुरूह विषय की ओर भी इंगित कर सके हैं जो न केवल कठिन, प्रत्युत रहस्यमय भी था।

इस प्रकार की सूफ़ी प्रेमगाथाओं के आदर्श समझे जाने वाले फ़ारसी के सूफ़ी प्रेमाख्यानों के नायकों को ठीक इसी प्रकार आचरण करते हुए नहीं दिखलाया गया है जिस कारण, वे सूफ़ी-साधकों के कुछ और भी निकट से जान पड़ते हैं। प्रसिद्ध फ़ारसी कवि निज़ामी की रचना 'खुसरो शीरी' के अंतर्गत दो प्रेमियों की चर्चा आती है जिनमें से एक तो खुसरो परवेज़ है जो बादशाह है और जिसे सुन्दरी शीरी की सौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर उसके प्रति प्रेम हो जाता है। प्रशंसक शाहपुर इसकी चर्चा शीरी से भी जाकर करता है और उसे इसकी ओर आकृष्ट कर देता है जिसके अनन्तर दोनों का विवाह भी हो जाता है। परन्तु उसकी कहानी का दूसरा प्रेमी एक शिल्पी मात्र है जिसका नाम फ़रहाद है और जो शीरी के प्रति अनुरक्त हो जाने पर उसकी प्राप्ति की आशा में कोहे बेसनून (एक पहाड़ी) को काटकर कोई नहर बनाने तथा उसके द्वारा उक्त प्रेमिका के लिए दूध बहाकर लाने जैसे विकट कार्य में भी प्रवृत्त हो जाता है तथा उसकी एक प्रतिमा को भी

अपने सामने रख लेता है। कहते हैं कि वह इस प्रकार के दुर्घट व्यापार को सम्पन्न भी कर देता है, किंतु इसी बीच में जब उसकी प्रेमिका की मृत्यु का प्रवाद फैला दिया जाता है तो वह पर्वत से गिर कर अपने प्राण भी दे देता है। इस प्रकार यहाँ पर प्रधान प्रेमी कदाचित् फ़रहाद ही ठहराया गया है जो अपनी प्रेमपात्री की प्राप्ति के लिए एक दुष्कर कार्य तक को भी स्वीकार करता है। अंत में, इस ओर सफल होने की दशा तक पहुँच कर भी अपने ध्येय की उपलब्धियों में कृतकार्य नहीं हो पाता। निज़ामी कवि के एक अन्य प्रेमालयान 'लैला मजनूँ' के अंतर्गत उसका नायक एक अमीर का लड़का 'क़ैस' दिखलाया गया है जो एक मक़तब में किसी बालिका 'लैला' के साथ पढ़ता है और वे दोनों ही एक दूसरे के ऊपर प्रेमासक्त हो जाते हैं। लैला के पिता को जब यह ज्ञात होता है तो वह अपनी पुत्री के ऊपर नियंत्रण डाल देता है जिससे क़ैस के मार्ग में बाधा आ पड़ती है और वह इसके कारण, क्षुब्ध होकर भी अपने व्रत से विचलित नहीं होता। लैला की प्राप्ति के लिए यत्नशील बनकर वह इधर-उधर चक्कर लगाता और नितान्त व्यग्र बना घूमता दीख पड़ने लगता है और वह 'मजनूँ' (पागल) तक कहलाकर प्रसिद्ध हो जाता है। इधर लैला का बाप उस पर और भी नियंत्रण बढ़ा देता है जिससे अवगत होकर 'क़ैस' वा मजनूँ आखों में आँसू भर कर गली कूचे में गाता दीख पड़ने लगता है। वह न तो खाता है, न पीता है और न सोता है, प्रत्युत निरन्तर विरह में व्याकुल होकर तड़पता रहा करता है तथा 'लैला-लैला' पुकारा करता है। वह यहाँ तक अनुरक्त हो गया रहता है कि कभी-कभी वह उस हवा तक के सामने खड़ा हो जाता है जो लैला के मकान की ओर जाती हुई जान पड़ती है और उसके द्वारा अपनी प्रेमपात्री को अपनी दशा का सन्देश भेजने लगता है। इसका बाप इसकी दुर्दशा का परिचय दिलाकर लैला के साथ इसका विवाह करा देना भी चाहता है, किंतु उसे इसमें सफलता नहीं मिल पाती। वह तब इसे समझाने की चेष्टा करता है और इसे 'कावा' तक भी ले जाता है, किंतु वहाँ पर भी यह लैला के लिए ही वरदान माँगता है। अंत में, जब लैला के माता-पिता उसका विवाह किसी इब्ने सलाम नामक अन्य व्यक्ति के साथ कर देते हैं तो मजनूँ जंगलों और पहाड़ों में भटकने लग जाता है। जब अपने पति की मृत्यु

हो जाने पर लैला उससे मिलती है, किंतु फिर मर भी जाती है तो यह उसकी कब्र पर जान दे देता है और इस प्रकार यह कथा भी दुःखान्त ही बन जाती है । अतएव यहाँ पर हमें प्रेमी मजनूँ एक ऐसे एकान्तनिष्ठ प्रेमी के रूप में दिखलाया गया है जिसकी क्रमशः कड़ी से कड़ी परीक्षा होती चली आती है, किंतु जो बराबर प्रतिहत होता हुआ भी अपने यत्नों में दृढ़ बना रह जाता है तथा जिसे अंत में असफल बन कर नष्ट भी हो जाना पड़ता है । इन दोनों प्रेमाख्यानों के प्रेमी नायक वस्तुतः अपनी-अपनी विकट परीक्षाओं में खरे उतरते हैं, किंतु फिर भी वे असफल से ही चित्रित कर दिये जाते हैं । इस प्रकार, कदाचित् उनके द्वारा यह उदाहृत किया जाता है कि परमात्मा की प्राप्ति के लिए प्रेमसाधना में लगे हुए साधक के लिए अपने दृढ़ से दृढ़ बने रहने पर भी, उसे प्राप्त कर पाना कभी पूर्णतः संभव नहीं कहा जा सकता ।

प्रेमकथाओं की रूपरेखा ऐसे ढंगों से यहाँ तैयार की जाती है कि वह किसी साधक की आध्यात्मिक चेष्टाओं में अधिक असंगत न सिद्ध हो सके तथा उनमें पड़ने वाले विघ्नों के सामने उसकी प्रबल निष्ठा की गंभीरता ही सिद्ध होती चली जाय । यहाँ पर प्रेमियों द्वारा किसी अपरिचित प्रेमपात्री के लिए सुदूर देशों की विकट यात्रा भी नहीं करायी जाती, न ऐसी विभिन्न आकस्मिक घटनाओं को ही उनके समक्ष ला दिया जाता है जिनसे उनके मार्ग में रुकावट पड़ सके । हिंदी की सूफी प्रेमगाथा में इन बातों का समावेश करके उसके नायक की प्रवृत्ति को साहसिकता (adventure) की भावना से भी अभिभूत करा दिया जाता है जिससे उसका शौर्य सम्पन्न होना भले ही प्रमाणित हो जाय, इसके कारण उसकी एकान्तनिष्ठा को भी उतनी प्रबल प्रेरणा नहीं मिल पाती । उसमें हमें वह असाहायता अथवा दयनीयता नहीं दीख पड़ती जिसके कारण एक सच्चा साधक अपने इष्ट के पति पूर्ण आत्मसमर्पण का भाव प्रकट करता है । हिंदी के सूफी प्रेमाख्यानों वाले प्रेमी नायक अधिकतर निपुण तथा सुसंस्कृत हैं और वे अपने मार्ग में विजय भी पाते चला करते हैं । यदि हम इनके प्रति आकृष्ट होते हैं और इन्हें किसी सच्चे साधक की कोटि में रखने की ओर प्रवृत्त होते हैं तो ऐसा केवल इसीलिए कर पाते हैं कि हमें इनके पहले संभ्रान्त एवं स्नेहपात्र बने रहने का पता

चल चुका रहता है तथा इनके साथ हमारी कुछ सहानुभूति तक बन गई रहा करती है। अतएव, यहाँ पर हमें जितना किसी घोर वैषम्य का आधार मिला करता है, वहाँ उतना उस दैन्य का भी पता नहीं चल पाता जो किसी साधक की दशा में कहीं अधिक उपयुक्त गुण माना जा सकता है। हिंदी की इन प्रेमगाथाओं में यह अंश कदाचित् विभिन्न लोककथाओं से छनकर आ गया है और इसको प्रायः प्रत्येक देश के कथासाहित्य में भी देखा जा सकता है। इस अंश के यहाँ पर न्यूनाधिक महत्वपूर्ण रूप धारण कर लेने के कारण, इन प्रेमगाथाओं पर अधिकतर कहानीपन का भी रंग चढ़ जाता है जिससे घटना-वैविध्य तथा विवरण-बाहुल्य की प्रधानता हमारे ध्यान को स्वभावतः उसके प्रमुख लक्ष्य से भिन्न दिशा की ओर भी आकृष्ट करने लग जाती है। फलतः जिस कथासूत्र को हम केवल एक माध्यम के रूप में ही स्वीकार कर उसे दृष्टान्त मात्र का ही मूल्य प्रदान कर सकते थे, वह कभी-कभी हमारे सामने एक विचित्र-सा जाल भी बुन दिया करता है और उसके आवरण को भेद कर वर्ण्य विषय पर दृष्टि जमाये रखना हमारे लिए कठिन हो जाता करता है। यही कारण है कि जायसी जैसा निपुण कवि तक भी अपनी रचना 'पद्यावत' के अंतर्गत उस आदर्श प्रेमसाधना को यथेष्ट रूप में उदाहृत नहीं कर पाया है जो एक सूफ़ी होने के नाते उसको अभीष्ट था।

(८)

उत्तरी भारत के हिंदी सूफ़ी प्रेमाख्यानों के मूलकथानक एवं मूलप्रेरणा पर विचार करते समय हमें पता चलता है कि उनके रचयिताओं ने इसके लिए विभिन्न स्रोतों को अपनाया था तथा उन्हें प्रायः अपने ढंग से रूपरंग देकर सजा दिया था। 'चंदायन' की चर्चा करते समय हम देख चुके हैं कि वह रचना मूलतः एक लोकगाथा वा लोकगीत पर आधारित है जो एक बहुत विस्तृत क्षेत्र में प्रचलित रही है तथा जिसके इसी कारण, विभिन्न रूपान्तर भी पाये जाते हैं। हमने यह देखा है कि उसकी मूलकथा के केवल उत्तरांश अथवा मैना की विरह पीर और उसके द्वारा 'सत' की रक्षा मात्र को लेकर भी अनेक रचनाएँ प्रस्तुत की जा चुकी हैं। इसी प्रकार हमें यह भी जान पड़ता है कि उसके अनन्तर वाले

दूसरे प्रेमाख्यान 'मृगावती' का कथानक भी संभवतः किसी लोकप्रचलित प्रेम-कथा पर ही आश्रित रहा होगा और इस बात की ओर उसके कवि तक ने भी संकेत कर दिया है। परंतु उसी प्रकार वैसे तीसरे उपलब्ध प्रेमाख्यान 'पद्मावत' के भी विषय में हम ऐसा नहीं कह सकते। इस रचना के दो खंडों में प्रथम का सम्बंध यदि किसी प्रेमकहानी के साथ जोड़ा भी जा सकता है तो इसके दूसरे का मूल स्रोत राजस्थान के इतिहास अथवा उसके साथ दिल्ली के संघर्ष के एक प्रसिद्ध प्रसंग में भी ढूँढा जा सकता है। दिल्ली के सुलतान अलाउद्दीन खिजली द्वारा किया गया चित्तौर पर आक्रमण इतिहास प्रसिद्ध है और इतिहास के ग्रंथों में उसका स्पष्ट विवरण भी मिलता है। सूफ़ी कवि जायसी ने अपनी रचना के अंतर्गत उसे अपनाते समय बहुत कुछ कल्पना से काम ले लिया है। इतिहास के प्रामाणिक ग्रंथों को देखने से पता चलता है कि उनमें इस प्रेमाख्यान के भीतर वर्णित कई घटनाओं का अस्तित्व तक नहीं है, न केवल वहाँ पर चित्तौड़ के राजा रतनसेन द्वारा की गई किसी सिंहल-यात्रा का वर्णन नहीं आता, अपितु वहाँ पर किसी ऐसी रानी का भी उल्लेख नहीं पाया जाता जिसका नाम 'पद्मावती' वा 'पद्मिनी' रहा हो तथा जिसे अपनाते के यत्न में उस गढ़ पर चढ़ाई करके सुलतान ने ठीक उसी प्रकार व्यवहार किया हो जिसके सम्बंध में यहाँ पर चर्चा की गई है^१। यह अवश्य है कि 'पद्मावत' के कुछ पहले रची गई समझी जाने वाली असूफ़ी प्रेमगाथा 'छिताई वार्ता' में भी अलाउद्दीन के मुँह से पद्मिनी प्रसंग की चर्चा करायी गई है।^२ इसके आधार पर इसकी प्रामाणिकता के विषय में अनुमान किया जा सकता है, किंतु यहाँ पर यह भी कहा जा सकता है कि संभव है, इसकी कल्पना जायसी के बहुत पूर्व से ही कर

१. माडर्न रिव्यू (नवंबर १९५०, पृ० ३६१-८) हिन्दी अनुशीलन (वर्ष ६ अंक ३ पृ० २६-३१ साहित्य सन्देश (भा० १३ अं० ६ पृ० २४९-५०) तथा इन्द्र चन्द्र नारंग कृत 'पद्मावत का ऐतिहासिकता' (इलाहाबाद १९५६ ई०) इत्यादि।

२. छिताई वार्ता (ना० प्र० सभा, काशी सं० २०१५), पृ० ४६।

ली गई हो तथा इसी कारण अपनी-अपनी रचनाओं का निर्माण करते समय इन दोनों प्रेमाख्यानों के कवियों ने उस तीसरे आधार से ही प्रेरणा ग्रहण कर ली हो। इस सम्बंध में यहाँ पर यह भी विचारणीय है कि जिस प्रकार उक्त 'छिताई वार्ता' के अंतर्गत 'पद्मिनी प्रसंग' का उल्लेख आता है, उसी प्रकार 'पद्मावत' में भी 'छिताई प्रसंग' का उल्लेख आता है। उसी प्रकार, 'पद्मावत' में भी 'छिताई-प्रसंग' की चर्चा करां दी गई^१ है जिससे इन दोनों से सम्बद्ध घटनाओं की ओर भी हमारा ध्यान चला जाता है तथा हम इन दोनों के घटित होने के ठीक अवसरों की भी समीक्षा करने लग जाते हैं। फलतः हमें पता चलता है कि ऐतिहासिक साक्ष्य के अनुसार 'छिताई प्रसंग' वाली परिस्थिति पद्मिनी-प्रसंग वाली तथा कथित घटना से पहले ही आ जाती है। इस प्रकार, सुलतान द्वारा उसके अवसर पर इस दूसरी की चर्चा कराना यों भी इतिहास विरुद्ध पड़ता है। वास्तव में, सिंहलद्वीप, पद्मिनी नारी, प्रेमी का 'जोगी' बन जाना अथवा उसका किसी योगी से सहायता लेना, शिव-पार्वती जैसे देवताओं की कृपा प्राप्त करना तथा अपनी यत्नों में सुए जैसे पक्षी अथवा दूतों से सहयोग पाना आदि बातें किसी प्रेमगाथा विशेष तक ही सीमित नहीं जान पड़ती और इनके प्रयोग कथारूढ़ियों जैसे होते आए हैं। अतएव, यदि किसी पद्मिनी नारी की राजा रतनसेन की कथा में भी कल्पना कर ली गई हो तथा उस रूपवती स्त्री के व्याज से सुलतान अलाउद्दीन जैसे कामुक बादशाह द्वारा चित्तौड़ की चढ़ाई करायी गई हो और उसमें दर्पण वाली उपयुक्त घटना का भी समावेश कर दिया गया हो तो इसमें कोई आश्चर्य की बात न होगी, न यही असंभव कहा जा सकेगा कि ऐसा पहले से ही कर दिया गया था।

इसी प्रकार शेख मंझन की 'मधुमालती' के कथानक का मूलस्रोत भी किसी पुरानी प्रचलित कहानी में ही ढूँढी जा सकता है। स्वयं मंझन का कहना है कि इसकी 'आदि कथा द्वापर में भई थी' और यह 'कलियुग में भाखा' के

माध्यम से गायी गई थी^१। जायसी के उपर्युक्त 'पद्मावत' में एक स्थल पर उसके रचना-काल के समय तक प्रचलित कई प्रेमकहानियों का उल्लेख किया गया मिलता है जिसमें एक के विषय में बतलाया गया है—

साधा कुंवर मनोहर जोगू । मधुमालति कहं कीन्ह वियोगू^२ ॥

जिससे ध्वनित होता है कि इस प्रकार की किसी कहानी का ज्ञान उस कवि को भी रहा होगा। परंतु इसके साथ ही हमें यह भी पता नहीं चलता कि वह कहानी केवल मौखिक रूप में ही प्रसिद्ध रही होगी अथवा उसे किसी ने कोई लिखित रूप भी दे दिया होगा। इसके अतिरिक्त उस कथा के नायक एवं नायिका के नामों पर प्रचलित अन्य अनेक रचनाओं की भी चर्चा की जाती है। यदि केवल ऐसे नामसाम्य को ही महत्व दिया जाय तो इन पात्रों के नामों जैसे लगते हुए दो नाम 'मालती-माधव' नामक भवभूति के नाटक में भी, दो प्रेमियों के ही आते हैं। किंतु उसकी कथा के साथ कदाचित् इसका कोई भी साम्य नहीं दीखता। इसी प्रकार इस प्रसंग में, एक अन्य रचना 'मधुमालती' का भी उल्लेख किया जा सकता है जिसके रचयिता कोई चतुर्भुज दास नामक कायस्थ हैं और जिसका रचना-काल किसी-किसी के अनुसार मंझन से पहले का भी बतलाया जाता है। परंतु इस 'मधुमालती' की कथा उससे भी नितान्त भिन्न दीख पड़ती है जिससे इसके उसका आधार होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। चतुर्भुज दास की इस 'मधुमालती' की कथा का नायक मनोहर तथा इसकी नायिका मालती पहले किसी चटसार में एक साथ पढ़ते हुए दिखलाये जाते हैं और इनका प्रेम, कदाचित् मजनों (क़ैस) एवं लैला की भाँति उस परिस्थिति में ही जागृत होता है; जहाँ पर मंझन की उस रचना का नायक मनोहर कुछ अप्सराओं द्वारा रातोंरात उठा कर मधुमालती को चित्रसारी में कर दिया जाता है, जहाँ पर एक दूसरे को आकस्मिक ढंग से उपस्थित पा कर उस पर मुग्ध हो

१. मंझन कृत मधुमालती, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी (सन् १९५७ ई०), पृ० १५ ।

२. पद्मावत प्रकरण २३३, पृ० २२३ ।

जाता है। अतएव, लगभग एक प्रकार के नामधारी नायक-नायिका की कथाओं के वर्तमान रहते हुए हमें इस बात का निश्चित पता नहीं चल पाता कि स्वयं जायसी ने भी किस कथा का उल्लेख उक्त प्रसंग में किया होगा तथा उसका सम्बंध मंज़न की रचना से हो भी सकता है वा नहीं।

मंज़न की मधुमालती के अनन्तर भी इस प्रकार की बहुत-सी अन्य रचनाएँ निर्मित हुई हैं जिनमें से सभी के साथ इसका कोई साम्य निश्चित नहीं किया जा सकता, न यही कहा जा सकता है कि उनमें से कितने में इसका ही अनुसरण किया गया होगा। दक्खिनी 'हिंदवी' के सूफ़ी कवि नुसरती द्वारा लिखी गई एक रचना 'गुलशने इश्क़' का पता चलता है जिसका रचना-काल हिज़री सन् १०६८ अर्थात् सन् १६५७ ई० है तथा जिसके विषय में कहा जाता है कि उसके मूलाधार ग्रंथ का पता लगाना कठिन है।^१ वहीं पर यह भी बतलाया गया है कि स्वयं नुसरती के भी अनुसार उसके किसी मित्र "नबी इब्न अब्दुल समद ने इस किस्से के लिखने की तरगीव दी" तथा यह "इसके क़बल भी तहरीर में आ चुका था और एक साहब शेख मंज़न नामी ने इसे हिंदी में लिखा था। मंज़न की रचना के विषय में वहाँ पर यह भी कहा गया है कि इसका हवाला एक दूसरी किताब 'किस्सा कुंवर मनोहर मदमालत' में मिलता है जो फ़ारसी में है तथा जिसके रचयिता का नाम ज्ञात नहीं, किन्तु जो सन् १०५९ हि० सन् १६४८ ई०) में लिखी गई है, वहीं पर एक तीसरी ऐसी रचना की भी चर्चा की गई है जिसका 'महर व माह' नाम है और जिसके रचयिता आक्रिल खाँ राज़ी ने उसे सन् १०६५ हि० अर्थात् सन् १६५४ ई० में लिखा था और उसमें भी यही किस्सा है। फिर एक अन्य ऐसी रचना हिसार के किसी हिसामुद्दीन द्वारा भी प्रस्तुत की गई है जिसका नाम 'हुस्न व इश्क़' है तथा जो सन् १०७१ हि० अर्थात् सन् १६७० ई० की है। इन सभी का किस्सा एक ही है, "लेकिन हर मुसन्नफ़ि के किसी कदर रद व बदल या इख़्तिसार बयान किया है।" नुसरती 'गुलशने इश्क़' में चंपावती और चन्द्रसेन की दास्तान भी बड़ी खूबी के साथ

१. डॉ० मोलवी अब्दुल हक़: नुसरती ('अंजुमन तरक्किए उर्दू नयीदिल्ली, पृ० १७।

मिला दी गई है। डॉ० अब्दुल हक़ का अनुमान है कि इन सारी ही रचनाओं का मूल रूप पहले से 'मक़बूल और मशहूर' था और प्रत्येक लेखक ने इसे अपने यहाँ के प्रचलित रूप में दिया है। आक़िल खाँ को यह दक्षिण में मिला होगा और संभवतः उसकी रचना 'महर व माह' को ही नुसरतीने अधिक सुन्दर बना दिया होगा^१। यहाँ पर उल्लेखनीय यह है कि उक्त अज्ञात कवि से लेकर हिंसामुद्दीन तक अपनी-अपनी रचनाएँ लगभग २५ साल के ही भीतर लिख डालते हैं। इस प्रकार इसके मूल कथानक का किसी न किसी रूप में उन दिनों विशेषतः प्रचलित रहना भी कहा जा सकता है। चतुर्भुज दास कायस्थ की रचना 'मधुमालती' की तथा जान कवि की 'मधुकर मालती' हिंदी की रचनाएँ हैं और उनका रचना-काल उपर्युक्त समय से पहले आ गया होगा, किंतु उनकी कहानियों के साथ मंज़न के वर्ण्य कथानक का कोई मेल नहीं है। यों तो जान कवि की रचना 'पुहुप बरिषा' की कुछ बातें भी मंज़न की 'मधुमालती' के कतिपय प्रसंगों के समान दीख पड़ती हैं। हिंदी में ही रचे गए किसी 'मधुमालती-कथा' का उल्लेख डॉ० सुकुमार सेन ने अपने 'बांगला साहित्येर इतिहास' में किया है तथा उन्होंने उसका रचना-काल भी सन् १७५९ ई० दिया है,^२ किंतु उसकी कथावस्तु की ओर उन्होंने कोई संकेत नहीं किया है। उनके एक अन्य ग्रंथ^३ के अंतर्गत ऐसे नामों वाली कतिपय बांगला रचनाओं की भी चर्चा की गई मिलती है जिनमें से कदाचित् प्रथम के रचयिता का नाम उन्होंने मोहम्मद कबीर दिया है। उन्होंने इस कवि की दो पंक्तियों को उद्धृत करके यह भी सिद्ध कर दिया है कि इसने अपनी प्रेमकहानी का आधार किसी हिंदी ही 'केच्छा' (किस्सा) को बनाया है तथा उसे 'पांचाली' रूप दे दिया है। इसके सिवाय वहीं पर सन् १७८१ ई० में रचित साकेर मामूद की रचना 'मधुमाला मनोहर' तथा सन् १८०६ ई० वाली सैयद हामजा कवि की 'मधुमालती' का भी उल्लेख किया गया है। परंतु इनमें से किसी की भी मूलकथा की चर्चा नहीं पायी जाती, जिस

१. नुसरती, पृ० १९ ।

२. प्रथम भाग, पृ० ०४४ ।

३. इसलामि बांगला साहित्य, पृ० ४१ ।

कारण यह कहना कठिन है कि यदि इनमें से सभी प्रेमाख्यानों के मूलस्रोत हिन्दी के ही प्रेमाख्यान रहे हों तो ये उपर्युक्त भिन्न रूपों में से किसका अधिक अनुसरण करते होंगे। इसी प्रकार बंगला में ही रची गई गोविन्दचन्द्र चट्टोपाध्याय की रचना 'मधुमालती' के विषय में भी कहा जा सकता है। इसके सिवाय इस प्रकार की कहानी को लेकर गुजराती में लिखी गई कतिपय रचनाओं का भी पता चलता है^१ और एक ऐसी रचना की कुछ पंक्तियों के उदाहरण देकर श्री अग्रचंद नाहटा ने अनुमान किया है कि वह 'मधुमालती' किसी अज्ञात कवि की है तथा उसकी भी पूरी प्रति के देखे बिना उसकी कथावस्तु के विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता, किन्तु ग्रंथ-विस्तार के हिसाब से कथा बहुत बड़ी प्रतीत होती है^२।" मंझन के परवर्ती उसमान कवि ने भी 'मधुमालती' की कथा का उल्लेख अपनी रचना 'चित्रावली' के अन्तर्गत किया है^३।

मंझन वाली कथा में किसी ऐतिहासिक घटना का भी कोई उल्लेख स्पष्ट रूप में किया गया नहीं जान पड़ता, न उसके पात्रों अथवा स्थानों के ही विषय में कहा जा सकता है कि उनका वास्तविक परिचय किस प्रकार दिया जाय इसके नायक मनोहर के पिता का नाम सूरजभान है जो कनेसर का राजा है, वह अपनी प्रेम-यात्रा करते समय किसी बिसरामपुर में पहुँचता है और वहाँ के राजा की कन्या प्रेमा को देखता है जो उसकी प्रेमपात्री मधुमालती की सखी सिद्ध होती है। मधुमालती की माँ रूपमंजरी है जो अपनी पुत्री को किसी राजकुमार ताराचंद के साथ व्याह देना चाहती है, इत्यादि। इसमें बहुत सी ऐसी घटनाओं का समावेश भी कर दिया गया है जिनका घटित होना हमें यों असंभव प्रतीत होता है। अप्सराओं जैसी किन्हीं विचित्र स्त्रियों द्वारा मनोहर का सोते समय

१. ना० प्र० पत्रिका, हीरक जयंती अंक, सं० २०१०, पृ० १८७-९२।

२. हिंदुस्तानी (प्रयाग), पृ० १०२। मधुमालती के एक नेपाली रूपान्तर का भी पता चलता है।—ले०

३. मधुमालति होई रूप दिखावा। प्रेम मनोहर होई तहं आवा ॥

उठा लिया जाना तथा उसका कहीं दूर की चित्रसारी में लाकर सुलाया जाना और फिर उसी प्रकार, अपने यहाँ पहुँचा दिया जाना तथा मधुमालती की माता द्वारा उसे किसी पक्षी का रूप प्रदान कर दिया जाना आदि इसकी अनेक ऐसी घटनाएँ हैं जिन्हें केवल किसी काल्पनिक कहानी की पृष्ठभूमि के रूप में ही सत्यसा मान लिया जा सकता है। इन जैसी बातों का उतना महत्व, सूफ़ीमत की प्रेमसाधना को उदाहृत करने वाले किसी दृष्टान्त की दृष्टि से भी सिद्ध नहीं किया जा सकता, अपितु इनके कारण इस प्रेमगाथा के उसके लिए बहुत कुछ अनुपयुक्त ठहरने की ही आशंका की जा सकती है। जायसी की 'पद्मावत' तथा उसकी पूर्ववर्ती रचनाओं के भी अन्तर्गत ऐसी बातों का समावेश किसी न किसी रूप में तथा किसी न किसी मात्रा तक कर दिया गया दीख पड़ता है जिसकी ओर इसके पहले भी संकेत कर दिया गया है। जहाँ तक पता चलता है ऐसी रचनाओं के कवियों ने इस प्रकार के प्रसंगों को अधिकतर अपने-अपने ढंग से तथा कभी-कभी मनमाने रूप में बढ़ा-चढ़ा कर भी अपनाया है और कदाचित् इस बात का भी विचार नहीं किया है कि ऐसा करना कहाँ तक उपयुक्त हो सकता है जिस किसी भी कथा में समुद्र एवं बीहड़ बनों को ला देना, प्रायः राक्षसों अथवा अस्सराओं वा पौराणिक व्यक्तियों तक का अवतरण कर देना और ऐसे माध्यमों के द्वारा अनेक विचित्र तथा अल्प विश्वसनीय घटनाओं की सृष्टि करके कौतूहल उत्पन्न कर देने की चेष्टा करते रहना आदि बातें वस्तुतः किसी मन-गढ़ंत दंतकथा का ही अंग बनायी जा सकती हैं। परंतु ऐसी बातों से काम लेना प्रायः सभी प्रेमालयानों के कवियों ने उचित समझा है, जिस कारण ये कथा-रूढ़ियों की कोटि तक में आ जाती हैं।

मंझन की मधुमालती तथा शेख क़तबन की 'मृगावती' की भाँति जायसी की 'पद्मावत' के साथ भी, नामसाम्यादि के कारण, तुलना में रखने योग्य कई रचनाओं का पता चलता है जिनमें से कुछ का उल्लेख यहाँ पर अप्रासंगिक न होगा। परंतु जहाँ तक विदित होता है, यह जायसी की रचना ही कदाचित्

उन सभी से प्राचीनतर कही जा सकती है। 'पद्मावत' की रचना के अनन्तर, संभवतः सन् १५८८ ई० में हेमरतन कवि ने अपनी पुस्तक 'गोरा बादल चौपाई' लिखी और उसमें उसने प्रायः उन्हीं प्रसंगों का समावेश करने की चेष्टा की जिन्हें जायसी ने भी अपनाया था। इसी प्रकार किसी लालचंद वा लक्ष्मोदय कवि ने 'पद्मिनी चरित्र' की रचना मेवाड़ के महाराणा जगत सिंह के समय (सन् १६२८-५२ ई०) में की और उसका रचना-काल सं० १७०७ (सन् १६५० ई०) था। कवि जटमल द्वारा भी एक रचना लगभग इसी विषय को लेकर सं० १६८० अर्थात् सन् १६२८ ई० में ही प्रस्तुत की जा चुकी है। इनमें कही गई कथा का एक तुलनात्मक अध्ययन करते हुए श्री मायाशंकर जी याज्ञिक ने कतिपय प्रसंगों की चर्चा की है और इनका कहना है कि यहाँ पर यदि हेमरतन की उक्त चौपाई पर विस्तृत विचार न भी करें, क्योंकि उसकी कोई पूरी प्रति अभी तक उपलब्ध वा प्रकाशित नहीं हो सकी है उस दशा में भी, हमें उसका परिणाम मनोरंजक सिद्ध हो सकता है।" 'पद्मावत' पद्मिनी चरित्र एवं 'गोरा बादल की बात' की कथाओं में मुख्य-मुख्य भेद बतलाते हुए इन्होंने लिखा है—(१) जायसी हीरामन तोता द्वारा पद्मिनी का सौन्दर्य-वर्णन कराकर राजा रतनसेन को उस पर मोहित कराता है, जहाँ जटमल भाटों द्वारा उसके रूप की प्रशंसा कराता है। किंतु 'पद्मिनी चरित्र' के देखने से पता चलता है कि उसके कवि ने इसके लिए एक नयी घटना की ही आवतारणा कर दी है और कहा है कि राजा रतनसेन की पटरानी पद्मावती ने उनसे एक बार रोष में आकर कह दिया कि कोई पद्मिनी क्यों नहीं लाते जिस पर उन्हें भी क्रोध आ गया और उसका मान-मर्दन करने के उद्देश्य से वे किसी ख्वास को लेकर पद्मिनी को लाने निकल पड़े (२) जायसी का राजा रतनसेन स्वयं कष्ट झेलता हुआ सिंहलगढ़ पहुँचता है, जहाँ जटमल उन्हें किसी योगी के योगबल द्वारा वहाँ पहुँचाता और लालचंद उसे समुद्र तट तक ले जाकर वहाँ किसी औघड़नाथ द्वारा उसे योगबल की सहायता दिलवाता है। (३) जायसी राजा रतनसेन का विवाह उसके सृए द्वारा पश्चिमी से परिचित हो जाने तथा शिव की सहायता प्राप्त कर लेने पर कराता है और जटमल इसके

लिए योगी द्वारा परिचय दिये जाने की भी आवश्यकता नहीं समझता जान पड़ता, जहाँ लालचंद की रचना के अन्तर्गत राजा के सिंहल पहुँचते समय वहाँ के राजा द्वारा अपनी 'बहन' पद्मिनी के विवाहार्थ द्विद्वोरा पिटवाये जाने की भी चर्चा की गई मिलती है और रतनसेन को यहाँ अखाड़े में पराक्रम दिखलाना पड़ा है। (४) जायसी के अनुसार राघव चेतन को राजा रतनसेन उसके जादूगर होने के कारण निकाल देता है और यह अलाउद्दीन के पास जाकर उसे पद्मावती के लिए आमंत्रित कर लाता है, जहाँ जटमल का राघव चेतन राजा के साथ सिंहल से आता है। राजा रतनसेन के सामने वह यहाँ पर आखेट के समय पद्मिनी की कोई पुतली बनाता है जिसकी जंघा पर एक तिल रहता है और इस कारण उस पर सन्देह करके उसे राजा अपने यहाँ से निकाल देता है। किंतु लालचंद राघव चेतन को किसी कथावाचक पंडित के रूप में चित्रित करता है और उसको किसी दिन राजा एवं रानी के एकान्त में क्रीड़ा करते समय बिना किसी सूचना के पहुँच जाने के कारण उसे निकलवाता है। (५) इसी प्रकार 'पद्मिनी चरित्र' के अंतर्गत राघव का दिल्ली जाकर अपनी पंडिताई की ख्याति का प्राप्त करना तथा प्रपंच रचकर सुलतान अलाउद्दीन के समक्ष किसी भाट द्वारा किसी राजहंस पक्षी का पर उपस्थित कराना और इस प्रकार उससे भी कोमल अंग वाली पद्मिनी के प्रति उसे आकृष्ट कर इसके लिए उत्तेजित कर देना दिखलाया गया है। किंतु ऐसी कोई चर्चा 'पद्मावत' में भी की गई नहीं पायी जाती और 'गोरा बादल की बात' में भी राजहंस की जगह खरगोश का उल्लेख मिलता है तथा एकाध अन्य ऐसी बातें भी पायी जाती हैं, जो भिन्न हैं। इसके सिवाय हेमरतन, जटमल एवं लालचंद की उपर्युक्त रचनाओं में हमें जितना ध्यान गोरा एवं बादल की वीरता तथा पद्मिनी वा पद्मावती के हिन्दू नारीत्व को महत्व प्रदान करने की ओर दिया गया जान पड़ता है, उतना इस कथा के उन प्रेमव्यापारों का वर्णन करने की ओर नहीं जिनकी रोचकता के माध्यम द्वारा जायसी ने अपने अभीष्ट मत प्रचार की भी चेष्टा की है। इधर पता चला है कि 'सभा' को इसकी पूरी प्रति मिल गई है जिसका संपादन डॉ० शिव प्रसाद सिंह कर रहे हैं।

जायसी की 'पद्मावत' के आधार पर पीछे बंगला कवि अलाओल ने भी एक रचना प्रस्तुत की और उसका निर्माण आराकान के राजा तथादो मिन्तर (सन् १६४५-५२ ई०) के समय में किया गया जिसे इस कवि के 'सादोमाम्दार' का भी नाम दिया है। इस राजा का मंत्री मगन ठाकुर भी स्वयं काव्य-रचना में अभ्यस्त बतलाया गया है और वस्तुतः वही अलाओल को इस कार्य की ओर प्रवृत्त भी करता है। अलाओल ने जायसी का अनुसरण करते हुए इनकी 'पद्मावत' के कई स्थलों का अक्षरशः अनुवाद तक कर डाला है। परंतु फिर भी उसने अपनी रचना में कुछ अन्य ऐसी बातें भी ला दी हैं जिनके कारण कतिपय विशेषताओं का समावेश हो जाता है। डॉ० सत्येन्द्रनाथ घोषाल ने इनमें से कुछ का उल्लेख किया है और बतलाया है कि अनुवादक ने बहुत से नामों तथा घटनाओं के क्रम तक में परिवर्तन कर दिये हैं, कथानक के विवरणोंमें अन्तर ला दिया है तथा कहीं-कहीं उन्हें संक्षिप्त तक कर डाला है अथवा उन्हें छोड़ तक भी दिया है। इसी प्रकार अलाओल की रचना के अन्तर्गत कुछ ऐसी नवीन बातें भी आ जाती हैं जिनका पता 'पद्मावत' में नहीं चलता तथा वहाँ पर कतिपय इतिहास एवं परंपरा वाली बातों के विवरण में भी अन्तर आ गया देख पड़ता है^१।

वास्तव में जैसा डॉ० सुकमार सेन ने भी कहा है अलाओल ने 'पद्मावत' के "पात्रों और पात्रियों को यथा संभव बंगाली साँचे में ढाल दिया है और उसने दो एक अवातर कहानियों का भी समावेश कर दिया है"^२, किंतु इसके कारण मूल-काव्य वा कहानी को विशेष क्षति नहीं पहुँची है। परंतु अलाओल की रचना की पूर्ण प्रामाणिक प्रति के अभी तक उपलब्ध होने में सन्देह भी किया जाता है और यहाँ तक भी अनुमान किया जाता है कि प्राप्त प्रति के अंतिम अंश को हम किसी अन्य कवि की रचना भी ठहरा सकते हैं। डॉ० घोषाल के अनुसार किसी एक साधारण पाठक के लिए भी यह प्रत्यक्ष हो जाना असंभव नहीं कि दिल्ली कुँवर

1. Visvabharati Annals Vol IX (1959) p. 66.

१. इसलामि बांगला साहित्य, पृ० ३१

के बंदीगृह से रतनसेन के छूट कर आ जाने के अनन्तर की कथा केवल चलता कर दिये गए किसी कथन मात्र सी ही लगती है और उसमें कोई काव्यगत सौन्दर्य भी नहीं लक्षित होता। इसके अतिरिक्त इधर के अंश में जायसी वाले कथानक से भी बहुत अन्तर दीख पड़ता है। यहाँ पर ऐसे प्रसंगों का भी आ जाना, जहाँ अंत में सुलतान अलाउद्दीन चित्तौड़ आ गया और वह पाँच वर्षों तक वहाँ राजा रतनसेन के पुत्रों के साथ रहता रहा एक ऐसी बात है जिसको नितान्त निराधार और कपोल कल्पित कहा जा सकता है^१।

‘पद्मावत’ की प्रेमकहानी का कोई पूर्ववर्ती आधार जान नहीं पड़ता और इस विषय में केवल इतना ही अनुमान कर लिया जाता है कि जायसी ने इसे लिखते समय, अधिक से अधिक प्रचलित कथा-रूढ़ियों को ही अपनाया होगा; किन्तु इसका अंग्रेजी अनुवाद करने वाले विद्वान ए० जी० शिरेफ़ ने उसकी भूमिका में इस कवि के प्रसिद्ध ग्रंथ ‘कथा सरित्सागर’ से परिचित होने की ओर भी संकेत किया है और कहा है कि यह बात असंभव नहीं हो सकती^२। कम-से-कम इस रचना की मुख्यकथा के राजा रतनसेन एवं पद्मावती के किसी सूप की सहायता से विवाहित होने वाले प्रसंग का सम्बंध तो उसकी उस कथा के साथ जोड़ा ही जा सकता है जिसमें रतनसेन की ही भाँति रूपसेन जैसे नाम के राजा को कोई ‘हीरामन’ जैसा ही चूड़ामन तोता पद्मावती जैसी चन्द्रावती के साथ विवाह करने में अपनी भविष्यवाणी द्वारा सहायक सिद्ध होता है। डॉ० घोषाल के अनुसार यह प्रसंग किसी शिवदास की संस्कृत-कथा के कारण भी आ गया हो सकता है जिसकी वह रचना ईसा की पंद्रहवीं शताब्दी के पीछे की नहीं हो सकती और जिससे इसी कारण, जायसी का परिचित होना भी असंभव नहीं कहा जा सकता^३। पद्मावत के पहले हिन्दी में ही रची गई एक रचना ‘लखमसेन पद्मावती’^४ नाम से भी आती है

1. Visvabharati Anna's pp. 189—90.

2. Padmavat (English Translation) Royal Asiatic Society of Bengal (1944) p. 144.

3. Visvabharati Annals pp. 69—70.

४. सं० नर्मदेश्वर चतुर्वेदी : लखमनसेन पद्मावती, परिमल प्रकाशन, प्रयाग ।

जिसकी नायिका का भी नाम पद्मावती है, किंतु उसका कथानक इससे नितान्त भिन्न है और सिवाय इसके कि उसके अंतर्गत भी कई कथा-रूढ़ियों का समावेश लगभग उसी प्रकार किया गया मिलता है जैसा हमें जायसी की इस रचना में दीख पड़ता है, इन दोनों में अधिक समानता की संभावना नहीं जान पड़ती। कथा-रूढ़ियों की दृष्टि से उसकी तुलना अन्य अनेक सूफ़ी प्रेमगाथाओं से भी की जा सकती है जो 'पद्मावत' के पूर्व वा पश्चात् लिखी गई हैं।

मंज़न की 'मधुमालती' के अनन्तर लिखी गई सूफ़ी प्रेमगाथाओं में से ऐसी बहुत कम ही मिल सकती हैं जिनके मूलाधार कथानक की खोज के सम्बंध में अभी तक कोई यत्न किया गया दीख पड़ता है अथवा जिनका पीछे अनुसरण करने वाली रचनाओं का ही पता लगाया जा सका है और इस प्रकार उनके सम्बंध में निर्मित हो सकने योग्य किसी कथानक-चक्र की संभावना की जा सकती है। उसमान कवि ने अपनी रचना 'चित्रावली' की प्रारंभिक पंक्तियों में उसके विषय में लिखते हुए बतलाया है कि इस "एक कथा को मैंने अपने हृदय से उत्पन्न किया है जो कहते समय भी मीठी जान पड़ती है और जो सुनते समय भी सुन्दर लगेगी। इसे मैंने जैसे सूझ पड़ा है वैसा ही बनाया है और जिसे यह जैसी सूझ पड़ेगी वैसी ही वह इसे बूझ पायेगा^१"। उसने पीछे इतना और भी कह दिया है कि "इस प्रेम की कहानी को मैंने कह दिया है जिससे रात कट सके" जिसका तात्पर्य या तो केवल कालयापन के अर्थ में ही समझा जा सकता है अथवा यह भी कहा जा सकता है कि इस कथा के रचने का प्रयोजन वह 'कलि-स्याम रैन' वा कलियुग के समय वाले अंधाधुंध से सजग रहकर अपने को बचाना ठहराता है^२। उसमान की यह रचना कदाचित् अभी तक उपलब्ध उन सूफ़ी प्रेमगाथाओं में अंतिम कही जा सकती है जिसके ऊपर अभारतीय कथा-रूढ़ियों का प्रभाव प्रायः नगण्य-सा जान पड़ता है और जिसके कवि ने यहाँ की लोकगाथात्मक विशेषताओं को ही अधिक प्रश्रय दिया है। 'चित्रावली' की एक विशेषता इस बात में भी दीख

१. चित्रावली, ना० पृ० सभा संस्करण, दोहा ३२ पृ० १४।

२. वही, दोहा ३४, पृ० १५।

पड़ती है कि इसे उसमान कवि ने मंज़न की 'मधुमालती' की भाँति सुखान्त रूप में ही रखा है। इस रचना के अंत में उसने न केवल इसे नयी कथा बतलाया है, अपितु इतना और भी कह दिया है—

कवितन्ह मरन कथा कं गाई, मोहि मरत हिय लागु छोहाई ॥

औ जे प्रेम अमीरस पीया, मरं न मारं जुग जुग जीया ॥

एक जियन एक मरन संसारा, मरि मरि जियई ताहि को मारा १॥

जिन्हें पढ़ कर हमें मंज़न की भी ये पंक्तियाँ स्मरण हो आती हैं—

उतपति जग जेती चलि आई, पुर्खमारि ब्रज सती कराई ॥

में छोहन्ह येहि मारि न पारेउ, सही मरिहि जे कलि औतारेउ ॥

सत सुनो संसार सुभाऊ, जो मरि जिये सो मरं न काऊ ॥२

और ऐसा लगता है कि इन्हें पढ़ वा सुनकर ही उसने वैसा लिखा होगा। इसी प्रकार उसमान ने यहाँ पर अनेक वैसी बातों को भी दोहरा दिया है जिन्हें उसके पूर्ववर्ती सूफ़ी कवियों ने अपनी लघुता प्रदर्शित करने मात्र के लिए लिखा था तथा उसने उनके अनेक शब्दों तक को भी लगभग उसी प्रकार अपने प्रयोग में ला दिया है।

'चित्रावली' के अनन्तर लिखी गई ऐसी प्रेमगाथाओं में से जान कवि के प्रेमाख्यानों के रचना-काल से ही हमें ऐसा लगता है कि उत्तरी भारत के सूफ़ी कवियों का भी ध्यान अधिकतर उन कतिपय बातों की ओर जाने लगा जिन्हें दक्खिनी 'हिंदवी' के ऐसे कवियों ने शामी परंपरा के निकट प्रभाव में आकर अपना आरंभ कर दिया था और जो अभारतीय भी कही जा सकती थीं। इनमें से कुछ तो केवल कथा में आ गए पात्रों अथवा स्थानों के नामों से ही सम्बद्ध हैं और उन्हें इसी कारण, उतना महत्व नहीं दिया जा सकता, न जिनके विषय में यही कहा जा सकता है कि उन्हें इन कवियों ने किसी उद्देश्य से अपनाया होगा। इस प्रकार के उदाहरणों में जान कवि की 'मधुकर मालति' में आये हुए तुर्किस्तान

१. चित्रावली, दोहा ६१७, पृ० २३६ ।

२. मधुमालती (हिंदी प्रचारक संस्करण) पृ० १६४ ।

के प्रसंग अथवा उसी कवि की 'रतनावलि' वाले ख्वाजा खिज़्र खाँ के उल्लेख किये जा सकते हैं। इस सम्बंध में स्वयं जान कवि ने भी किसी नियम विशेष का पालन नहीं किया है और अपनी अनेक रचनाओं में इसकी ओर ध्यान भी नहीं दिया है। इसके सिवाय शेख नबी आदि एकाध अन्य ऐसे कवि भी हो सकते हैं जिन्होंने इस प्रकार की बातों को कोई प्रश्रय नहीं दिया। परंतु हमें ऐसा लगता है कि कासिम शाह की रचना 'हंस जवाहर' के रचना-काल (हि० सन् ११४९ अर्थात् सन् १७३६ ई०) तक उक्त प्रकार की बातों को विशेष महत्व दिया जाने लगा था और न केवल नामादि की चर्चा, अपितु बहुत कुछ सांस्कृतिक परंपराओं के उल्लेखों तक में, शामी समाज की बातों का समावेश किसी न किसी रूप में कर दिया जाता था। जान कवि ने अपनी रचना 'मधुकर मालति' के अंतर्गत उसकी नायिका के किसी एक 'विलाइत' के बादशाह द्वारा एक सहस्र मुद्रा देकर चेरी के रूप में क्रय कर लिये जाने की चर्चा की है जिससे उधर की क्रीतदासों वाली प्रथा पर भी प्रकाश पड़ता है। कासिम शाह ने तो अपनी रचना 'हंस जवाहर' के अंतर्गत बलख नगर के सुलतान बुरहानशाह और उसकी ३१ सुन्दर नारियों से ही कथा का आरंभ किया है, ख्वाजा खिज़्र खाँ के आशीर्वाद से उसके 'हंस' नामक पुत्र के उत्पन्न होने का उल्लेख किया है, बाज एवं परियों का प्रसंग लाया है तथा हंस के छुरी से मार दिये जाने आदि ऐसी बहुत-सी बातों की चर्चा की है जिनसे यहाँ के लोग उतने परिचित नहीं थे। फिर भी यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि इस प्रकार के प्रसंगों का अपनी रचना में समावेश करते हुए भी, कासिम शाह ने इस बात का ध्यान रखा है कि 'हंस', 'शब्द', 'चीर' जैसे कुछ शब्दों के प्रयोग उनके भारतीय रूपों में ही किये जायँ तथा बलख एवं चीन के निवासी पात्रों के बीच विवाह-सम्बंध स्थापित करते समय भी अधिकतर परिचित भारतीय प्रथाओं के ही वर्णन किये जायँ।

जिस समय जान कवि राजस्थान में अपनी प्रेमगाथाएँ लिखने में व्यस्त रहे, लगभग उसी समय गोलकुंडा सल्तनत का गवासी नामक कवि भी अपने सूफ़ी प्रेमाख्यानों की रचना कर रहा था। उसने कदाचित् सन् १६२६ ई० में अपनी प्रसिद्ध रचना 'सैफ़ल मूलक व वदीउल ज़माल' प्रस्तुत की जिसको न केवल उन्होंने फ़ारसी

भाषा में प्रचलित छंदों वा दूहों का ही प्रयोग करके दक्खिनी 'हिंदवी' में पूरा किया, अपितु उसके अंतर्गत उसने एक ऐसे कथानक को भी अपनाया जिसका सम्बंध मिन्न देश के वातावरण तथा वहाँ के निवासियों आदि के साथ भी था। उसमें सिंहल आदि की चर्चा केवल प्रासंगिक रूप में ही समाविष्ट कर ली गई थी तथा उसे उस कवि ने किसी फ़ारसी गद्य की पुस्तक की कहानी के आधार पर भी रचा था। उस कथा की प्रसिद्धि ग़ज़नवी सुल्तान महमूद के समकालीन किसी दमिश्क के दरबार तक में थी और यह वहाँ किसी पुस्तक में भी उपलब्ध थी। ग़वासी ने उस कहानी के ढाँचे पर अपनी रचना को तैयार करते समय बहुत कुछ अपनी ओर से भी अवश्य मिलाया, किंतु उसकी शाही परंपरा सम्बंधी प्रायः सभी बातें ठीक पूर्ववत् ही रह गईं। इसी प्रकार ग़वासी के ही समकालीन मुल्ला वज़़ही नामक एक अन्य सूफ़ी कवि ने भी सन् १६३६ ई० में वहाँ पर 'सबरस' नामक एक गद्यात्मक प्रेमगाथा की रचना की जिसमें उसने न केवल सीस्तान नगर के शासक से ही अपनी कहानी का आरंभ किया, अपितु उसके भीतर उसने ऐसे पात्रों का भी अवतरण किया जो 'अक़ल', 'दिल', 'नज़र', 'हिम्मत', एवं 'इश्क़', जैसे नामधारी थे तथा जिनके ऐसे नामकरण का उद्देश्य भी प्रत्यक्षतः उस कवि द्वारा निर्दिष्ट किसी मत विशेष का स्पष्टीकरण एवं प्रचार ही कहा जा सकता था। तदनुसार हम देखते हैं कि इस प्रकार किये गए ग़वासी तथा मुल्ला वज़़ही के यत्नों का कुछ न कुछ प्रभाव उत्तरी भारत के सूफ़ी कवियों पर भी पड़ता हुआ दीख पड़ा। जान कवि एवं कासिम शाह ने स्वयं न्यूनाधिक ग़वासी का अनुकरण किया तथा मुल्ला वज़़ही की रचना-शैली के आदर्श पर पीछे नूर मोहम्मद कवि ने अपनी 'अनुराग बाँसुरी' की रचना कर उसके पात्रों का साभिप्राय नामकरण कर दिया और इस प्रकार यहाँ की भी प्रेमगाथाएँ उन बातों से अछूती न रह सकीं। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि नूर मोहम्मद ने अपनी इस रचना के पात्रों का नामकरण करते समय उन्हें 'अंतःकरण', 'जीव', 'चित्त', एवं 'सर्वमंगला', आदि कहकर ही अभिहित किया तथा उसमें आये हुए स्थानों तक को 'मूरतिपुर' वा 'स्नेह नगर', जैसे ही नाम दिये, किंतु उसका ऐसा करना भी केवल हिंदी भाषा का व्यवहार करने के ही उद्देश्य से था। उसने अपनी इस रचना के आरंभ में ही इस बात की ओर

संकेत कर दिया है कि उसे अपने धर्म की प्रतिष्ठा ही अभीष्ट है ।

नूर मोहम्मद के कुछ दिनों पीछे उत्तरी भारत के हिन्दी कवि शेख निसार ने अपनी 'यूसुफ़ जुलेखा' नामक रचना लिखी जिसका रचना-काल हिज़री सन् १२०५ अथवा संवत् १८४७ भी दिया गया मिलता है और जो इसी लिए सन् १७९० ई० कहला सकता है । कवि शेख निसार ने अपनी प्रेमकहानी की कथावस्तु को स्पष्ट रूप में शामी भांडार से चुना है । उस कथानक का बीजरूप मुसलमानों के धर्मग्रंथ 'क़ुरान शरीफ़' में भी वर्तमान है^१ तथा जिसके आधार पर इसके पहले फ़ारसी में कुछ मसनवियाँ लिखी भी जा चुकी थीं । कहते हैं कि प्रसिद्ध कवि फ़िरदौसी (मृ० सन् १०२० ई०) ने इस विषय को लेकर अपनी एक मसनवी 'यूसुफ़ और जुलेखा' की में रचना की थी और उसके संभवतः समकालीन अब्दुल मुयीद ने भी कोई मसनवी इस नाम से ही रच डाली थी^२ । प्रसिद्ध जामी ने भी अपनी एक इसी नाम की रचना को सन् १४९२ ई० में पूरा किया जिसके कारण वह अमर हो गया । शेख निसार कवि अत्यंत नम्र स्वभाव का था और उसके हिन्दी, फ़ारसी, तुर्की, एवं संस्कृत के माध्यम से सात ग्रंथों की रचना कर लेने पर भी इस प्रेमकथा को लिखने के लिए केवल इसी कारण इच्छा प्रकट की कि प्रेमरसपूर्ण बातों का किसी सच्ची कहानी द्वारा ही कहा जाना चाहिए और इसके लिए 'हंस जवाहर' जैसी अधिकतर काल्पनिक कहानियों का आश्रय नहीं ग्रहण करना चाहिए । इस कथा को विशेष रूप से अपनाने का वह एक और भी कारण देता है और वह कहता है कि मैं अपनी अनेक विपत्तियों का मारा था और अनेक कष्टों का अनुभव भी कर चुका था जिसका कारण मुझे स्वभावतः यही उचित जान पड़ा कि हज़रत याक़ूब के पुत्र-विरह की कहानी लिखूँ । शेख निसार एक धार्मिक व्यक्ति है और उसने इस कथा को बहुत कुछ परंपरानुरूप ही लिखने का यत्न किया है । यह भी एक संयोग की ही बात हो सकती है कि ठीक शेख निसार की ही भाँति

१. सूरे यूसुफ़ (पारा १२ व १३) ।

2. M. A. Ghani: *The Pre Mughal Persian in Hindustan*, (Allahabad, 1941) pp. 137-8.

भुक्तभोगी बनकर हिंदी के एक अन्य सूफ़ी कवि नसीर ने भी अपनी 'प्रेमदर्पण' नामक रचना का निर्माण करते समय हिज़री सन् १३३५ वा सन् १९१७ ई० में इस कथा को ही चुनना उचित समझा है और उसने भी अपनी इस रचना के आरंभ में वैसी ही 'आपबीती' का उल्लेख कर दिया है। 'प्रेमदर्पण' को इस प्रकार प्रस्तुत करते समय नसीर कवि ने कदाचित् उर्दू कवि फ़िग़ार का अनुसरण किया था, किंतु फिर भी यह कोई अनुवाद नहीं है। कवि नसीर की इस प्रेमगाथा के लिखने के दो वर्ष पीछे फिर बंगला कवि ग़रीबुल्ला ने भी इसके कथानक के आधार पर अपनी एक रचना, पीर बदर एवं बड़खाँ गाजी के संवाद रूप में तैयार की जो बहुत प्रसिद्ध है^१। दक्खिनी 'हिंदवी' के कवि मीराँ हाशमी बीजापुरी (मृ० सन् १७०५ ई०) ने शेख़ निसार एवं कवि नसीर की रचनाओं के पहले सन् १६७९ ई० में ही अपने प्रेमाख्यान 'यूसुफ़ जुलेखा' की रचना कर डाली थी।^२ इस कारण संभव है वह भी इन दोनों उत्तरी भारत के कवियों की दृष्टि में आ चुकी रही हो।

(६)

उत्तरी भारत के प्रेमाख्यानों की परंपरा में आने वाली प्रायः सभी रचनाओं के अंतर्गत प्रेम एवं विरह के महत्व का उल्लेख भी यथास्थल किया गया मिलता है। इनमें यह भी बतला दिया गया दीख पड़ता है कि किस प्रकार इन्हें सर्वोच्च स्थान तक दे सकते हैं। कभी-कभी तो इस प्रकार की बातें उनके पात्रों द्वारा ही कहला दी जाती हैं और उनके शब्दों द्वारा उनकी स्वयं अपनी अनुभूति का परिचय दिला कर कदाचित् यह सिद्ध करने की चेष्टा भी कर दी जाती है कि ये बातें केवल सैद्धान्तिक ही नहीं, प्रत्युत व्यवहार में लायी भी जा चुकी हैं। 'चंदायन' की पूरी प्रति अभी तक प्रकाशित नहीं हो सकी है, किंतु उसकी अधूरी प्रतियों से भी उद्धृत की गई कतिपय पंक्तियों में हमें इसके एकाध सुन्दर उदाहरण मिल जाते हैं

१. इसलामि बांगला साहित्य, पृ० १०७।

२. श्री राम शर्मा : दक्खिनी का पद्य और गद्य (हैदराबाद, १९५४ ई०) पृ० १४९-५२ और ४९१।

और ऐसा अनुमान होता है कि वैसे बातें उसमें अन्यत्र भी उपलब्ध हो सकती होंगी। चंदा नायिका जिस समय श्रांति का दशा में पड़कर मुरझाई-सी लगती है और वह लोरक के निकट बढ़कर अपना सिर झुका लेती है उस समय उसे संबोधित करते हुए यह कहता है—

लोरिक कहा सुनह धन, कवन करब अब सांझ ।

भोग पारस परम रस, हिरदय पातन मांझ^१ ॥

अर्थात् हे प्रिये, क्या तुम्हें इस बात की चिंता हो रही है कि आगे किस प्रकार समय कटेगा ? क्या तुम्हें यह विदित नहीं कि अपने भाग्य पर अवलंबित रहने वाले मिलन जन्य उत्कृष्ट (प्रेम) रस का अस्तित्व हमारे हृदय पत्रों में ही अंत-निहित है ? और इसीलिए हमें निराश हो जाने का कोई कारण नहीं हो सकता ? इसी प्रकार उस नायक के ही मख से उसकी विरह-जन्य दशा तथा इसके कारण उसे समझ पड़ने वाली बातों का भी एक स्थल पर परिचय दिलाया गया है।

सत कं पूर चांद हर लीन्हा, सगरै रैन खोज मं कीन्हा ।

खोजत पायों तोता, धर्घो भीर की वार ।

झूठे चित विराग भरानै, जाना सब संसार^२ ॥

अर्थात् चंदा ने मानो मेरा सभी कुछ हर लिया, क्योंकि मैं उसे सारी रात ढूँढ़ता ही रह गया। उसे ढूँढ़ते समय मुझे केवल तोता मिला जिसे ही मैंने भेड़ के बाल जैसा (अल्प संतोष का आधार) मान लिया तथा उसे पकड़ लिया। मेरा चित्त व्यर्थ ही विराग में उलझा हुआ है। अब मुझे इस बात का अनुभव हो गया कि (एक विरही की दृष्टि में) यह सारा संसार ही मिथ्या है, इसमें कुछ भी तत्व नहीं है जिससे उसके विरहाभिभूत मनःस्थिति के ऊपर पूरा प्रकाश पड़े बिना नहीं रहता।

इसी प्रकार शेख कुतबन की 'मृगावती' वाली अधूरी प्रतियों की कुछ पंक्तियों द्वारा भी उपर्युक्त बातों को कुछ अंशों में उदाहृत किया जा सकता है। 'मृगावती'

1. Rare Fragments etc. p. 14.

2. Do p. 15.

का नायक राजकुमार जब अपनी प्रेमिका के दरबार तक पहुँच पाने में अपने को असमर्थ पाता है और वह अपनी विवशता के कारण अधीर बनकर यह मान लेता है कि मेरी यहाँ पर कोई पूछ न हो सकेगी तो उसे अपनी विरह-दशा का और भी तीव्र अनुभव होने लग जाता है और वह अपनी कींगरी लेकर बजाने मात्र पर ही तुल जाता है। फिर तो उसकी दशा की ओर सभी को आकृष्ट होना पड़ जाता है। इस रचना के कवि ने उस प्रसंग का वर्णन करते समय उसका एक मार्मिक चित्र खींचा है और कहा है —

कुंअर देखि कै चिंता भई । मोरी चाह कैसे पहुँच जाई ॥

राजा राउ जोहार न पावहीं । हमरी गनती केकरे मन आवहीं ॥

बहुरि वियोग भएउ सिर सेती । कहेसि बात नहि आवइ एती ॥

कींगरी लीहे वियोग बजावइ । सभही सुन वोही देखन आवइ ॥

सुनि वीयोग सभही एन बोला । भाइहु राग आसन हरि डोला ॥

जेइरे सुनी उसे भुलीउ, चिंत न रहीउ काहि ।

बज्र करेजा जाही कर, भा वीयोग उर ताहि ॥५॥

नगरी सगरी वीयोग संतावइ । घर घर इहै बात जनावइ ॥

योगी एक कतहुँ ते आवा । वीरही वीयोग संताप बजावा ॥

एहीरे बात मृगावती सुनी । आएसु एक आवो बहु गुनी ॥

आगया भई बोलावहु ताही । पूछहु कवन देस कर आही ॥^१

अर्थात्, वहाँ की स्थिति को देखकर कुंवर को इस बात की चिन्ता हो गई कि मेरी बात (मृगावती तक) कैसे पहुँच सकेगी। यहाँ पर तो राजा राव सभी उसकी 'जोहार' करते जान पड़ते हैं, ऐसी दशा में मेरी यहाँ कौन पूछेगा। (इसके अनन्तर) विरह-व्यथा उसके सिर पर फिर सवार हो गई और उसने अपने मन में समझ लिया कि अब इस प्रकार मेरा काम नहीं चल सकेगा। उसने अपनी कींगरी उठाकर विरह के गीत गाना आरंभ कर दिया जिसे सुनते ही सब लोग

१. सूफ़ी काव्य-संग्रह (हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सन् १९५८ ई०)
पृ० ११४ पर उद्धृत ।

उसे देखने के लिए आने लगे । उसकी वियोग भरी बातें समझकर सभी उसकी चर्चा करने लगे, उन्हें उसके प्रति सहानुभूति हो आई तथा हरि (भगवान) का आसन डोल गया । जिसने उसके विरह-वादन की ध्वनि सुनी उसे अपना आपा भूल गया और जिसका करेजा (हृदय) वज्र-सा कठिन था उसे भी वियोग ने प्रभावित किया । सारे नगर को वियोग ने सताना आरंभ कर दिया ओर प्रत्येक घर में इसी बात की चर्चा होने लगी कि कहीं से एक विरह का मारा कोई 'योगी' आ गया है और यह बात मृगावती तक के कानों में पड़ गई कि एक बहुत बड़ा गुणो आ गया है । फलतः उसने आज्ञा दे दी कि उसे बुलाया जाय और उससे पूछा जाय कि वह किस देश का रहने वाला है ।

जायसी की प्रसिद्ध रचना 'पद्मावत' की तो पूरी प्रति प्रकाशित भी हो चुकी है और उसमें आये हुए इस प्रकार के स्थलों से बहुत लोग परिचित होंगे तथा उसमें स्वयं कवि की ओर से कहे गए प्रेम एवं विरह सम्बंधी सिद्धान्तों द्वारा पूर्ण रूप से अवगत भी हो चुके होंगे । जायसी ने अपनी इस रचना के अंतर्गत, इसके नायक रतनसेन द्वारा, हीरामन तोता से पद्मावती के रूप एवं गुण की प्रशंसा सुनते ही यहाँ तक कहला दिया है—

तीनि लोक चौदह खंड, सब परे मोहि सूझि ।

प्रेम छाड़ि किछु और न लोना, जौ देखौ मन बूझि ॥^१

अर्थात् तीनों लोक एवं चौदहों भुवन में मुझे जो सब दिखलायी दे रहा है उसमें जब मैं विचार करके देखता हूँ तो, मुझे प्रेम को छोड़कर और कुछ भी दूसरा सुन्दर नहीं जान पड़ता । इसी प्रकार इस कवि ने प्रेम के मार्ग की निकटता वर्णन किया है, उसकी व्यापकता की ओर संकेत किया है तथा उसके विविध प्रभावों का भी चित्रण किया है और प्रायः अपनी प्रत्येक धारणा की पुष्टि में दृष्टान्त भी देते हुए उसने उसके भीतर विरह की प्रधानता का भी उल्लेख किया है । जायसी के अनुसार—

१. पद्मावत (चिरगाँव संस्करण) पृ० ९३ ।

प्रेमहि मांह विरह औ रसा, मैन के घर मधु अंत्रित बसा ॥

निसत धाइ जौ मरै तो काहा, सत जौं करै वैसेइ होइ लाहा ॥^१

अर्थात् प्रेम के भीतर विरह एवं रस दोनों ही विद्यमान हैं जैसे मोम के छत्ते में मधु का अमृत और बरं दोनों ही रहा करते हैं। जो सत्यहीन होता है वह दौड़-घूप कर के मर भी जाय तो कुछ भी लाभ नहीं, किंतु सत्यशील व्यक्ति को बैठे भी लाभ हो जाता है। इस प्रकार निर्दिष्ट प्रेम की विशेषता उसके मूलतः विरहर्गभित होने में ही प्रत्यक्ष होती है। इसीकारण, जायसी ने प्रेममार्ग को कठिन बतलाकर उसके आधार का स्वयं परमात्मा एवं सारे ब्रह्मांड की मौलिक एकता में सन्निहित होना भी बतलाया है। उनका कहना है कि विरह के आदिस्त्रोत के, आदि सृष्टि के मूल-विच्छेद में ही वर्तमान रहने के कारण, वह इतना व्यापक, महत्वपूर्ण एवं अनिवार्य-सा भी लगता है और जब इसकी वास्तविकता का पता किसी को लग जाता है तो वह इस बात को बार-बार स्मरण करता हुआ पछताने लगता है और सोचता है कि ऐसी दशा का कारण क्या है—

हुता जो एकहि संग, हौ तुम काहे बीछुरा ?

अब जिउ उठै तरंग, मुहम्मद कहा न जाइ किछु ॥^२

अर्थात् सदा एक ही साथ रहने वालों के बीच वियोग की स्थिति कैसे आ गई ? जिससे आज अपने हृदय में भाँति-भाँति के भाव जागृत हो रहे हैं और अपनी इस विचित्र दशा का वर्णन करते नहीं बनता। वास्तव में, सूफ़ियों द्वारा इस प्रकार सोचे जाने के ही कारण, उनके हृदय में परमात्मा के प्रति विरह की बेचैनी बढ़ा करती है और वे उससे मिलने के लिए तड़पने लग जाते हैं। उनकी प्रेमगाथाओं के अंतर्गत प्रदर्शित प्रेम-भाव के उदय और उसके विकास, उसके विरह रूप की गंभीरता और उसके प्रभाव तथा इनके मूलतः ईश्वरीय होने की संभावना आदि पर विचार करते समय, हमें इस कवि के उपर्युक्त कथन की सत्यता में विश्वास

१. वही, पृ० १५९।

२. जायसी-ग्रंथावली (हिंदुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग, सन् १९५२ ई०), पृ० ६५४।

होने लगता है और हमें ऐसा लगता है कि उन सभी लोगों ने संभवतः इसी विचार से प्रेरित होकर अपनी वे रचनाएँ प्रस्तुत की होंगी ।

जायसी के परवर्ती शेख मंज़न ने भी प्रेमत्व का वर्णन करते हुए बड़े मार्मिक चित्र खींचे हैं । इस कवि के अनुसार प्रेम का सम्बंध पूर्णतः मौलिक है और यह लगभग उसी प्रकार व्यापक ठहराया जा सकता है, जिस प्रकार जगत् की सृष्टि वाले सभी पदार्थों का एक दूसरे के साथ वाला है । ये सभी एक ही कर्त्ता द्वारा सिरजे गए हैं और उसी प्रकार, प्रेम के आधार पर एक दूसरे के साथ आत्मीयता के बंधन में भी रहा करते हैं । 'मधुमालती' का नायक राजकुंवर इस बात से भली भाँति परिचित जान पड़ता है और वह इसी कारण, अपनी प्रियतमा से बातें करता हुआ उसे बतला देना चाहता है कि वे दोनों, वस्तुतः पूर्वकाल से ही प्रेम के बंधन में बँधे आ रहे हैं । वह कहता है—

कहै कुंअर नुन पेम पिआरी, मोहि तोहि पूर्व प्रीति विधि सारी ।

जा दिन सिरा आस विधि मोरा, तेहि दन मोहि दरसा दुख तोरा ।

पूर्व दिनन्हि सों जानौ, तोहरी प्रीतिक नीर ।

मोहि माटी विधि सानिकै, तो एह सरा सरीर ॥^१

वह प्रेमत्व को दुःख के साथ मिश्रित भी बतलाता है और वह इस बात का स्पष्टीकरण करते हुए इस प्रकार कहता है—

सुना जाहि दिन सृष्टि उपाई, प्रीत परेवा दीन्ह उड़ाई ।

तीनों लोक ढूँढ़ि कै आवा, आपुजोग कहूँ ठौर न पावा ।

तब फिर हम जीव पैसो आई, रह्यो लोभाइ न क्रिया उड़ाई ।

तीन भुअन तब पूछें बाता, बहुतै कस मानुस घट राता ।

कहेसि दुख मानस कर वासा, जहाँ दुख तहाँ मोर निवासा ।

एक जोति रूप पुनि एकै, एक प्राण एक देह ।

आपुहि आप जोरि कोइ चाहै, याकर कौन संदेह ।^२

१. मधुमालती, पृ० ३६ । २. वही, पृ० ३७ ।

इसी प्रकार शेख मंझन ने विरह के सम्बंध में भी कहा है और उसे भी उन्होंने नित्य जैसा ठहराया है। उनका कहना है—

कहहू पै मोहि कहा न जाइहि, विरह कथा का कहत सिराइहि ।

उतपत विरह मं सबे कहाहीं, अंत विरह चारिहु जुग मांही ।^१

शेख मंझन ने इस प्रेम के कारण उत्पन्न विवशता का भी वर्णन किया है और बतलाया है—

प्रेम वियोग न सहि सकौं, मरौं तौ मरे न जाइ ।

दुइ दूभर मो हौं परौं, दगधि न हिये बुताइ ।^२

‘चित्रावली’ के रचयिता शेख उसमान ने प्रेममार्ग की विकटता का वर्णन करते हुए जांगी द्वारा इस प्रकार कहलाया है—

कहेसि कुंअर यह पंथ दुहेला, अस जनि जानु हंसी औ खेला ।

×

×

×

जाइ सोइ जो जिउ पर तेजा, सार पांसुली लोह करेजा ।

तँ अबही घट आपन बूझा, वार देखि पिछवार न सूझा ।^३

अर्थात् अजी राजकुमार, यह प्रेम का मार्ग अत्यन्त कठिन है, यह हँसी खेल का विषय नहीं है। इस पर वही अग्रसर हो सकता है जिसकी पसलियाँ लोहे की बनी हैं और जिसका कलेजा भी लोहे के ही समान कठोर है। तुझे तो अभी तक अपने शरीर का ही ठीक पता नहीं है, तुझे केवल इसका द्वार मात्र ही दीख पड़ता है, इसका पिछवाड़ा भी नहीं सूझ पड़ता अर्थात् तू केवल इसमें प्रवेश करने मात्र की ही क्षमता रखता है, तुझे यह पता नहीं कि इससे अंत तक बच निकल सकोगे भी या नहीं। इस कवि ने इसी प्रसंग में, यहाँ पर प्रेममार्ग में पड़ने वाले बीच के चार नगरों का भी वर्णन कर दिया है और उनके परिचय के माध्यम द्वारा यह सूचित कर दिया है कि प्रेमसाधना में निरत साधकों को किन दशाओं से गुज़रना पड़ता है। उसमान का कहना है कि यह प्रेम का मार्ग उन चार नगरों से हो कर जाता है जिनमें से चारों में दुर्ग भी बने हुए है जिनके पीछे कुछ

‘बटमार’ छिपे रहा करते हैं और ऐसे यात्री को बीच में ही मार दिया करते हैं । इन चारों में से प्रथम नगर का नाम ‘भोगपुर’ जहाँ पर भोगविलास की सारी सामग्रियाँ मिल सकती हैं । इसलिए वहाँ पहुँचते ही उस यात्री को प्रायः उलझ जाना पड़ता है और वहाँ पर केवल वही सँभल पाता है जो वहाँ के सारे प्रपंचों से अवगत रह कर अपने को निभा ले जाता है । फिर इसके आगे ‘गोरखपुर’ का नगर आता है, जहाँ पर सर्वत्र योगसाधना का ही प्रभाव दीग्व पड़ता है और वहाँ से अपने को वही यात्री बचा पाता है जो वहाँ के निवासियों का विशिष्ट ‘भेष’ अपना ले । उसे फिर आगे ‘नेह नगर’ मिलता है, जहाँ पर पहुँच कर कोई राजा भी भिखारी की दशा में आ जाता है और वहाँ से वही निबुक पाता है जो अपना सर्वस्व लुटा देता है । ऐसा कर लेने पर ही वह कहीं इस योग्य हो पाता है कि वह आगे के ‘रूपनगर’ तक पहुँच सके । यह नगर अत्यन्त ऊँचा और भयानक है और इसके भीतर करोड़ों में से कोई एकाध ही प्रवेश कर पाते हैं । तू अभी तक दुखिया रहा, तू कैसे क्या कर सकेगा ।^१ उसमान कवि के ये नगर वास्तव में काल्पनिक हैं और ठीक इनके अनुसार बतलाये गए विश्राम-स्थलों का कहीं अन्यत्र पता भी नहीं चलता । परंतु यहाँ पर इतना अवश्य उल्लेखनीय है कि इस प्रकार चित्रण कर के इस कवि ने हमें प्रेममार्ग की विशेषताओं का सुन्दर परिचय करा दिया है और इस पर आगे बढ़ने वाले साधक की विभिन्न दशाओं के क्रमिक विकास की ओर भी संकेत कर दिया है ।

शेख उसमान के परवर्ती शेख नबी की रचना ‘ज्ञान दीपक’ में हमें किसी इस प्रकार के वर्णन का पता नहीं चलता है । इस कवि ने प्रेमरस की मादकता और तज्जन्य मस्ती की ओर विशेष ध्यान दिया है और उसे इस कारण ही, अधिक विषम ठहराना चाहा है । इसके विपरीत कासिम शाह कवि ने अपनी रचना ‘हंस-जवाहर’ के अंतर्गत, फिर इस प्रेममार्ग का ही वर्णन किया है और ऐसा करते समय, उसने इसकी दुर्गमता का चित्र लगभग उसी प्रकार खींचा है जैसा पहले से होता आ रहा था । यहाँ पर ‘हंस’ को ‘शब्द’ के द्वारा मार्ग का

परिचय कराया जाता है और चीन की ओर जाने वाले का दाहिनी दिशा में होना बतलाया जाता है जिससे होकर भी जाते समय, 'सात सुमेर' और 'समंद अवगाहा' मिलते हैं तथा सर्वत्र दुख ही दुःख मिला करता है। 'हंस' को आगे इसी के अनुसार, अनुभव भी होता है और वह कठिनाइयों के पड़ जाने पर अपना दैन्य प्रकाशित करता है? ^१ कासिम शाह ने अपने ढंग से यहाँ पर प्रायः उन सारी बातों का विस्तृत उल्लेख ला दिया है जिनका 'चित्रावली' के अंतर्गत समावेश किया गया है, किंतु इन्होंने इसका वर्णन उतना स्पष्ट नहीं किया है। इनका वर्णन जितना सिद्धान्त के परिचय जैसा नहीं, उतना प्रेमी 'हंस' द्वारा अनुभूत कष्टादि के विवरणों के रूप में है। अतएव, जान पड़ता है कि यह कवि यहाँ पर किसी साधना-पद्धति की ओर भी इंगित न करता हुआ केवल कथा के नायक की कठिनाइयों का ही प्रसंग ला देना चाहता है।

'इन्द्रावती' के रचयिता नूर मोहम्मद कवि ने भी अपनी इस रचना के नायक राज कुंवर को प्रेममार्ग द्वारा आगे बढ़ाते समय उसके सामने विभिन्न प्रसंगों का अवतरण किया है और उनके माध्यम से सात विघ्नों की चर्चा भी कर दी है। इस कवि के अनुसार, ये विघ्न सात विभिन्न बौहड़ वर्गों के रूप में आते हैं और ये अपनी-अपनी विशेषताएँ भी प्रदर्शित करते हैं। राजकुंवर यहाँ पर अपने आठ साथियों को ले कर 'आगमपुर' की ओर आगे बढ़ता है और ऐसा करते समय उसे क्रमशः इस प्रकार का अनुभव होता चलता है मानो उसकी कोई न कोई इन्द्रिय किसी स्थल पर विशेष रूप से आकृष्ट हो रही है। वह क्रमशः रूप, रस, गंध, आदि की उत्कृष्टता के कारण उनके भोग में लिप्त होते-होते अपने को किसी प्रकार बचा पाता है। उसे अपने मार्ग में कई ऐसे व्यक्तियों से भी भेंट हो जाती है जिनके कारण उसे कहीं पर ठहर जाने और इस प्रकार अपना बहु-मूल्य समय खो डालने की आशंका उत्पन्न हो जाती है, किंतु वह सँभल कर फिर आगे बढ़ जाता है। इस कवि ने अपनी रचना के अंतर्गत, प्रलोभनों तथा कष्टों का चित्रण बड़ी प्रचुर मात्रा में किया है। ऐसा करते समय, इसने कई ऐसे नामों

का भी प्रयोग कर दिया है जिससे वर्ण्य विषय को समझने में अच्छी सहायता मिल जाती है। नूर मोहम्मद ने 'इन्द्रावती' के अंतर्गत, एक 'जिव-कहानी' का भी प्रसंग ला दिया है जो स्वयं अपने में पूर्ण कही जा सकती है और जिसका रहस्य जान लेने पर हमें कवि के अंतिम लक्ष्य का परिचय पाने की सुविधा मिल जाती है। वास्तव में नूर मोहम्मद की यह रचना बहुत कुछ गंभीर एवं पांडित्यपूर्ण भी कही जा सकती है। इस कवि ने अपनी एक दूसरी रचना 'अनुराग-बाँसुरी' में भी विविध प्रतीकों का उपयोग किया है और जैसा इसके पहले भी कहा जा चुका है, इसने वहाँ पर भी उक्त रचना-पद्धति का ही अनुसरण किया है जिसे मुल्ला वज़ही ने अपनी 'सबरस' में अपनाया था।

नूर मोहम्मद ने जिन सात बीहड़ वनों की चर्चा प्रतीकों के रूप में की है वे उन सप्त सोपानों से सर्वथा भिन्न प्रतीत होते हैं जिनका वर्णन सूफ़ियों के ग्रंथों में साधारणतः किया गया मिलता है और जिनका उल्लेख हम उनकी साधनाओं का परिचय देते समय भी कर आए हैं। वे सप्त सोपान, क्रमशः 'अनुताप', 'आत्म-संयम', 'वैराग्य', 'दारिद्र्य', 'धैर्य', 'आस्था' और 'संतोष' के रूपों में पाये जाते हैं जिनसे स्पष्ट है कि वे किसी साधक की मनोदशा अथवा उसकी आंतरिक स्थिति को ही सूचित करते हैं। परंतु इन बीहड़ वनों के वर्णन से पता चलता है कि ये वस्तुतः बाहरी बाधाओं के रूपों में आए हैं और इनका कार्य उसके मार्ग में व्याघात पहुँचाना मात्र है। ये सात ही क्यों हो सकते हैं इसका कोई कारण नहीं बतलाया गया है, किंतु हमें ऐसा लगता है कि यह (सात की) संख्या हमारे उन सात प्रमुख साधनों की ओर भी संकेत करती है जिनका प्रयोग हम अपने दैनिक जीवन-व्यापार में किया करते हैं। इन सात विघ्न बाधाओं का प्रसंग आने पर हमारा ध्यान स्वभावतः उन सात घाटियों की ओर भी चला जाता है जिनकी चर्चा सूफ़ी कवि अत्तार ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'मन्तिकुत्तर' में की है और जिन्हें उसने उसके पक्षी यात्रियों के मार्ग में आ पड़ने वाले विघ्न निर्धारित किये हैं। उस रचना के अनुसार सभी पक्षी एकत्र हो कर अपने राजा के नेतृत्व में, रहस्यपूर्ण 'सीमुर्ग' को ढूँढ़ने निकल पड़ते हैं और उन्हें अपनी उस यात्रा में आगे बढ़ते समय सात घाटियों को पार करना पड़ता है जिनके नाम क्रमशः

प्रेम, सूक्ष्मज्ञान, अनासक्ति, एकता, विस्मय तथा निर्वाण जैसे अर्थों वाले शब्दों के दिये गए हैं और जिनके कारण, उद्दिष्ट स्थान तक पहुँचते-पहुँचते, उन यात्रियों में से केवल तीस ही रह जाते हैं। यहाँ पर यह भी उल्लेखनीय है कि ये तीस पक्षी यात्री अंत में, वस्तुतः स्वयं वह 'सीमुर्ग' (सी = तीस + मुर्ग = पक्षी) सिद्ध होते हैं जिसे वे ढूँढ़ने निकले थे। सूफ़ी कवि अत्तार ने इस काल्पनिक कहानी के द्वारा सूफ़ी साधना का ही वर्णन किया था, किंतु यहाँ पर भी हमें 'इन्द्रावती' वाले राजकुंवर की प्रेम-यात्रा के साथ कोई प्रत्यक्ष साम्य नहीं दीख पड़ता, प्रत्युत ये घाटियाँ अधिकतर उक्त सप्त सोपानों से ही मिलती हैं।

इस प्रकार सूफ़ी प्रेमगाथाओं के अंतर्गत किये गए विघ्न-बाधाओं के वर्णन या तो किसी पूर्व परंपरागत सिद्धान्त के अनसरण में तथा उसकी बातों को ध्यान में रखते हुए अथवा उसमें निहित भावनाओं के स्पष्टीकरण में केन्द्रित रहा करते हैं और उनके लिए यह आवश्यक नहीं कि वे घटनाओं की वास्तविकता की भी रक्षा करें। इस कारण, प्रायः देखा जाता है कि उनके वैसे चित्रों में अतिरंजन और अतिशयोक्ति की मात्रा बढ़ जाया करती है और वे कभी-कभी अस्वाभाविक तक भी लगने लगते हैं। इस प्रकार की अस्वाभाविकता उन काल्पनिक गाथाओं के लिए दोष-सूचक चाहे न भी सिद्ध की जा सके जिनकी रचना का लक्ष्य अधिकतर मनोरंजन ही रहा करता है, किंतु जिन ऐसी कहानियों के लिए कोई ऐतिहासिक कथानक भी चुना गया हो, उनके सम्बंध में तो कदाचित् यहाँ तक भी कह देना अनुचित नहीं कि यह सर्वथा अक्षम्य है। उदाहरण के लिए जायसी का अपनी 'पद्मावत' के नायक राजा रतनसेन द्वारा ऐसे किसी सिंहलद्वीप की विकट यात्रा कराना जिसका कोई भौगोलिक अस्तित्व ही नहीं ठहराया जा सकता था, जहाँ तक उसके जाने के पहले विभिन्न कृत्रिम विघ्नों की सृष्टि करनी पड़ती है, किसी ऐतिहासिक नायक के सम्बंध में कपोल कल्पित बातों का प्रसंग छेड़ देना ही कहा जा सकता है। राजा रतनसेन का किसी सूए के द्वारा पद्मिनी के अनुपम सौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर तुरंत मुच्छित हो पड़ना तथा उसके लिए सहस्रों साथियों के साथ 'जोगी' बनकर निकल पड़ना भी ठीक वैसी ही बातें हैं जो किसी ऐसे ऐतिहासिक नायक के विषय में नितान्त अनुपयुक्त ही ठहरायी जा सकती हैं तथा

जिनका समाधान केवल प्रचलित कथा-रूढ़ियों के ही आधार पर किया जा सकता है। जहाँ तक असूफ़ी प्रेमगाथाओं का प्रश्न है हमें वहाँ पर इस प्रकार की बातें बहुत कम दीख पड़ती हैं। बाबा घरणीदास की प्रेमगाथा 'प्रेम प्रगास' का नायक भी अपनी प्रेयसी के लिए 'जोगी' बन कर निकलता है, किंतु वह कोई ऐतिहासिक पुरुष नहीं है। इसी प्रकार, यदि 'छिताई वार्ता' के 'सौरसी' को हम 'ऐतिहासिक' पुरुष मानते हैं तो वहाँ पर हम उसे उसके 'जोगी' बन जाने पर भी, उस दशा तक पहुँच जाते हुए नहीं पाते, जहाँ तक जायसी ने राजा रतन सेन को घसीट कर ला दिया है। इसके सिवाय 'छिताई वार्ता' के प्रेमी 'सौरसी' का 'जोगी' बन जाना हमें उतना अस्वाभाविक भी नहीं प्रतीत होता है। छिताई उसकी पूर्व-परिचिता प्रेमपात्री तथा पत्नी तक भी रहा करती है जिससे वियुक्त होकर वह अधीर और उन्मत्त तक बन जा सकता है। छिताई एवं सौरसी का प्रेम-सम्बंध विशुद्ध भारतीय दाम्पत्य प्रेम के आदर्श पर संघटित है और उसे हम पूर्वानुभूत एवं स्वभावतः दृढ़ भी ठहरा सकते हैं, जहाँ पद्मावती एवं राजा रतनसेन के बीच हम किसी ऐसी बात का कोई पता तक भी नहीं पाते। इसके लिए किया गया 'पूर्व जन्म' सम्बंधी अनुमान का सूत्र, उसके समक्ष अत्यन्त क्षीण और अविश्वसनीय भी प्रतीत होता है।

(१०)

सूफ़ी तथा असूफ़ी प्रेमगाथाओं का तुलनात्मक अध्ययन करने लगने पर हमें कुछ मनोरंजक परिणाम देखने को मिलते हैं। अनेक बातें ऐसी हैं जिनके आधार पर कहा जा सकता है कि इन दोनों वर्गों की रचनाओं में कोई उल्लेखनीय अंतर नहीं है। उत्तरी भारत के सूफ़ी कवि अपने पूर्ववर्ती अथवा कादाचित् समसामयिक असूफ़ी प्रेमगाथा-रचयिताओं की ही भाँति अपने कथानकों को अधिकतर पूर्व प्रचलित प्रेमकहानियों से ही चुनते हैं अथवा कभी-कभी उनका आरंभ करते समय किसी पौराणिक इतिवृत्त वा प्रसंग का हवाला दे देते हैं। उनका प्रयास इस प्रकार, किसी प्राचीन कथा के सूत्र रूप को अधिक विकसित अथवा पल्लवित रूप देने का ही रहा करता है। मुल्ला दाऊद के 'चंदायन' की रचना के प्रथम किसी

मलिक नाथन के साथ उसके मूलकथानक विषयक बातचीत करता जान पड़ता है। शेख़ क़ुतबन अपनी 'मृगावती' की कथावस्तु का पहले से किसी न किसी रूप में वर्तमान रहना प्रकट करता है तथा इसी प्रकार शेख़ मंज़न भी 'मधु-मालती' की कथा का द्वापर युग तक से चली आई हुई ही बतलाता है। कासिम शाह का भी यही कहना है कि जो कथा मैं कहने जा रहा हूँ वह इस जग में बखानी वा कही जा चुकी है। यदि कोई सूफ़ी कवि ऐसा नहीं कहता वह तो भी कम से कम इतना बतला देता है कि उसकी कहानी यशोलिप्सा आदि के कारण लिखी जा रही है। असूफ़ी कवि दामो की 'लखमसेन पद्मावती'^१ का कथानक भी पूर्व परिचितसा ही है और उसे कीर्ति की आशा से कहा जा रहा है। ईश्वर-दास तो 'सत्यवती कथा' का आरंभ ही 'जनमेजय' तथा 'व्यास रिखिय' के द्वारा करता हुआ जान पड़ता है। दोनों प्रकार की प्रेमगाथाओं की रचना इस प्रकार किसी न किसी व्याज से ही होती है और उसकी सफलता के लिए परमेश्वर वा देवताओं की वंदना की जाती है। इस वंदना वाले अंश में सूफ़ी कवि अपना, अपने पीर वा पैगंबर आदि का तथा शाहेवक्त का न्यूनाधिक परिचय भी दे दिया करता है, जहाँ पर असूफ़ी कवियों को भी ऐसा यत्न करते हुए हम नहीं पाते। परंतु इस प्रकार की कुछ न कुछ बातें वे भी कभी-कभी कह जाते हैं। वंदना-परक पंक्तियों में सूफ़ी कवि जहाँ अपने को अधिकतर प्रशंसात्मक वाक्यों के प्रयोगों तक ही सीमित रख देना चाहते हैं, वहाँ असूफ़ी कवि अपने आराध्य देवताओं से अपनी कृति की सफलता के लिए वरदान की याचना तक करने लगते हैं। अतएव, प्रारंभिक बातों के सम्बंध में कहा जा सकता है कि उक्त दोनों प्रकार की रचनाओं में, वर्ण्य विषय की समानता के रहते हुए भी उनके रचयिताओं की मनोवृत्ति विशेष के कारण बहुत कुछ अंतर आ गया दीख पड़ता है।

इस प्रकार की कुछ उल्लेखनीय बातें हमें ऐसी रचनाओं के अंतर्गत कथा-संगठन, घटना-प्रवाहादि में भी देखने को मिलती हैं। सूफ़ी कवि अपनी प्रेमगाथा

१. सं० नर्मदेश्वर चतुर्वेदी : लखमसेन पद्मावती, परिमल प्रकाशन, प्रयाग ।

का निर्माण किसी उद्देश्य विशेष द्वारा प्रेरित होकर करने जा रहा है। वह अपने सूफ़ीमत द्वारा अनुमोदित प्रेमसाधना के स्पष्टीकरण के लिए यत्नशील है। वह उसके महत्व एवं स्वरूप दोनों को यथासंभव सफलता के साथ उपस्थित कर उसके द्वारा न केवल दूसरों को परिचित कराना, अपितु उन्हें प्रभावित भी कर देना चाहता है। इस कारण उसे प्रेमतत्व के प्रारंभिक रूप उसके क्रमिक विकास, परिणति एवं रहस्य सभी को चित्रित करना पड़ता है। वह इसके लिए अपनी कथा को आरंभ से ही एक ऐसा रूप देकर आगे बढ़ाना चाहता है जिसमें ये सभी बातें भली भाँति खप जा सकें तथा उसके प्रवाह में वह ऐसे विशिष्ट मोड़ भी लाती चलेँ जिससे अपने उद्देश्य की सिद्धि में उसे पूरी सहायता मिल सकें। प्रायः सभी सूफ़ी प्रेमगाथाओं का आरंभ पूर्वरग से होता है उसे वियोगजन्य उत्कट भावों के सहारे पुष्ट एवं परिवर्द्धित किया जाता है तथा दृढ़व्रत प्रेमियों के अनवरत यत्नों द्वारा उसे प्रतिफलित भी करा देने की योजना रखी जाती है। परंतु; अंत में जब नायक एवं नायिका मिलकर विवाह के बंधन में बँध गए दीखते हैं तो कथा को दुखान्त भी कर दिया जाता है। इसके विपरीत असूफ़ी कवि का उद्देश्य ऐसी किसी साधना विशेष के ऊपर केन्द्रित न होकर अपेक्षाकृत अधिक व्यापक रहा करता है। वह पूर्वान्तराग तथा उसके अपूर्व प्रभाव, प्रेमभाव के क्रमिक विकास और उसके दृढ़ीकरण अथवा उसके विरह पक्ष एवं अंतिम परिणति आदि विभिन्न पक्षों के ऊपर पृथक्-पृथक् विशय ध्यान देना अनिवार्य नहीं मानता। वह उनका वर्णन, केवल प्रासंगिक रूपों में ही पूरा करके आगे बढ़ता जाता है और वैवाहिक बंधन द्वारा प्रेमी एवं प्रेमिकाओं के एक दूसरे के साथ बँध जाने पर वह उनके उस सम्बंध की मर्यादा को भी महत्व देने लग जाता है जो सूफ़ी कवि के क्षेत्र का विषय नहीं है। प्रेमकहानी को दुखान्त में परिणत कर देने के कारण इस कवि का मार्ग आगे के लिए अवरुद्ध सा हो जाया करता है और इसके लिए ऐसा अवसर बहुत कम उपलब्ध हो पाता है, जब यह उस ओर अपना ध्यान तक भी ले जा सके। इसका कर्त्तव्य दोनों को एक दूसरे के समक्ष ला देना और या तो उन्हें विवाह द्वारा पति-पत्नी के रूपों तक प्रदर्शित भी कर देना अथवा अंत में, मृत्यु द्वारा सदा के लिए एक दूसरे को वियुक्त कर

देना मात्र ही रहा करता है जिससे इसका अपना ऊपर कथित उद्देश्य भी पूरा हो जाता जान पड़ता है। परंतु असूफ़ी कवि को इतने से ही संतोष नहीं हो पाता और उसे प्रेमबंधन के महत्व को भी उदाहृत करना आवश्यक प्रतीत होता है जो न केवल पति एवं पत्नी इन दोनों के जीवित बने रहने की दशा में, अपितु उसके अनुसार वैधव्य की स्थिति आ जाने पर भी एक समान अक्षुण्ण बना रह सकता है तथा जिसे इस स्थायित्व के ही कारण, 'सत' की संज्ञा तक भी दी जाती है।

इस उपर्युक्त मतभेद का एक बहुत बड़ा परिणाम दोनों वर्गों के कवियों द्वारा प्रस्तुत किये गए कथानक-संघटन में भी दीख पड़ता है। सूफ़ी कवि की प्रेमगाथाओं में प्रेम का अंकुर अधिकतर उनके नायकों के ही हृदय में फूटता है और वह इसी प्रकार उस स्थल में ही जैसे ढंग से पल्लवित एवं पुष्पित भी होता चला जाता है जो सूफ़ीमत के अनुकूल है। नायिका के हृदय में उदय लेकर भी वहाँ वह प्रायः उस आदर्श तक नहीं पहुँच पाता जो सूफ़ियों के अनुसार इश्क़ हक़ीकी वा दैवी प्रेम कहा जा सकता है। प्रेमिका यहाँ पर वस्तुतः 'प्रेमपात्री' ही कही जा सकती है जिसके प्रेम का रूप बहुत कुछ प्रतिक्रिया जन्य हुआ करता है तथा जो कभी स्वतः प्रसूत कहे जाने पर भी अपनी परिस्थितियों के कारण, उस कोटि तक नहीं पहुँच पाता जो उसके लिए यत्नशील नायक में दीख पड़ता है। परंतु असूफ़ी कवियों के प्रेमाख्यानों में प्रेम का आदर्श रूप उनकी नायिकाओं के हृदय क्षेत्र में निर्मित किया जाता है। इस कारण, यद्यपि इसका प्रभाव नायकों के हृदयों पर भी कम लक्षित नहीं होता, वह यहाँ पर वह आदर्श रूप नहीं ग्रहण कर पाता जिसको प्रदर्शित करना इन कवियों का अभीष्ट रहा करता है जिसके लिए नारी हृदय का क्षेत्र ही अधिक अनुकूल भी प्रतीत होता है। असूफ़ी कवि दाम्पत्य जीवन के परिवेश में काम करना चाहता है जिसके बने रहते उसे स्वभावतः उस पत्नी की ओर ही विशेष ध्यान देना पड़ जाता है जो अपने पति को अपने 'जीवन-धन' अथवा 'सर्वस्व' तक के रूप में देखा करती है और जिसके लिए उससे इसी कारण, क्षणमात्र के लिए भी वियुक्त होकर जीना अत्यन्त कठिन हुआ करता है। ऐसे कवि उसे अपने पातिव्रत धर्म

का आदर्श प्रस्तुत करने का अवसर प्रदान करते हैं और उसके सामने विभिन्न प्रलोभनों का जाल बिछा कर उनसे बचने तथा इस प्रकार अपनी परीक्षा में खरा उतरने के मार्मिक चित्र भी खींचा करते हैं। वास्तव में प्रेमसाधना का उपक्रम यहाँ तक समाप्त हो गया रहता है और उस प्रेम-परीक्षा की अवस्था भी बीत चुकी रहती है जो कभी-कभी प्रेमभाव के क्रमिक विकास में हो जाया करती है तथा जिसके उदाहरण हमें प्रायः सूफ़ी प्रेमगाथाओं वाले प्रेमी नायकों के यात्रा-विवरणों में मिल जाते हैं। यहाँ पर हमें वह 'सत' वा मर्यादा पालन की परीक्षा देखने को मिलती है जिसे अपनी प्रेमकहानी में स्थान देना किसी प्रेमसाधक सूफ़ी के लिए कभी आवश्यक नहीं हुआ करता, न जो कभी उसकी रचना का लक्ष्य ही हुआ करता है। इसे तो केवल अपनी आदर्श प्रेमसाधना को उदाहृत एवं विवृत करना रहता है जो नायक एवं नायिका की मिलन-दशा तक पूरा हो जाता है। इसके लिए किसी दाम्पत्य प्रेम के आदर्श का चित्रण करना भी अनिवार्य नहीं जिसे असूफ़ी कवि प्रायः अपना कर्त्तव्य तक समझ लेता है। फलतः सूफ़ी कवि जहाँ किसी पुरुष की ओर से किसी प्रेमपात्री के लिए एक साधक जैसा यत्न कराया करता है, वहाँ असूफ़ी किसी पत्नी की ओर से उसके पति के लिए वियोगार्त्त दशा का व्यवहार कराता है जिसका सम्बंध किसी आध्यात्मिक लक्ष्य से भी नहीं रहा करता।

इन दोनों वर्गों के कवियों की मनोवृत्ति का अंतर एक अन्य दिशा में भी लक्षित होता है। एक सूफ़ी कवि के लिए यह आवश्यक नहीं होता कि वह किसी प्रेमी नायक को अपनी चेष्टाओं में सदा सफल ही बना दिया करे। उसे तो केवल अपनी आदर्श प्रेमसाधना का स्वरूप एवं गुरुत्व निर्दिष्ट करना रहता है जो उसे उसकी चरम परिणति तक पहुँचा देने मात्र से भी सिद्ध हो जा सकता है तथा जो मिलन दशा के स्थायी न बन सकने पर भी कभी निष्फल होता नहीं जान पड़ता। एक सूफ़ी का उद्देश्य साधारणतः अपने इष्ट परमेश्वर के साथ एकत्व की दशा में आ जाने तथा उसका स्वरूप ग्रहण करने अथवा उसके प्रति पूर्ण तादात्म्य के भाव का अनुभव करने का नहीं हुआ करता। वह अपनी उपर्युक्त साधना की परिणति के फलस्वरूप अपनी 'उबूदियत' वा मानवीय गुणों का परि-

त्याग कर फल की दशा तक पहुँच जाता है। फिर 'इलाहियत' वा ईश्वरीय गुणों को अपनाते वाली 'वक्रा' की स्थिति तक भी अपनाता है जिसमें उसे अपने समस्त कार्यों को परमेश्वर द्वारा अनुमोदित मान लेने की प्रवृत्ति का बोध होने लगता है। इसके द्वारा वस्तुतः उसकी 'अहंता' का नाश हो जाता है और वह अपने को परमेश्वर में लीन तक कर देने की स्थिति में आ जाता है। परंतु ऐसी किसी भी दशा में, वह अपने को कभी स्वयं उस इष्ट की स्थिति की पूर्ण दशा तक प्राप्त हुआ नहीं अनुभव करता। उसे उसका समकक्ष बन कर शाश्वत रूप अपना लेने का कदाचित्, कभी साहस नहीं होता, न इसी कारण वह कभी उसके साथ पूर्ण अभेद भाव की दशा में आ ही पाता है अथवा दाम्पत्य भाव के उस चरम आदर्श तक ही पहुँच पाता है, जहाँ पति एवं पत्नी एक ही वस्तु के दो पहलू मात्र से लगा करते हैं। इस दशा के अनुसार जिस प्रकार शिव के बिना शक्ति का अस्तित्व नहीं उसी प्रकार बिना शक्ति शिव की भी संभावना नहीं की जा सकती। दोनों तत्त्वतः एक और अभिन्न हैं और उनके पार्थक्य की कभी कोई कल्पना तक भी नहीं की जा सकती। फलतः इस दृष्टि के अनुसार संयोग के महत्व को कभी उपेक्षित नहीं किया जा सकता, न वियोग को सभी कृच्छ्र समझते हुए उसे प्रेमतत्व का सार तक ठहरा दिया जा सकता है, जैसा सूफ़ी कवियों ने अपनी प्रेमगाथाओं द्वारा सिद्ध करने की चेष्टा की है। असूफ़ी कवि भी विरह की दशा का वर्णन करता है तथा अधिकतर उसके ही सहारे वह किसी प्रेमी वा प्रेमिका के प्रेमगांभीर्य का पता भी दिया करता है। परंतु वह इसे सूफ़ी कवियों की भाँति, कभी प्रेमतत्व का सर्वस्व तक मान लेता हुआ नहीं देख पड़ता, न वह इसके सामने संयोग का वर्णन करना अनावश्यक ही समझता है। मिलन वा संयोगावस्था को वह केवल एक आदर्श मात्र के रूप में ही निर्दिष्ट कर उसे जहाँ का तहाँ छोड़ देना नहीं चाहता, प्रत्युत वह कभी-कभी उसका जमकर भी वर्णन करने लग जाता है। इस प्रकार उसका एक स्थूल चित्र तक उपस्थित कर दिया करता है जैसा सूफ़ी कवि नहीं कर पाते। सूफ़ी कवि का जी अधिकतर विरह के विस्तृत वर्णन में ही रमा करता है और वह इसकी तीव्रता को प्रायः उसकी पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया करता है। वास्तव में, ये दोनों वर्गों के कवि

यहाँ पर उन अपने-अपने पूर्ववर्ती कवियों का भी अनुसरण करते हैं जिन्होंने क्रमशः संस्कृत एवं फ़ारसी में रचना की है। असूफ़ी हिन्दी कवि के लिए संस्कृत कवियों का आदर्श उपस्थित रहता है जिसमें संयोग का वर्णन करते समय पूरे कामशास्त्रीय विवरण तक दिया जा सकता है, जहाँ वैसे सूफ़ी कवियों के लिए उन फ़ारसी कवियों का ही आदर्श रहा करता है जो उस दशा तक पहुँच कर बहुधा मौन धारण कर लिया करते हैं, किंतु जहाँ विरह का चित्र खींचना होता है, वहाँ कुछ भी उठा रखना नहीं चाहते।

उपर्युक्त विशेषताओं के कारण हम इन दोनों वर्गों के कवियों का चरित्र-चित्रण वा शीलनिरूपण के विषय में भी दो भिन्न-भिन्न मार्ग ग्रहण करते हुए देखते हैं। सूफ़ी कवियों का जहाँ इसके लिए नायक की ओर अधिक ध्यान देते हुए पाते हैं, वहाँ असूफ़ी कवियों को नायिकाओं में ही प्रेम एवं विरहादि के आदर्श रूप को प्रदर्शित कर उनका सजीव वर्णन करते हुए देखते हैं। इसके सिवाय हमें सूफ़ी कवियों की रचनाओं में कदाचित् उस वैविध्य का भी पता नहीं चलता जिसके उदाहरण, असूफ़ी कवियों के यहाँ नायकों के विभिन्न रूपों के अनुसार मिला करते हैं और जो वास्तव में उनकी प्रेमगाथाओं की विभिन्न रचना-शैलियों को भी सूचित करते हैं। सूफ़ी कवि का प्रेमी नायक प्रायः एक ही वर्ग का पुरुष हुआ करता है और वह लगभग एक ही प्रकार का प्रेम-व्यापार भी प्रदर्शित करता हुआ अपने लक्ष्य तक पहुँचता जान पड़ता है तथा उसे अधिकतर एक ही जैसी सिद्धि की उपलब्धियाँ भी हुआ करती हैं। परंतु असूफ़ी कवि के नायक के लिए ठीक ऐसा ही करना सदा आवश्यक नहीं हुआ करता। यदि वह किसी भक्त वा साधक का उदाहरण उपस्थित करना चाहता है तो वह भले ही उसका जैसा आचरण करले, किंतु जहाँ पर उसे दाम्पत्य प्रेम के केवल एक माध्यम के ही रूप में आना पड़ता है, वहाँ पर उसके जीवन में उन विशेषताओं का कोई महत्व नहीं रह जाता जो सूफ़ी कवियों वाले नायकों में उनके प्रधानतः उद्योगशील होने के कारण आ जाती है। दाम्पत्य परक प्रेम सम्बंधी गाथाओं के अंतर्गत नायक से अधिक नायिका ही कार्यशील बन जाती दीख पड़ती है। यदि ऐसी रचनाओं का लक्ष्य कहीं 'सत' की परीक्षा भी रहा करता है तो वहाँ पर उसके नायक

को उस पद तक पर प्रतिष्ठित कर दिया जाता है जो सूफ़ी कवियों वाली नायिकाओं का रहा करता है। वह इसी कारण, स्वभावतः किसी नायिका के लिए उसका इष्ट तक भी बन जाता है। ऐसी रचनाओं में कभी-कभी यहाँ तक भी देखा जाता है कि दाम्पत्य भाव वाली नायिका एक ओर अपने यहाँ विरह में झूरती और बेचैन होती दीख पड़ती है। दूसरी ओर उसका पति किसी अन्य सुन्दरी के प्रति आसक्त होकर उसे भूल तक भी जाया करता है। ऐसे नायकों का चरित्र-चित्रण सूफ़ी कवियों ने भी किया है और उनका 'पद्मावत' के रतनसेन तथा 'चंदायन' के लोरक जैसा, क्रमशः नागमती एवं मैना जैसी अपनी पत्नियों के यहाँ अंत में, लौट आना भी प्रदर्शित किया है। परंतु उनका प्रधान उद्देश्य केवल इतना ही रहा है कि उक्त दोनों रचनाओं की क्रमशः पद्मावती एवं चंदा जैसी नायिकाओं की प्राप्ति के लिए प्रेमी नायकों द्वारा यत्न कराया जाय तथा उनकी सफलता को ही उसकी सिद्धि मान ली जाय।

नायिकाओं का अवतरण दो प्रकार से किया गया मिलता है जिनमें से एक के अनुसार वैसे प्रेमी नायक की प्रथम पत्नी उसके लिए अधिक महत्व की नहीं पायी जाती और दूसरी को ही प्रधान नायिका का पद प्रदान किया जाता है, जहाँ दूसरे के प्रसंग में उसकी प्रथम प्रेमपात्री ही अंत तक उस स्थान के लिए उपयुक्त सिद्ध होती है और दूसरी वा तीसरी आदि भी उसके समक्ष गौण बन जाती है, किंतु ऐसी दशा में उपर्युक्त सत-परीक्षा का अवसर प्रायः नहीं मिला करता। उक्त 'पद्मावत' एवं 'चंदायन' की प्रेमगाथाओं में इनमें से पहले प्रकार की ही नायिकाओं का चित्रण किया गया है, जहाँ दूसरे प्रकार के उदाहरणों में 'मृगावती' की मृगावती एवं रुकमिनी तथा 'चित्रावली' की चित्रावली एवं कँवलावती के नाम लिये जा सकते हैं। इस सम्बंध में यहाँ पर यह भी उल्लेखनीय है कि उक्त दूसरे प्रसंग की गौण नायिका कँवलावती द्वारा अपने पति सुजान के विरह में झूरने तथा उसके प्रति किसी हंसमिश्र नामक दूत के हाथ अपना संदेश भेजने का भी उपक्रम कराया गया है। वास्तव में, यहाँ पर यह नायिका, सुजान के लिए दूसरी प्रेमपात्री होने पर भी, चित्रावली से पहले ही उसकी पत्नी भी बन जाती है। इस प्रकार उसे उस पद की भी प्राप्ति हो गई समझी

जा सकती है जो उपर्युक्त नागमती एवं मैना जैसी पत्नियों का ही है ।

असूफ़ी कवि दुखहरन की 'पुहुपावती' के अंतर्गत तो हमें यहाँ तक दीख पड़ता है कि उसके नायक राजकुमार की तीन प्रेमपात्रियाँ सामने आती हैं । यद्यपि उनमें से सर्वप्रधान पुहुपावती ही कही जा सकती है तथा इसके साथ उस नायक का 'अधर संयोग' भी हो गया रहता है, वह इससे वियुक्त हो भी जाता है । तदनन्तर उसका विवाह रूपावती से कर दिया जाता है और पुहुपावती उसके विरह में बेचैन होकर अपना संदेश किसी मालिन द्वारा भेजती है जिस पर वह वैरागी बनकर निकल पड़ता है और उसका विवाह इस मार्ग में ही किसी 'रंगीली' से भी करा दिया जाता है । 'रंगीली' उसका साथ, उसके द्वारा पुहुपावती की खोज करते समय भी, जोगिन बन कर देती है और जब वह अपनी प्रथम प्रेयसी को पुनः प्राप्त कर लेता है तो रूपावती भी उसे अपना विरह-संदेश किसी उपकारी मैना द्वारा भेजती हुई दीख पड़ती है और अंत में, वह तीनों को साथ लेकर अपने घर वापस आता है । यहाँ पर रूपावती एवं रंगीली दो गौण नायिकाओं के रूप में आती हैं और इनके साथ राजकुमार नायक का विवाह भी हो जाता है, जहाँ प्रधान नायिका पुहुपावती के साथ उसका केवल 'अधर संयोग' तक ही हुआ करता है । इसके साथ उसका विधिवत् विवाह पीछे एक स्वयंवर के आयोजन द्वारा कराया जाता है जिससे यह क्रमानुसार उसकी तीसरी पत्नी भी ठहरती है । इस प्रेमकहानी की एक यह विशेषता भी है कि यहाँ पर प्रधान नायिका पुहुपावती तथा एक गौण नायिका रूपावती जहाँ अपने प्रियतम को केवल संदेश भेज कर ही रह जाती है, वहाँ इसकी रंगीली नाम की दूसरी गौण नायिका उसका साथ स्वयं जोगिन बन कर देती है । यह उसे उसकी वैसी प्रेमपात्री की खोज में भी सहायता पहुँचाना चाहती है जो वस्तुतः इसकी सौत भी कही जा सकती है । इस रंगीली नामक नायिका की एक यह भी विशेषता है कि यह मूलतः किसी बेगमपुर के राजा बेगमराय की पुत्री रहा करती है । किंतु इसे कोई दानव उठा ले जाता है और इसके अनुरूप किसी वर को ढूँढते समय वह इसका विवाह पुहुपावती के लिए निकले राजकुमार से ही कर देता है । इसके सिवाय जब यह रंगीली राजकुमार के साथ जोगिन के वेश में जाते

समय उससे वियुक्त हो जाती है तो यह उसके लिए किसी तीर्थ में बैठकर ध्यान की साधना भी करने लग जाती है और यह उसी दशा में उपर्युक्त 'उपकारी' मैना को मिलती है ।

इस प्रकार यदि इन तीनों नायिकाओं के सम्बंध में एक साथ विचार किया जाय तो इनमें से प्रथम अथवा प्रधान नायिका पुहुपावती को जहाँ हम सूफ़ी कवियों की उल्लिखित चंदा, मृगावती, पद्मावती एवं चित्रावली का स्थान दे सकते हैं, वहाँ पर क्रमशः उनकी मैना, रुकमिनी, नागमती एवं कँवलावती के स्थान पर यहाँ की रूपावती एवं रंगीली को रख सकते हैं । किंतु 'पुहुपावती' प्रेमगाथा के असूफ़ी कवि ने उसकी प्रधान नायिका के साथ उसके नायक का 'अधर संयोग' कराकर उन दोनों के गांधर्व विवाह का भी उपक्रम करा देता है जिसका कारण, यद्यपि वह प्रकट रूप में उसके द्वारा स्वयंवर के अनन्तर वरण किया जाता है, यह वस्तुतः उसकी प्रथम पत्नी भी रहा करती है । अतएव इस रचना के अंतर्गत उन तीनों ही नायिकाओं का नायक राजकुमार के साथ दाम्पत्य प्रेम ही चित्रित किया गया कहला सकता है । राजकुमार का प्रेम पुहुपावती के प्रति प्रत्यक्षतः बहुत उत्कट है, किंतु उसके प्रति प्रदर्शित प्रेम की दृष्टि से ये तीनों एक समान कही जा सकती हैं । इन तीनों नायिकाओं के विषय में तुलनात्मक अध्ययन करने पर कतिपय अन्य महत्व पूर्ण बातों का भी पता चलता है जिनका यहाँ उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा तथा जिनकी कुछ अधिक चर्चा मैने अन्यत्र भी की है ।^१ यहाँ पर सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि यद्यपि राजकुंवर नायक के लिए उस की पुहुपावती पत्नी ही सर्वाधिक प्रिय है, किंतु वह इसे एक साधु के माँगने पर समर्पित कर देता है जो कदाचित् उसके प्रेम से भी कहीं अधिक त्याग के प्रति निष्ठावान होने के कारण है । यही बात संभवतः इस प्रेमाख्यान के रचयिता का मत भी सिद्ध कर देती है तथा उसके सूफ़ी कवियों से नितान्त भिन्न आदर्श को भी प्रमाणित करती है । एक सूफ़ी

१. भारतीय प्रेमाख्यान की परंपरा (राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९५६ ई०) पृ० १२३-४ ।

कवि के लिए यह कभी भी संभव नहीं कि वह अपने नायक की इष्ट स्वरूपिणी प्रेयसी पत्नी से उस क्षणमात्र के लिए भी वियुक्त करने की कल्पना करे। उसे किसी अन्य को दिला देने का तो वह कदाचित् कभी स्वप्न तक भी नहीं देख सकता। इसके लिए वह सदा परम सौन्दर्य वा ईश्वरीय ज्योति (नूरे इलाही) का प्रतीक रहा करती है जिस कारण उसे यह परमेश्वर का साक्षात् रूप समझा करता है। उसके रूप का वर्णन करते-करते आत्मविभोर बनकर बहुधा परमात्मा के अलौकिक गुणों की चर्चा तक करने लग जाता है तथा जब वह अपने प्रेमी नायक को प्राप्त होती जान पड़ती है तो इसे वह एक सूफ़ी साधक की परम सिद्धि तक का महत्व दे देता है। उसकी इस विशेषता के ही कारण हम कभी-कभी इसके द्वारा उसका स्वाभाविक चित्रण होता भी नहीं देखा करते। वह सूफ़ियों के यहाँ अपने प्रेम की उतनी प्रखरता नहीं दिखलाती जितना असूफ़ियों के यहाँ करती दीख पड़ती है तथा फ़ारसी के वैसे कवियों की रचनाओं में तो वह कभी-कभी अपने प्रेमी के प्रति अनासक्त भाव तक प्रदर्शित कर देती प्रतीत होती है। इतना अवश्य है कि वह अपने प्रेमपात्र को पाने के लिए दोनों प्रकार की रचनाओं में प्रायः एक समान ही कोई विकट यत्न करती नहीं देखी जाती और इसके सभी उदाहरण हमें अधिकतर नायकों की संकट पूर्ण चेष्टाओं में ही मिला करते हैं। परंतु यह बात कदाचित् इस कारण भी संभव है कि स्त्रियों में स्वभावतः उतनी गतिशीलता नहीं देखी जाती, जहाँ पुरुष अपनी कार्यसिद्धि के लिए विघ्नों से लड़ते हुए भी पाये जाते हैं।

सूफ़ी कवियों ने नायकों एवं नायिकाओं के अतिरिक्त अन्य अनेक पात्रों का भी चित्रण बहुधा अपने ढंग से ही किया है। उन्होंने प्रतिनायकों की सृष्टि करने की बहुत कम चेष्टा की है, प्रत्युत उनसे अधिक खलपात्रों की ही ओर ध्यान दिया है। ये खलपात्र कभी राक्षसों जैसे पौराणिक प्राणियों के रूप में अथवा कभी राघव चेतन जैसे दुष्टशील व्यक्तियों के वेश में हमारे सामने आते हैं। प्रेमी नायकों के मार्ग में बाधा पहुँचाने अथवा उनका शान्ति भंग करने की चेष्टा करते हैं और इसके कारण, हमें कुछ समय के लिए उनके कुशल-क्षेम के सम्बंध में सशंकित भी कर दिया करते हैं। इनके साथ हमारी सहानुभूति कभी नहीं हो पाती।

फिर भी इनकी अवतारणा का अपना एक पृथक् महत्व रहा करता है जो प्रेम-काथाओं के अंतर्गत समस्याओं की सृष्टिकर उनके निराकरण द्वारा हमारे हृदयों में एक विचित्र प्रकार के विजयोल्लास को प्रोत्साहन देने में भी देखा जा सकता है । इसी प्रकार संदेशवाहकों तथा मार्गदर्शकों की सृष्टि द्वारा इन कवियों ने प्रेमकहानी की घटनाओं में प्रगति एवं प्रवाह लाने का काम लिया है । प्रेमगाथाओं के ऐसे विविध पात्रों की अधिक संख्या हमें कभी-कभी उद्विग्न कर देती है और हमारा जी उस समय ऊबने तक लग जाता है, जब हम देखते हैं कि प्रेमी नायकों के मार्ग में अनेक अजगर, पक्षी, हाथी वा प्राकृतिक बाधाओं तक का सृजन केवल उन्हें सकटापन्न करने के लिए ही किया जा रहा है और उनकी हमें यों कोई प्रत्यक्ष आवश्यकता नहीं जान पड़ती । इनके एक ही समान अन्य अनेक प्रेमकहानियों में भी पाये जाने के कारण, हममें इन्हें बराबर अस्वाभाविक मान लेने की प्रवृत्ति भी हो जाया करती है जो रचना-कौशल की गुण-दोष परीक्षा की दृष्टि में कभी अनुचित भी नहीं कहा जा सकता । परंतु जब हमें इस बात का भी स्मरण हो आता है कि ऐसा केवल कथारूढ़ियों के विचार से ही किया गया होगा और इनका वैसा वास्तविक महत्व नहीं तो हमें इसका कुछ न कुछ समाधान मिल जाता है और हम इसे केवल एक पूर्वप्रचलित परंपरा का परिणाम ही मान कर सन्तोष कर लिया करते हैं ।

(११)

उत्तरी भारत की हिंदी वाली सूफ़ी प्रेमगाथाओं की कतिपय अपनी विशेषताएँ हैं जिनकी ओर संकेत करने का कुछ न कुछ प्रयास किया गया है । ये विशेषताएँ न केवल उनके अंतर्गत प्रतिपाद्य प्रेम के स्वरूप तथा उनकी प्रेमकहानी के संघटन, घटनाप्रवाह एवं परिणति में ही पायी जाती हैं, अपितु ये उनके बाह्य रूप एवं रचना-शैली के सम्बन्ध में भी दीख पड़ती हैं और इनका एक अपना महत्व भी हो सकता है । हिंदी साहित्य के इतिहासकारों की अभी तक धारणा रही है कि उनके रचयिताओं ने फ़ारसी की किसी 'मसनवी पद्धति' का अनुकरण मात्र किया है जिसका उद्देश्य प्रेमकथाओं का वर्णन करना ही रहा करता है और

यह संभवतः आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के किसी कथन के आधार पर बन गई थी । मसनवी की रचना-शैली वास्तव में, फ़ारसी साहित्य की एक अपनी विशेषता है, किंतु इसमें भी सन्देह नहीं कि वह कोई एक ऐसी अपूर्व एवं अनूपम कथन-प्रणाली का उदाहरण नहीं उपस्थित करती जिसके समान कोई अन्य वैसी पद्धति कहीं उपलब्ध नहीं थी । कथा-साहित्य का प्रणयन यहाँ भारतवर्ष में बहुत प्राचीन काल से ही होता आया था । वह या तो संस्कृत वाले अनुष्टुप छंदों के माध्यम से किया जाता था अथवा उसके लिए पालि वा प्राकृत की गाथाओं वा अपभ्रंश के दूहों से काम लिया जाता था इसके सिवाय कभी-कभी, बीच-बीच में, पद्य के साथ गद्य का भी प्रयोग कर दिया जाता था जिसके कारण कथन-शैली में रोचकता आ जाया करती थी अथवा उक्त पद्यों की सरल व्याख्या भी उपस्थित हो जाती थी तथा इसके साथ ही कथाप्रवाह को अधिक गति भी मिल जाती थी । एक ही प्रकार के पद्यों को व्यवहार में न लाकर उन्हें बदलते जाना अथवा पद्य एवं गद्य के सम्मिश्रण द्वारा वर्णन की प्रक्रिया में किसी प्रकार की मन्दता का न आने देना, उक्त रचना-शैली के लिए कदाचित् रुढ़िगत बन चुका था । वैदिक संहिताओं, ब्राह्मणग्रंथों, उपनिषदों, जातक कथाओं तथा इधर की प्राकृत एवं अपभ्रंश की कथात्मक रचनाओं में भी हमें इसके न्यूनाधिक उदाहरण मिल सकते हैं । वैदिक, बौद्ध एवं जैन साहित्यों की धार्मिक एवं लौकिक कथाओं का रूप अधिकतर इसी प्रकार का दीख पड़ता है । इस रचना-शैली का ही कोई न कोई रूप, किसी प्रबंधात्मक रचना के लिए कदाचित् सब कहीं अत्यन्त आवश्यक समझा जाता आया है ।

फ़ारसी की मसनवी नामक रचनाओं को यहाँ की प्रबंधात्मक रचनाओं से अधिक भिन्न नहीं ठहराया जा सकता । ये वह 'मुसलसल नज़्म' अथवा क्रमानुसार व्यवस्थित पद्यों वाली रचनाएँ होती हैं जिनके प्रत्येक नज़्म वा पद्य का अपने आगे आने वाले तथा पीछे छोड़ दिये जाने वाले ऐसे अन्य अंग के साथ कुछ न कुछ लगाव रहा करता है और जो इनके सामूहिक बल के ही आधार पर सदा पूर्ण भी होती समझी जा सकती है । इनकी लंबाई किसी भी दूरी तक जा सकती है और इनके विषय भी जो चाहे हो सकते हैं । इनके पद्यों की दो

अर्द्धालियों को परस्पर तुकान्त होना चाहिए । किंतु फिर भी इसके लिए यह आवश्यक नहीं कि साधारण गज़लों की भाँति उनके सारे तुक पूरे काव्य में एक समान पाये जायँ । फ़ारसी छंदों के विशेषज्ञों ने इस रचना-शैली के लिए पाँच विशिष्ट 'बह्रों' अथवा छंदों को अधिक उपयुक्त माना है । उनमें से प्रत्येक के लिए यह भी बतला दिया है कि वह किस विषय विशेष का वर्णन करते समय सदा प्रयोग में आया करता है । परंतु स्वयं फ़ारसी में ही रचित अनेक प्रेम-गाथाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि इस नियम का पालन सर्वत्र पूरी सावधानी के साथ किया गया नहीं पाया जाता । जहाँ तक पता चलता है स्वयं फ़िरदौसी, सादी आदि महान् कवियों की मसनवी रचनाओं तक में हमें इसके अनेक अपवाद मिल सकते हैं । यहाँ पर उल्लेखनीय केवल इतना ही है कि बाह्य रूप की दृष्टि से बहुत कुछ साम्य होने पर भी सभी मसनवियों के विषय का केवल प्रेमकहानी ही होना अनिवार्य नहीं, न यही आवश्यक है कि इनके सभी उदाहरण अधिक लंबे रूपों में ही प्रस्तुत किये गए मिलें । मौलाना रूम की प्रसिद्ध मसनवियों तक का आकार-प्रकार केवल एक ही ढंग का नहीं पाया जाता । मसनवियों की सबसे बड़ी विशेषता हमें इस बात में ही दीख पड़ती है कि ये अपने पद्यों के एक दूसरे के साथ किसी न किसी रूप में सम्बद्ध रहने के कारण, अपने वर्ण्य विषय का निर्वाह किसी क्रमिक एवं सुव्यवस्थित रूप में कर ले जाती हैं । इस प्रकार की प्रबंधात्मकता के आ जाने से इनके रूप में एक विशिष्टता भी आ जाती है जो मुक्तकों जैसी छोटी रचनाओं के विषय में कभी स्वभावतः संभव नहीं कही जा सकती ।

फ़ारसी मसनवियों और विशेषकर उनके प्रेमकथात्मक रूपों में हमें कतिपय अन्य बातें भी दीख पड़ती हैं जिनका समावेश, किसी नियम विशेष के अनुसार किया गया जान पड़ता है तथा जिन्हें हिंदी सूफ़ी प्रेमगाथाओं के कवियों ने भी अपना आवश्यक माना है । इनमें से भी परमेश्वर की वंदना, रसूल के प्रति श्रद्धा-प्रदर्शन, समसामयिक शासक की प्रशंसा, आत्मपरिचय, रचना-काल निर्देश आदि कुछ बातें प्रायः प्रत्येक रचना के अंतर्गत और अधिकतर एक निश्चित क्रम से आती दीख पड़ती हैं और ये भारतीय प्रबंधकाव्यों के उन मंगलाचरणों का स्मरण दिलाती हैं जिनका निर्माण कदाचित्, केवल विघ्न-निवारण तथा कार्य-

सिद्धि के उद्देश्य से आरंभ में ही कर दिया जाता था। भारतीय साहित्य के अंतर्गत हमें इसके अनेकानेक उदाहरण मिलते हैं और इनके साथ प्रायः नम्रता-सूचक पद्यों का भी समावेश कर दिया गया मिलता है। किंतु यहाँ पर ऐसी किसी बात का भी कथन किया गया नहीं पाया जाता जिससे कवि का कोई स्पष्ट परिचय भी उपलब्ध हो सके। पिछले खेव के संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश के कवियों ने कभी-कभी अपने संरक्षकों की ओर भी अवश्य संकेत कर दिया है, किंतु उसके आधार पर हम न तो किसी ऐसे नियम विशेष का अनुमान कर सकते हैं, न कोई महत्वपूर्ण परिणाम ही निकाल सकते हैं। इसके सिवाय, कम से कम संस्कृत एवं प्राकृत की अधिकांश रचनाओं में हमें पद्यों वाले तुकों के एक होने के भी उदाहरण नहीं मिलते, जैसा फ़ारसी की मसनवियों तथा भारतीय सूफ़ियों की प्रेमगाथाओं में पाया जाता है। फिर भी, जैसा इसके पहले भी कहा जा चुका है, यहाँ के प्रबंधकाव्यों में हमें वे प्रायः सारी अन्य बातें ठीक उसी रूप में दीख पड़ती हैं जिसमें वे मसनवियों के अंतर्गत पायी जाती हैं और जिनके आधार पर ही वस्तुतः हम इन दोनों प्रकार की रचनाओं में विशिष्ट साम्य का भी परिणाम निकाल सकते हैं। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा हिंदी के महाकाव्यों अथवा खंडकाव्यों तक की रचना के लिए कतिपय नियम निर्धारित हैं जिनका पालन करना कवि के लिए आवश्यक समझा जाता आया है। यद्यपि वे मसनवी नामक रचनाओं के सम्बंध में भी ठीक प्रकार से लागू होते नहीं कहे जा सकते। इसमें सन्देह नहीं कि उनमें से कई एक ऐसे हैं जिनके साथ उपयुक्त नियमों की कोई मौलिक भिन्नता भी नहीं सिद्ध की जा सकती तथा जो दोनों प्रकार की उपलब्ध रचनाओं में एक ही प्रकार उदाहृत भी दीख पड़ते हैं। उत्तरी भारत के हिंदी सूफ़ी कवियों के सामने इन दोनों प्रकार के आदर्श उपस्थित रहे हैं और उन्होंने इन दोनों से ही यथेष्ट लाभ उठाने की चेष्टा की है।

अपभ्रंश के 'चरित काव्यों' में जो प्रधानतः जैन कवियों द्वारा लिखे गए मिलते हैं, हमें बहुत-सी उन बातों के भी उदाहरण मिल जाते हैं जिन्हें हम कभी-कभी मसनवी रचनाओं की विशेषता के रूप में मान लिया करते हैं। इनमें सर्वप्रथम, हमें जैन कवियों द्वारा की गई तीर्थकरों की स्तुति मिलती है जो

प्रायः सूफ़ी कवियों की ओर से किये गए पैगम्बर और उनके साथियों के प्रशंसात्मक वर्णनों जैसी हुआ करती है। इनमें से कुछ के अंतर्गत उनके प्रारंभिक अंशों में ही उन कवियों की ओर से प्रस्तुत किया गया अपने आश्रयदाता का वर्णन तथा अपनी रचना के प्रधान उद्देश्य का उल्लेख भी पाया जाता है जो सूफ़ी कवियों की रचनाओं जैसा ही प्रतीत होता है। इसके सिवाय चरितकाव्यों में हमें उन अलौकिक घटनाओं का न्यूनाधिक समावेश किया गया भी दीख पड़ता है जो सूफ़ियों की प्रेमगाथाओं में मिला करती है तथा प्रायः घटनाओं के ही अनुसार यहाँ पर किये गए अंग-विभाजन के भी उदाहरण मिल जाया करते हैं। चरित शब्दों में संभवतः उस समय तक प्रचलित पौराणिक रचना-पद्धति के अनुसार विशिष्ट घटनाओं के आधार पर शीर्षक देने की प्रणाली प्रतिष्ठित हो गई थी जैसी प्रेमगाथाओं में भी पायी जाती है और जो सर्ग-विभाजन की पद्धति से भिन्न है। चरितकाव्यों की यह विशेषता इन्हे महाकाव्यों वा खंडकाव्यों से पृथक् कर देती है और इन्हें मसनवियों के निकट भी ला देती है। अतएव, ऐसी बातों के आधार पर हम यह भी अनुमान कर सकते हैं कि हिंदी के सूफ़ी कवियों ने उन्हें संभवतः चरितकाव्यों से ही ग्रहण कर लिया होगा और उनके लिए इन्हें मसनवियों का ही अनुकरण करना आवश्यक न रहा होगा। जहाँ तक प्राकृतिक दृश्यों तथा षड्ऋतुओं अथवा बारहमासा वाले वर्णनों का सम्बंध है ये बातें भी भारतीय परंपरा की ही देन समझी जा सकती हैं। अतएव हिंदी के इन सूफ़ी कवियों ने इन पर लिखते समय अधिकतर या तो चरितकाव्यों का अनुसरण किया है अथवा इन्हें कदाचित् सीधे लोकप्रचलित कहानियों से ग्रहण कर लिया है जिन दोनों भी दशाओं में अनिवार्यतः ये मसनवी-रचयिताओं के ऋणी नहीं ठहराये जा सकते। फिर भी दक्खिनी हिंदी के सूफ़ी कवियों के विषय में भी हम ऐसा नहीं कह सकते और उन्हें ईरानी परंपराओं द्वारा कहीं अधिक प्रभावित भी पाते हैं। उन्होंने तो अपनी रचनाओं के छंदों तक के प्रयोगों में फ़ारसी की मसनवियों का ही अनुसरण किया है और फ़ारसी की वृत्तों को अपने काम में लाकर उर्दू साहित्य वाले कवियों के लिए एक पृथक् आदर्श की प्रतिष्ठा कर दी है।

इस प्रसंग में यहाँ पर उत्तरी भारत के सूफ़ियों तथा जैन चरितकाव्यों के रचयिताओं की मनोवृत्तियों की ओर भी हमारा ध्यान चला जा सकता है और तदनुसार हम इन दोनों वर्गों वाले कवियों की रचनाओं का तुलनात्मक अध्ययन भी कर दे सकते हैं। चरितकाव्यों के जैन कवियों का उद्देश्य भी धार्मिक था और वे भी इन सूफ़ी कवियों की ही भाँति अपनी रचनाओं द्वारा किसी न किसी मत वा सिद्धान्त का प्रचार करना अपना अभीष्ट समझा करते थे। परन्तु जैनियों का धर्म जहाँ उन्हें त्याग, तप, अहिंसा, वैराग्य एवं नैतिक आचरणसम्बंधी बातों को ही विशेष महत्व देने के लिए प्रेरित करता था, वहाँ सूफ़ियों की मान्यता के अनुसार इन्हें गौण स्थान ही दिया जा सकता था। प्रेम की प्रतिष्ठा इन सभी से कहीं अधिक आवश्यक थी। तदनुसार जैन कवियों ने जहाँ, दो प्रेमियों की चर्चा करते समय भी उन्हें अंत में, प्रेम के प्रति बहुत कुछ उपेक्षा का ही भाव प्रदर्शित करने के लिए बाध्य किया है, वहाँ सूफ़ियों कवियों की ओर से यह यत्न बराबर किया गया है कि उक्त सारी बातों को अधिक से अधिक प्रेम की सिद्धि का साधन मात्र ही ठहरावें। इसके सिवाय चरितकाव्यों वाले कवियों के समक्ष सूफ़ियों जैसा किसी अल्लाह के साथ अंत में, मिल जाने का भी आदर्श नहीं था, प्रत्युत उनका लक्ष्य जिनत्व की उस दशा को प्राप्त कर लेना ही कहा जा सकता था जिसके अनुसार मानवीय गुणों के चरमोत्कर्ष की सार्थकता सिद्ध की जा सकती है। फलतः जैन कवियों की कथाओं का रूप उपमिति परक होता हुआ भी सूफ़ी प्रेमगाथा के जैसा 'इश्क मज़ाजी' के आधार पर 'इश्क हक्कीकी' के स्पष्टीकरण का उद्देश्य नहीं इंगित करता था, प्रत्युत यह उनके मूल धार्मिक उद्देश्य की सिद्धि में सहायक मात्र बन सकता था। इसके द्वारा वे अपने प्रमुख सिद्धान्तों की व्याख्या कर देते तथा उन्हें उदाहृत भी कर दिया करते थे। तदनुसार हम इन दोनों प्रकार के कवियों की रचनाओं में दो भिन्न बातों का समर्थन और उनकी प्रशंसा करते हुए भी पाते हैं। सूफ़ी कवि जहाँ बार-बार प्रेम एवं विरह का गौरव-गान किया करता और उसे सर्वस्व तक मान बैठता हुआ दीख पड़ता है, वहाँ जैन कवि को ऐसे प्रसंगों का लाना कभी महत्वपूर्ण नहीं जान पड़ता है, प्रत्युत इसकी जगह वह सज्जनों तथा आदर्श

पुरुषों की प्रशंसा कर दुर्जनादि की निंदा करने तक पर भी आ जाया करता है और प्रेमव्यापार में पूर्ण सफल पात्रों तक को किसी जिन धर्मी महापुरुष की शरण में ले जा कर उन्हें प्रेम की निस्सारता स्वीकार करने के लिए प्रायः बाध्य भी कर दिया करता है ।

सूफ़ी एवं असूफ़ी दोनों प्रकार के ही प्रेमाख्यानों के अंतर्गत बहुत-सी कथा-रूढ़ियों से काम लिया गया है । इस प्रकार उनके द्वारा वर्ण्य विषय में रोचकता लाने तथा वस्तुतः एक उन्हें रूपविशेष देने का भी यत्न किया गया है । इनमें से बहुत-सी तो दोनों में एक समान ही आती दीख पड़ती हैं और लगभग एक ही प्रकार का परिणाम निकालने के लिए उनका प्रयोग किया गया भी दीख पड़ता है । प्रेमियों एवं प्रेमिकाओं के बीच प्रेम-भाव को जागृत करने तथा उसकी पुष्टि में सहाया प्रदान करने अथवा दोनों को किसी प्रकार मिला देने तक के लिए प्रायः पक्षियों, अक्षराओं, सखियों वा दासियों से काम लिया गया है । इसी प्रकार, नख-शिख वर्णन, विरह-वर्णन तथा प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन में भी हमें दोनों प्रकार की रचनाओं के अंतर्गत उल्लेखनीय भिन्नता नहीं दीख पड़ती । इस विषय में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि सूफ़ी कवियों ने अधिकतर अतिशयोक्ति से काम लिया है जो ईरानी काव्य रचना-परंपरा के प्रभावों का परिणाम भी कहा जा सकता है । इसी प्रकार सूफ़ी प्रेमाख्यानों में जहाँ पर कथा के प्रारंभ में पूर्वजन्म का प्रसंग ला दिया गया है और उसके द्वारा नायक एवं नायिका के प्रेम-सम्बंध के स्थायित्व को प्रमाणित करने की चेष्टा की गई है, वहाँ पर यह हमें उनके कवियों के भारतीय संस्कार को सूचित करता है और इसके उदाहरण वैसी सूफ़ी रचनाओं में नहीं मिलते । जायसी ने अपनी 'पद्मावत' में पद्मावती एवं राजा रतनसेन के सम्बंध का पूर्वजन्म से निश्चित जैसा होना अवश्य बतलाया है तथा मंझन ने भी अपनी 'मधुमालती' की नायिका के प्रति ऐसी बातों की चर्चा स्वयं उसके नायक की ओर से ही करा दी है । परंतु इन सूफ़ी प्रेमाख्यानों में हमें कहीं पर भी ऐसे प्रसंग देखने को नहीं मिलते, जहाँ पर कोई नायिका 'बीसलदेवरास' क राजमती जैसे अपने को पूर्वजन्म की हरिणी होना कहती हो अथवा चतुर्भुजदास की मधुमालती के नायक और नायिका जैसे उसे कामदेव

की राख से उत्पन्न कहा गया हो। जायसी एवं मंझन पर लोकप्रचलित प्रेम-कहानियों की कथारूढ़ि का प्रभाव मात्र भी ठहराया जा सकता है। असूफ़ी प्रेमाख्यानों में पायी जाने वाली कुटनियों का भी पता हमें सूफ़ी कवियों की वैसी रचनाओं में कहीं नहीं चलता जिसका प्रधान कारण केवल यही हो सकता है कि इन कवियों को अधिकतर 'सत' की रक्षा का उदाहरण उपस्थित करना रहता है जिसके लिए अवसर प्रदान करने के यत्न वैसी नारियों की ओर से ही किये जाते हैं। सूफ़ी कवियों का ध्यान प्रायः इस ओर नहीं जाया करता और यदि कभी चला भी जाता है तो वे जायसी द्वारा 'पद्मावत' में चित्रित की गई देवपाल वा अलाउद्दीन की दूतों की भाँति अधिकतर अपवाद के रूप में ही आ जाती है और उसको वैसा महत्व भी नहीं दिया जाता। असूफ़ी कवियों की एक तीसरी विशेषता अपने प्रेमाख्यानों के अंतर्गत संगीत को विशेष महत्व देने में भी देखी जा सकती है। संगीत को इस्लाम के अनुसार अधिकतर हेय ही ठहराया गया है, जिस कारण सूफ़ियों द्वारा उसे महत्व दिया जाना कभी स्वाभाविक नहीं कहा जा सकता। सूफ़ीमत के चिश्तिया संप्रदाय वालों ने उसे प्रायः अपना देने की चेष्टा की है, किंतु यह केवल अपवाद भी कहा जा सकता है। अतएव, असूफ़ी प्रेमाख्यान 'माधवानल कामकन्दला' तथा 'छिताई चरित' अथवा 'रसरतन' के भी नायक जहाँ अपनी प्रेयसियों की प्राप्ति में संगीत कला से काम लेते दीख पड़ते हैं, वहाँ सूफ़ी प्रेमाख्यानों के नायकों में इस प्रकार की चेष्टा का हमें कोई भी स्पष्ट उदाहरण नहीं मिलता। सूफ़ी कवि कुतबन की 'मृगावती' का नायक अपनी किंगरी अवश्य बजाता है और वह इस प्रकार, नायिका के नगर वालों का ध्यान अपनी दयनीय दशा की ओर आकृष्ट भी कर लेता है, किंतु उसका यह प्रयास अधिकतर केवल अपनी विवशता के प्रदर्शनमात्र सा ही लगता है। इस प्रकार की चेष्टा द्वारा वह अपनी संगीत कला सम्बंधी उस निपुणता का भी कोई परिचय नहीं दे पाता जो उपर्युक्त माधवानल में दीख पड़ती है। दक्खिनी हिंदी वाले प्रेमाख्यानों में तो हमें ऐसे किंगरीवादक जोगी नायकों के भी उदाहरण बड़ी कठिनाई से ही मिल सकेंगे।

उत्तरी भारत के हिंदी सूफ़ी प्रेमाख्यानों का इस भाषा के साहित्य में एक

अपना विशिष्ट स्थान सुरक्षित समझा जा सकता है। इनकी रचना यहाँ उस काल में आरंभ होती है, जब दिल्ली में मुस्लिम शासकों का प्रभुत्व पूर्ण रूप में जम चुका है, जिस समय फ़ीरोजशाह तुग़लक (सन् १३५१-८८ ई०) अपने दीन इस्लाम के प्रचार एवं काफ़िरों के दमन के प्रति कृतसंकल्प हो गया रहता है और जब तक ईरान की ओर से आकर भारत में प्रचलित हुए सूफ़ीमत से यहाँ के निवासी बहुत कुछ परिचित एवं प्रभावित भी हो चुके रहते हैं। इस समय अर्थात् ईसवी सन् की चौदहवीं शताब्दी के चतुर्थ चरण के पहले ही यहाँ पर फ़ारसी साहित्य का भी प्रचार हो गया रहता है तथा न केवल फ़ारसी भाषा को यहाँ के दरबारों में पूर्ण प्रश्रय मिलता रहा करता है, अपितु इसमें अमीर खुसरो जैसे प्रवीण कवि, काव्य-रचान में प्रवृत्त होकर अनेक उत्कृष्ट ग्रन्थों का निर्माण तक कर दिये रहते हैं। केवल उत्तरी भारत में ही नहीं, प्रत्युत दक्षिण के सुदूर प्रान्तों तक के वातावरण में इस समय तक सर्वत्र इस्लाम धर्म और उसके द्वारा प्रभावित ईरानी संस्कृति का बोलबाला प्रत्यक्ष रहा करता है। किसी व्यक्ति अथवा विशेषकर किसी एक मुस्लिम के लिए तो यह प्रायः असंभव-सा ही रहता है कि वह इस देश के पूर्व प्रचलित साहित्य और उसकी परंपरा के प्रति कोई रुचि प्रदर्शित करे अथवा तदनुकूल ग्रंथ-रचना में प्रवृत्त हो सके। ऐसे युग में और इस प्रकार के लोगों के हृदय में जन-साधारण के बीच पारस्परिक सौहार्द एवं सहानुभूति जागृत करने की प्रवृत्ति का घर कर लेना तथा उनका तदनुसार, साहित्य-रचना के माध्यम से कार्य करना आरंभ कर देना कोई साधारण-सी बात नहीं थी, जिस कारण इसका परिणाम भी असाधारण ही सिद्ध हुआ। उत्तर प्रदेश (वर्तमान ज़िला रायबरेली) के डलमऊ गाँव में, जहाँ पर भरं जाति के हिन्दू राजाओं का एक प्राचीन दुर्ग वर्तमान था कहते हैं कि इसी दुर्ग में किसी समय मुस्लिम आक्रमणकारियों ने ठीक होली के दिन अचानक मारकाट आरंभ कर दी थी जिसके फलस्वरूप दुर्ग विध्वंस हो गया था वहाँ तथा के भरं वीर लड़ते-लड़ते वीरगति को प्राप्त हुए। वहाँ पर फ़ारसी पढ़ाने के लिए संभवतः कोई 'मक़तब' भी चल रहा था, जिसके मुल्ला दाऊद के हृदय में भी उपर्युक्त प्रवृत्ति जगी और उसने एक ऐसी रचना प्रस्तुत करने का संकल्प

किया जिसके द्वारा न केवल हिन्दू तथा मुस्लिम जनता के बिगड़ते हुए पारस्परिक सम्बंध को सुधारने में सहायता मिले, प्रत्युत जिसके आधार पर अपने सूफ़ीमत की मान्यताओं का प्रचार भी संभव हो सके। तदनुसार उसने वहाँ की अवधी हिंदी के माध्यम से हिज़री सन् ७७९ अथवा ७८१ (अर्थात् सन् १३७७ वा वा १३७९ ई०) में अपनी 'चंदायन' प्रेमगाथा की रचना कर डाली। उसने ऐसा करते समय किसी नयी कहानी के गढ़ने का यत्न नहीं किया, न अपने पूर्ववर्ती अमीर खुसरो की भाँति, फ़ारसी साहित्य-परंपरा का अधिक अनुसरण करना ही उचित समझा। उसने वहाँ की पूर्व प्रचलित लोरक और चंदा की प्रेमकहानी के लोकगीतात्मक कथानक को ही अपनी रचना का आधार बनाया तथा पहले से व्यवहार में लायी हुई, जैन चरितकाव्यों अथवा अन्य वैसी प्रबंधात्मक रचनाओं की रचना-शैली को भी अपना लिया। इस प्रकार, उसने संयोगवश एक ऐसे सूफ़ी प्रेमालयानों की परंपरा प्रतिष्ठित कर दी जो आज प्रायः पाँच-छह सौ वर्षों तक बराबर चली आई। इस कार्य में उसका अनुसरण करने वाले सूफ़ी कवियों ने उसके उपर्युक्त आदर्श का पालन अधिक से अधिक मात्रा में किया है। जहाँ तक संभव हो सका है, उन्होंने एक निश्चित रचना-पद्धति को ही अपनाते का प्रयास किया है। फलतः उनके यत्नों द्वारा हिंदी साहित्य के अंतर्गत एक ऐसे विशिष्ट अंश का निर्माण हो गया है जो एक ही साथ, न केवल हमारी लोकगाथाओं की सुरक्षा में सहायक होता है और इस प्रकार, हमारी लोकसंस्कृति के वास्तविक महत्व को भी प्रत्यक्ष कर देता है, अपितु यह मुस्लिम कवियों द्वारा प्रदर्शित हिंदी प्रेम तथा इसके कारण, हिन्दू जनता की ओर से प्रकट की जाने वाली सूफ़ीमत के प्रति स्वाभाविक अभिरुचि को भी भली भाँति उदाहृत कर देता है। हिंदी के इन सूफ़ी काव्यों ने जन-जीवन की अधिक से अधिक अभिव्यक्ति करके लोक-मानस को छूने का भी सफल प्रयास किया है जो इनकी एक अन्य अपनी विशेषता कही जा सकती है।

दक्खिणी हिंदी के सूफी प्रेमाख्यान

दक्खिनी हिंदी में रची गई सूफ़ी प्रेमगाथाओं का आरंभ उस समय हुआ जब दक्षिण भारत में बहमनी राज्य की स्थापना हो चुकी थी। सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक के शासनकाल में जब उसका साम्राज्य विस्तृत होने लगा था, उधर के मुस्लिम अमीरों ने आपस में मिलकर किसी इस्माइल खाँ नामक व्यक्ति को दौलताबाद में सुल्तान चुन लिया। परंतु इस्माइल खाँ ने कुछ ही दिनों में, हसन के पक्ष में अवकाश ग्रहण किया और इस प्रकार सं० १४०४ में हसन उसकी गद्दी पर बैठकर 'हसन गांगू बहमनी' नाम से प्रसिद्ध हो गया। तदनन्तर बहमनी राज्य का विस्तार क्रमशः उत्तर की ओर नर्मदा नदी से लेकर दक्षिण में लगभग कृष्णा नदी तक होता चला गया। इसके सुल्तानों की संख्या १४-१५ तक बतलायी जाती है जिनका राज्यकाल लगभग दो सौ वर्षों तक कायम रहा और उनमें से कुछ ने अच्छी योग्यता का भी परिचय दिया। बहमनी राज्य के प्रसिद्ध मंत्री महमूद गावाँ (सं० १४६२-१५३८) के प्रबंधकाल में तो उधर की स्थिति पर्याप्त ऊँचे स्तर तक पहुँच गई थी। उस युग के एक रूसी यात्री अथनेसियस निकितिन का कहना है कि राज्य की जनसंख्या उस काल में बहुत अच्छी थी, भूमि की पैदावार प्रचुर मात्रा में हो रही थी, सड़कें डाकुओं से सुरक्षित रहा करती थी तथा राजधानी एक भव्य नगर के रूप में दीख पड़ती थी।^१ फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि जितने सुखी वहाँ के अमीर एवं धनी व्यक्ति जान पड़ते थे, उतने सर्वसाधारण प्रसन्न नहीं थे और बड़ों में भी केवल उन्हीं की दशा सन्तोषपूर्ण कही जा सकती थी जो इस्लाम धर्म के अनुयायी थे तथा विशेषकर जिन पर तात्कालीन शासकों की कृपादृष्टि भी रहा करती थी। विदेशियों के प्रति वहाँ प्रायः विरोधभाव भी प्रदर्शित किया जाता था, किंतु अरब और ईरान जैसे देशों से जो दरवेश वा मुस्लिम संत आ जाते थे और जो 'मजहबे इस्लाम' का प्रचार किया

१. ईश्वरीप्रसाद : ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ मुस्लिम रूल इन इंडिया, पृ० १५२ पर उद्धृत।

करते उन्हें राज्य से प्रश्रय भी मिल जाया करता था और इस प्रकार, मुस्लिम साहित्य एवं संस्कृति को प्रोत्साहन भी प्राप्त था। विक्रम की पंद्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध-काल में समय पाकर बहमनी राज्य का भी ह्रास आरंभ हुआ और बरार की इमादशाही, बीजापुर की आदिलशाही, अहमदनगर की निज़ामशाही, गोलकुंडा की कुतुबशाही तथा बीदर की बीरदशाही नामक पाँच सल्तनतों ने उसकी जगह लेकर उसकी परंपरा भी निभायी।

दक्खिनी हिंदी की सबसे पहली सूफ़ी प्रेमाख्यान जिसका अबतक पता चल सका है 'कदम राव व पदम' नाम की एक मसनवी है जिसके रचयिता का नाम 'निज़ामी' बतलाया जाता है और कहा जाता है कि वह "सुल्तान अहमद शाह सालिस बहमनी (हि० सन् ८६५-७) के जमाने में मौजूद था।"^२ 'दकन में उर्दू' के लेखक नसीरुद्दीन हाशमी साहब का यह भी कहना है कि वह सुल्तान का दरबारी शायर था। उन्होंने उसकी इस रचना की कोई प्रति स्वयं भी देखी थी तथा उस समय इसके कुछ नोट भी लिये गए थे, किंतु पूरी मसनवी के पढ़ने का उन्हें अवसर नहीं मिला। इसकी एक प्रति का उन्होंने 'अंजुमन तरक्किए उर्दू' (पाकिस्तान) में मौजूद होना भी बतलाया है और यह भी कहा है कि उसके 'चंद सफ़हों के फोटू' उक्त संस्था के ही मुखपत्र 'क्रौमी जवान' में प्रकाशित भी हो चुके हैं। हाशमी साहब ने इस मसनवी का रचनाकाल निश्चित करने के लिए जिन कुछ पंक्तियों को अपनी उक्त पुस्तक में उद्धृत किया है, वे इस प्रकार हैं—

शहंशह बड़ा शाह अहमद कुंवर। परतमाल सेन्सार करतार औहार (?)।

धनी ताज का कौन राजा वहंग। कुंवर शाह का शाह अहमद भजंग (?)।

लक़ब शहअली आल वहमन बली। वली थे बहुत बुधंदा कली (?)।

इसी प्रकार उन्होंने मसनवी में दिये गए विविध शीर्षकों से भी एक दिया है जो 'मदह सुल्तान अलाउद्दीन बहमनी नूर अल्ला मरकदः' के रूप में है।^३ इन

२. नसीरुद्दीन हाशमी : दकन में उर्दू (१९५२ ई०), मकतब: मुईउन अबब, उर्दू बाजार, लाहोर, पृ० ३३।

३. वही, पृ० ३४।

उद्धृत पंक्तियों में से प्रथम तीन के कम से कम द्वितीय चरण स्पष्ट नहीं होते जिस कारण केवल इन्हें ही प्रमाण मानकर अंतिम निर्णय करना उचित नहीं है। फिर भी इन चारों के आधार पर इतना तो कहा ही जा सकता है कि इस प्रेमगाथा के रचनाकाल तक संभवतः बहमनी सुल्तान अलाउद्दीन का देहान्त हो चुका था, उसकी उपाधि 'वली' की थी तथा उसके शाहजादे अथवा युवराज का नाम 'अहमद' था।

परंतु हाशमी साहब ने इसके अतिरिक्त कुछ और भी परिणाम निकाला है जिससे सहमत होना कदाचित् इतिहास के तथ्य से दूर जाना कहा जा सकता है। उनका कहना है कि 'बहमनी के सिलसिले से वाजः होता है कि सिवाय ग्यारहवें हुक्मरान अलाउद्दीन हुमायूँ शाह के कोई और ऐसा हुक्मरान नहीं हुआ जिसका लक़ब अलाउद्दीन हुआ और अहमद शाह उसके वली अहद का नाम हो। यह अहमद शाह सालिस सन् ८६५ हि० से सन् ८६७ हि० तक हुक्मरान रहा है। इसलिए इस मसनवी की तसनीफ़ भी इसी जमाने में करार देनी चाहिए'^४ जिसकी पुष्टि ऐतिहासिक तथ्यों से भी होती नहीं जान पड़ती। इतिहास की पुस्तकों में बहमनी सल्तनत की परंपरा के ग्यारहवें सुल्तान हुमायूँशाह के नाम के साथ 'अलाउद्दीन' शब्द भी जुड़ा हुआ नहीं दीख पड़ता, बल्कि उसके पिता का ही नाम 'सुल्तान अलाउद्दीन अहमद शाह द्वितीय' मिलता है^५ और उसका राज्यकाल भी सन् १४३५ ई०-१४५७ ई० अर्थात् सं० १४९२-१५१४ पाया जाता है। इतिहास से ही हमें यह भी पता चलता है कि सुल्तान अलाउद्दीन अहमदशाह के पिता अहमद शाह (रा० का० सं० १४७९-१४९२) ने अपने लिए 'वली' की उपाधि धारण की थी और वह अपने पुत्र जाफर खाँ को शासनभार सौंप कर उससे विरत भी हो गया था।^६ यही जाफर खाँ आगे उक्त 'सुल्तान अलाउद्दीन अहमद शाह' के नाम से प्रसिद्ध हुआ और हो सकता है कि अपने पिता के जीवनकाल में यही 'अहमद कुँवर' भी रहा हो। वैसी दशा में निज़ामी का 'शाहंशाह बड़ा शाह' उसका पिता अहमद

४. वही, पृ० ३५।

५. जर्नल आफ दि एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, लेटर्स (भा० १ सन् १९३५ ई०) निबंध सं० ३, पृ० ८४।

हो सकता है जिसका ही वह 'अहमद कुँवर' भी कहा जा सकेगा। निज़ामी की रचना के अंतर्गत पाये जाने वाले उक्त 'मदह' वाले शीर्षक से भी केवल यही ध्वनित होता है कि उसके निर्माण के समय तक संभवतः सुल्तान अलाउद्दीन अहमदशाह का भी देहान्त हो गया था जो उक्त प्रकार से, हुमायूँ शाह का पिता ही सिद्ध होता है, स्वयं हुमायूँ शाह नहीं। इसके सिवाय हुमायूँ शाह के किसी 'अहमद शाह' नामक युवराज (वली अहद) के अस्तित्व का भी समर्थन किसी इतिहास ग्रंथ से नहीं होता, न उससे यही सिद्ध होता है कि ऐसा कोई अहमद शाह पीछे 'अहमद शाह सालिस' (वा तृतीय) नाम से बहमनी सुल्तान हुआ था। सुल्तान हुमायूँ शाह का उत्तराधिकारी निज़ाम शाह हुआ जो एक अष्टवर्षीय बालक मात्र था और जिसकी मृत्यु भी उसके विवाह की रात्रि में ही हो गई। यह घटना हि० सन् ८६७ अर्थात् सं० १५१९ की है जब कि उसके स्थान पर उसके नव वर्षीय छोटे भाई को सुल्तान बनाया गया और यह अपने नाम 'मुहम्मद शाह तृतीय' के साथ, तब से सं० १५३९ तक शासन भार सँभाले रहा। इसमें इसे महमूद गावाँ तथा अपनी माता मखदूम जहाँ (मृ० सं० १५२९) से पूरी सहायता मिली तथा इन दोनों का देहान्त भी उसके राज्यकाल में ही हो गया। इस प्रकार यदि हाशमी साहब 'निज़ाम शाह' को 'अहमद कुँवर' कहने लगे तो वह भी ठीक नहीं जान पड़ता, न 'मुहम्मद शाह सालिस' ही 'अहमद शाह सालिस' हो पाता है। उनका यह अनुमान भी कि बहुत मुमकिन है कि शायर ने अपना तखल्लुस (उपनाम या कविनाम) बादशाह के लक़ब पर 'निज़ामी' करार दिया हो^६ किसी अन्य विश्वसनीय प्रमाण के भी अभाव में मान्य नहीं समझा जा सकता। हाशमी साहब ने इतिहासकार फ़िरिश्ता के ग्रंथ में भूल से 'अहमद शाह' की जगह 'निज़ामशाह' का लिखा जाना भी माना है^७ जिसका निर्णय करने का हमारे पास अवश्य कोई साधन नहीं है।

हाशमी साहब ने अपनी पुस्तक में आगे इस मसनवी से कुछ और भी पंक्तियाँ

-
६. ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ मुस्लिम रूल इन इंडिया, पृ० १४३ ।
 ७. बकन में उर्दू, पृ० ३५ । ८. वही, पृ० ३५ ।

उद्धृत की हैं जो अधिकतर इसके आरंभ की ही जान पड़ती हैं और जिनसे अनुमान किया जा सकता है कि इसकी रचना-शैली साधारणतः वही है जो बहुत सी अन्य सूफ़ी मसनवियों में देखी जाती हैं। यहाँ पर भी प्रायः उसी प्रकार 'गुसाई' पर-मेश्वर की स्तुति की गई है, उसी प्रकार बड़े लोगों का गुणगान किया गया है और फिर सुल्तान का 'मदह' भी मौजूद है। परंतु इसके अनन्तर जो उदाहरण मुख्य विषय अथवा कहानी-सम्बंधी दिये गए हैं उनसे उसके किसी भी अंश का कोई स्पष्ट संकेत नहीं मिलता। न तो यही पता चलता है कि इसके नायक और नायिका कहाँ के रहनेवाले थे, न यह कि उनके पारस्परिक सम्बंध की घटनाएँ ही क्या रही होंगी। ऐसी दशा में हम इस बात का भी निर्णय कर सकने में असमर्थ हैं कि इसका कथानक निरा काल्पनिक है अथवा किसी प्रचलित आधार पर आश्रित है। इसे हम एक शुद्ध प्रेमगाथा कह सकते हैं अथवा कोई उपमिति कथा वा कथारूपक ठहरा सकते हैं, इसके निर्णय की भी पूरी सामग्री उपलब्ध नहीं। इस रचना का छंद अवश्य फ़ारसी का कोई बहू जान पड़ता है और इसकी भाषा में बहुत से हिंदी वा संस्कृत तक के शब्दों का समावेश दीख पड़ता है। स्वयं हाशमी साहब का भी कथन है कि 'हसब रवाज़ क़दीम इसमें अरबी और फ़ारसी के बजाय हिंदी अलफ़ाज़ ज्यादा हैं। इसकी ज़बान इस क़दर मुश्किल है कि इसका समझना दिक्कत तलब है'^९ और कदाचित् इसीलिए उन्होंने इसके वर्ण्यविषय पर कोई प्रकाश डालने का यत्न भी नहीं किया है। मसनवी की मूलकथा कपरिचय न होने के कारण हमें इसका नाम तक भी कुछ विचित्र सा ही लगता है। इसके 'कदम राव व पदम' पर विचार करते समय पहले ऐसा प्रतीत होता है जैसे कदम राव इसका नायक होगा और पदम वा पदमावती इसकी नायिका होगी। किंतु 'दकन में उर्दू' में उद्धृत पंक्तियों में से अंतिम दो को पढ़ लेने पर इसमें सन्देह भी होने लगता है। ये दो पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

कि तूँ साच मेरा गुसाई कदम । पदमराव तुज पाँव केरा पदम ।

जहाँ तूँ धरे पांय हो सर धरूँ । अयस सार की लकतराई करूँ १०(?) ।

९. दकन में उर्दू, पृ० ३५ ।

१०. वही, पृ० ३७ ।

यह एक दुख की बात है कि इस मसनवी की कोई प्रति हमें उपलब्ध नहीं, न अन्यत्र इसके विषय में कोई विस्तृत चर्चा ही की गई मिलती है। पर्याप्त सामग्री मिलने पर ही दक्खिनी हिंदी की इस पुरानी मसनवी के महत्व का उचित मूल्यांकन किया जा सकता है।

‘कदम राव व पदम’ का रचना-काल यदि इस प्रकार, अलाउद्दीन अहमदशाह द्वितीय का देहान्त हो जाने पर अर्थात् सं० १५१४ के अनन्तर मान लिया जाय, तो वह उसके पुत्र एवं उत्तराधिकारी सुल्तान हुमायूँ शाह के राज्यकाल सं० १५१४-१५१८ के भीतर पड़ सकता है। इसे सुल्तान मुहम्मद शाह तृतीय के राज्यकाल सं० १५२०-१५३९ अथवा सुल्तान निजामशाह के समय सं० १५१८-१५२० तक भी खींच ले जाने की कोई आवश्यकता नहीं दीख पड़ती, जब तक इस बात के लिए भी कोई प्रमाण न मिल सके कि इस रचना का निर्माण करने में निजामी को अधिक समय लगाना पड़ा था। दक्खिनी हिंदी की उपलब्ध प्रेमगाथाओं में, इस मसनवी के अनन्तर ‘कुतुबमुश्तरी’ का नाम आता है जो सं० १६६६ की रचना है। इसका रचयिता मुल्ला वज़ही है जिसने इसके कथानक स्वयं अपने समय के शाहज़ादे मुहम्मद कुली के जीवन से तैयार किया है। उसी के आधार पर उसके बाल्यकाल से लेकर उसके किसी मुश्तरी नाम की सुन्दरी के साथ प्रेम सम्बंध तक की कहानी प्रस्तुत कर दी है। ‘कदम राव और पदम’ तथा ‘कुतुब मुश्तरी’ के बीच इस प्रकार लगभग १५० वर्षों का अन्तर पड़ता है और इस बीच किसी अन्य ऐसी मसनवी का लिखा जाना, अब तक की उपलब्ध सामग्रियों के आधार पर सिद्ध नहीं किया जा सका है। इस इतने बड़े समय के अन्तर को देखकर हमें उत्तरी भारत की सूफ़ी प्रेमगाथाओं के इतिहास का भी स्मरण हो आता है जिसमें भी उधर की ऐसी सर्वप्रथम रचना मुल्ला दाऊद की ‘चंदायन’ के रचनाकाल सं० १४३४ वा १४३६ के अनन्तर शेख कुतुबन की ‘मृगावती’ के समय अर्थात् सं० १५६० तक प्रायः १२५ वर्षों का अन्तर पाया जाता है। ‘कुतुबमुश्तरी’ प्रकाशित हो चुकी है और इसे देखने से पता चलता है कि इसे हम केवल एक शुद्ध प्रेमगाथा मात्र भी कह सकते हैं। इसमें ऐसे स्थल बहुत कम मिल सकेंगे जिनकी व्याख्या सूफ़ी कवियों की विचारधारा के अनुसार भी की जाय। शाहज़ादा मुहम्मद कुली, इब्राहीम कुतुब-

शाह (सं० १६०६-३७) का राजकुमार था जो गोलकुंडा की कुतुबशाही सल्तनत का चौथा सुल्तान था। अपने पिता के अनन्तर वह स्वयं भी सुल्तान हुआ और उसका राज्यकाल सं० १६६७ तक चला जबतक, उसके युवराज काल से ही आरंभ होकर 'कुतुब मुश्तरी' की रचना समाप्त हो चुकी थी।

अपने समसामयिक वा ऐतिहासिक पात्रों को लेकर प्रेमगाथा की रचना करने का दक्खिनी हिंदी में, यह कदाचित् पहला ही प्रयास था जो संभवतः अमीर खुसरो द्वारा फ़ारसी में रची गई 'देवल रानी व खिज़्रखाँ' नामक मसनवी के अनुकरण में किया गया था। मुल्ला वज़ही ने 'कुतुबमुश्तरी' के अतिरिक्त एक अन्य प्रेम-कहानी 'सबरस' की भी रचना की जो प्रधानतः गद्य में है और जिसमें प्रसंगतः केवल कुछ ही पद्य बीच-बीच में आ गए हैं। 'सबरस' की एक विशेषता यह भी है कि उसके प्रायः सभी पात्र 'दिल', 'हुस्न', 'नज़र', 'तन' आदि वस्तुतः काल्पनिक मात्र हैं। उनके पारस्परिक सम्बंध की कतिपय घटनाओं के आधार पर, कवि का उद्देश्य 'अक़ल' पर 'इश्क़' की विजय प्रदर्शित करना तथा इस प्रकार सिद्ध भी कर देना है कि 'इश्क़ हक़ीकी' तक पहुँचने के लिए 'इश्क़ मज़ाजी' एक सर्वथा उपयुक्त 'सीढ़ी' अर्थात् नसेनी का काम दे सकता है। 'सबरस' की रचना सं० १६९३ में समाप्त हुई जब तक उत्तरी भारत में, मुल्ला दाऊद की 'चंदायन' के अतिरिक्त, शेख़ कुतुबन की 'मृगावती' (सं० १५६०), मलिक मुहम्मद जायसी की 'पद्मावत' (सं० १५९७), शेख़ मंज़न की 'मधुमालती' (सं० १६०२), शेख़ उसमान की 'वित्रावली' (सं० १६७०), और जान कवि की 'कथा कनकावती' (सं० १६७५) 'मधुकर मालती' (सं० १६९१), 'रतनावती' (सं० १६९१) आदि तथा शेख़ नबी की 'ज्ञानदीपक' (सं० १६७६) नामक प्रेमगाथाओं की रचना हो चुकी थी, किंतु उनमें इसके जैसे पात्रों की अवतारणा नहीं की गई थी। मुल्ला वज़ही ने इसमें कई स्थलों पर इस बात की ओर संकेत करने का भी यत्न किया है कि उसकी यह कृति सर्वथा मौलिक है। परंतु खोज से यह बात प्रकट हुई है कि उसकी इस कहानी का मूलस्रोत खुरासान देश के नेशापुर नगरनिवासी किसी फ़ारसी कवि 'फ़त्ताही' (मृ० सं० १५०६) की रचना 'दस्तुरे इश्क़' में पाया जाता है जिसकी एक व्याख्या उसने स्वयं अपनी गद्य पुस्तक 'हुस्न व दिल' में कुछ

विस्तार के साथ कर दी है। 'सबरस' के उर्दू संस्करण की भूमिका लिखते समय डॉ० अब्दुल हक़ ने उक्त 'दस्तूरे इस्क' को एक बहुत लोकप्रिय ग्रंथ कहा है और उसके अनेक अनुवादों तक की चर्चा करते हुए, यह भी बतलाया है कि मुल्ला वज़ही ने कदाचित् उस मूल पुस्तक को न देखकर उसकी व्याख्या मात्र ही पढ़ी होगी। उत्तरी भारत के सूफ़ी कवियों में सर्वप्रथम शेख़ उसमान अपनी रचना 'चित्रावली' के अंतर्गत कुछ पात्रों के नाम सकारण रखते हुए जान पड़ते हैं, किंतु वे भी किसी जीते-जागते व्यक्ति विशेष की ही ओर संकेत करते हैं। इन कवियों में केवल नूर-मोहम्मद ही ऐसे हैं जो कदाचित् पहले पहल अपनी 'इन्द्रावती' (सं० १८०१) में और फिर विशेष रूप से अपनी 'अनुराग बांसुरी' (सं० १८२१) में इस रचना-शैली को अपनाते हैं तथा उसके पात्रों के नाम 'जीव', 'अंतःकरण', 'बुद्धि', 'चित्', 'अहंकार', 'संकल्प', 'विकल्प' जैसे संस्कृत शब्दों में भी देते हैं। 'अनुराग बांसुरी' 'सबरस' से सवा सौ वर्षों से भी अधिक समय पीछे की रचना है जिस कारण, उसका इससे प्रभावित होना भी असंभव नहीं कहला सकता।

मुल्ला वज़ही ने गोलकुंडा के कुतुबशाही सुल्तानों की छत्रछाया में अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की थीं और उसका एक समकालीन कवि 'गवासी' भी था जिसकी कम से कम 'सैफ़ुल मुलूक व वदीउल ज़माल' तथा 'तूतीनामा' नामक दो मसनवियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। 'गवासी' के लिए कहा जाता है कि उसे अब्दुल्ला कुतुबशाह सुल्तान की ओर से 'मलिकुल्शुअरा' की उपाधि भी मिली थी। उसकी उक्त प्रथम रचना का निर्माणकाल सं० १६८२ है तथा उसकी कहानी का किसी फ़ारसी गद्य पुस्तक से लिया जाना कहा जाता है। इसी प्रकार उसकी दूसरी मसनवी का रचनाकाल सं० १६९५ बतलाया गया है तथा उसके मूलस्रोत का भी किसी फ़ारसी गद्य ग्रंथ अथवा मूलतः संस्कृत की 'शुक सप्तति' में ही पाया जाना कहा गया है। इन दोनों के देखने से पता चलता है कि इनमें से पहली पर तो शामी परंपरा का पर्याप्त रंग चढ़ा हुआ है, किंतु दूसरी के लिए भी ऐसा नहीं कहा जा सकता। 'तूतीनामा' की कहानी का आरंभ ही हिंदुस्तान के किसी धनी सौदागर की वाणिज्य-यात्रा से होता है। कहते हैं कि 'शुक सप्तति' की सत्तर कहानियों में से केवल ५२ को ही चुनकर किसी मौलाना ज़ियाउद्दीन नख़्शवी ने उनका

फ़ारसी अनुवाद हि० सन् ७३० अर्थात् सं० १३२९ में किया था तथा उनमें से भी केवल ३५ को ही चुनकर किसी मुल्ला सैयद मुहम्मद क़ादरी ने हि० सन् १०९३ अर्थात् सं० १६८१ में उनका एक स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया और उसकी भी भाषा फ़ारसी ही रही। 'गवासी' ने फिर नरेशवी के ही 'तूतीनामा' से ४५ कहानियाँ चुनीं।^{११} 'सैफ़ुलमुलूक व वदीउल ज़माल' की कहानी मिस्र देश के बादशाह से आरंभ होती है और उसमें यवनदेश, चीनदेश, सिंहलद्वीप, इसकन्दद्वीप आदि अनेक स्थलों की चर्चा आती है तथा उसमें एक ही कहानी को अधिक विस्तार दिया गया दीख पड़ता है। परंतु 'तूतीनामा' की कहानी में, मूल कथा के एक रहते हुए भी प्रसंगवश ऐसी अनेक अन्य कहानियों का भी समावेश हो जाता है जिनसे उसका कोई भी प्रत्यक्ष संबन्ध नहीं, प्रत्युत जिनकी संख्या केवल दृष्टान्त प्रदान के व्याज से उत्तरोत्तर बढ़ती ही चली जाती है। उत्तरी भारत के सूफ़ी हिंदी कवियों ने ऐसी रचना-शैली को इस रूप में कदाचित् कभी न अपनाया था, यद्यपि उनके लिए यहाँ वैसे आदर्शों की कमी भी नहीं कही जा सकती थी।

गवासी के सम्बंध में यह भी कहा जाता है कि "इसकी एक और भी मसनवी दस्तयाब हुई है जो 'चंदा और लोरक' है। यह भी फ़ारसी से तर्जुमा की गई है। इसकी तसनीफ़ सन् १०३५ हि० के पहले हुई होगी।"^{१२} किंतु इसकी पूरी प्रति कहीं से प्रकाशित भी हुई नहीं जान पड़ती। 'दकन में उर्दू' के अंतर्गत इसकी केवल कुछ ही पंक्तियाँ उद्धृत की गई हैं जिनसे कहानी की मूल कथानक का ठीक पता नहीं चलता। फिर भी अन्यत्र^{१३} दिये गए इसके कतिपय पद्यों को इनके साथ मिलाकर देखने से यह स्पष्ट होते देर नहीं लगती कि इस मसनवी का सम्बंध प्रसिद्ध लोरिक व चंदा की ही कहानी से है। यद्यपि जो कथानक इसका होगा

११. सं० मीर सआदत अली रिज़वी : तूतीनामा (हैबराबाद, हि० सन् १३५७)

'मुकद्दमः', पृ० ३१।

१२. दकन में उर्दू, पृ० ७८।

१३. सं० श्रीराम शर्मा : दक्खिनी का पद्य और गद्य, हिंदी प्रचार सभा, हैबराबाद,

१९५४, पृ० २८६-९।

वह वस्तुतः 'चंदायन' की कहानी से अभिन्न भी होगा, यह कहने का हमारे पास कोई साधन नहीं है। 'चंदायन' की कोई भी पूरी प्रति अभी तक उपलब्ध नहीं हो सकी है, इस कारण यह कहना कठिन है कि उसकी कथा का मूल रूप क्या है। अब तक इसकी एक से अधिक अधूरी प्रतियाँ ही मिल सकी हैं। इसकी किसी एक पूरी प्रति का कहीं विदेश से पाया जाना कहा जाता है जो वास्तव में देखने पर संपूर्ण कहलाने योग्य नहीं है। पटना के प्राध्यापक एस० एच० अस्करी साहब को जो अधूरी प्रति मिली है उसमें पाये जाने वाले कतिपय स्थलों के आधार पर केवल इतना ही कहा जा सकता है कि उसका नायक लोरिक जाति से अहीर है और वह गौर नगर का निवासी है, चंदा सहदेव नामक भरर की पुत्री है और वह बावन से व्याही गई रहती है। उसे यह बावन के घर से लाती है और उसे अपनी पत्नी बना लेता है तथा उसके ऐसा यत्न करते समय उसे मार्ग में अनेक प्रकार की बाधाओं का सामना भी करना पड़ता है। उससे इतना और भी संकेत मिल जाता है कि लोरिक का एक भाई 'कुँवरू' नाम का था और उसकी पहलेवाली पत्नी का नाम 'मीना' था। मुल्ला दाऊद ने इस कहानी को किसी मलिक नाथन के कहने से लिखा था और उसे उक्त चंदा से पूरी संवेदना भी थी जिसे उसके अनुसार एक बार साँप ने डँस लिया था। उसका कहना है—'हिरदै जात सो चंदा रानी। साँप डसै हूँ सोइ बखानी।' और जान पड़ता है कि यह घटना, लोरिक के साथ चंदा के भागते समय की है।^{१४}

परंतु 'शवासी' की पंक्तियों को मिलाकर पढ़ने से प्रतीत होता है कि इसकी मसनवी की कहानी कुछ भिन्न है। यहाँ पर चंदा किसी नगर के बादशाह की पुत्री है जिसका नाम संभवतः 'वाला' अथवा 'माला' कुँवर है। इसके सिवाय जिस समय चंदा को चोरी से लेकर लोरिक भाग निकलता है और बादशाह को इस बात की सूचना दी जाती है तो वह यहाँ पर कहता है "अच्छा हुआ मेरी बाधा टल गई। लोरिक के घर उसकी एक परम सुन्दरी नारी है जिसे मैं प्यार करता हूँ और अब उसे किसी कुटनी द्वारा पालने में मुझे सुविधा हो सकेगी।"^{१५} इस

१४. जर्नल ऑफ दि बिहार सोसायटी, भा० ३९, सन् १९५३ ई०, पृ० १२।

१५. दक्खिनी का पद्य और गद्य, पृ० २८८-९।

कहानी में न तो कहीं चंदा के किसी पूर्व पति बावन की चर्चा है, न उसके भागते समय के विघ्नों का ही वर्णन है। लोरिक की पहली पत्नी मैना के पतिव्रता होने की ओर कुछ संकेत यहाँ पर अवश्य मिलता है। चंदा से यहाँ पर लोरिक स्वयं कहता है—

‘यों सुनकर कहा मेरे घर नार है। ओ सतवंत नार वाईमान औतार है।

के साहब मुजे चंदा होर सूर का। मेरे घर में शोला है कोहतूर का।

इस्म पाक उसका कहूँ मैं टुक एक। पतिव्रत मैना सो है नाँव नेक। १६

अपनी उस पत्नी को छोड़कर आने के लिए लोरिक ‘चंदायन’ वाली कहानी में भी, एक बार पछताता है और कहता है कि इसी कारण मुझे कष्ट मिलने लगे हैं। १७ लोरिक दोनों कहानियों के अन्तर्गत जाति का ग्वाला ही है तथा ‘गोरू’ चराने का काम भी करता है। परंतु गवासी की मसनवी में इसकी कथा को कहीं-कहीं वह आध्यात्मिक रूप भी दिया गया नहीं जान पड़ता जो उत्तरी भारत की सूफ़ी प्रेमगाथाओं की विशेषता है और जिसकी ओर किये गए कुछ न कुछ संकेत ‘चंदायन’ की अधूरी प्रति में भी हमें मिल जाते हैं।

गवासी ने अपनी ‘चंदा व लोरक’ मसनवी को किस फ़ारसी रचना से अनुवादित किया है इसका पता हाशमी साहब नहीं देते। स्वयं यह कवि भी इस बात की ओर कहीं संकेत करता नहीं दीख पड़ता। इसके रचना-काल के विषय में किये गए हाशमी साहब के अनुमान—‘इसकी तसनीफ़ हि० सं० १०३५ के पहले हुई होगी।’ १८ से केवल यही जान पड़ता है कि यह समय ‘चंदायन’ से लगभग २५० वर्ष पीछे का होगा, स्वयं मुल्ला दाऊद की कतिपय पंक्तियों से ध्वनित होता है कि लोरिक एवं चंदा की कथा उनके समय से भी प्रसिद्ध रही होगी। मलिक नाथन के संभवतः सुझाव देने पर ही उन्होंने स्वयं भी अपनी प्रेमगाथा की रचना की थी। उनका कहना है—

१६. दक्खिनी का पद्य और गद्य, पृ० २८७।

१७. जर्नल ऑफ़ दि बिहार रिसर्च सोसायटी, भा० ३९, १९५३ ई०, पृ० १०।

१८. दकन में उर्दू, पृ० ७८।

तोर कहा में यहि खँड काऊ । कथा कब की लोक सुनाऊँ ।

मलिक नथन सुन बोल हमारी । सुनहे कान देइ हिय कनैमारी । १९(?)

इधर की खोजों से पता चलता है कि इस कथा के विभिन्न रूप थे जो कई बोलियों की लोकगाथाओं में अभी तक प्रचलित रहते आए हैं। ब्रज, अवधी, भोजपुरी, छत्तीसगढ़ी आदि बहुत सी बोलियों में पायी जाने वाली ऐसी रचनाओं के कुछ अंश तो प्रकाशित भी हो चुके हैं। इसके किसी एक रूप का उदाहरण हमें बंगला भाषा में उपलब्ध अलाओल कवि की रचना 'लोर चन्द्राणी' एवं दौलत काजी की 'सती मयनावती' में भी मिलता है जिसके लिए कहा गया है कि वह 'ठेठा चौपाई पर दोहा' में कही जानेवाली कहानी के आधार पर निर्मित की गई है।^{२०} इन उपलब्ध रचनाओं की तुलना कर लेने पर इतना और भी अनुमान किया जा सकता है कि लोरिक एवं चंदा की इस प्रेमकहानी के आधार पर लिखी गई मसनवियों अथवा प्रेमगाथाओं के कम से कम, दो रूप साधारणतः मिलते हैं जिनमें से एक में लोरिक एवं चंदा के ही सम्बंध की बातें विशेष रूप से कही गई हैं तथा दूसरे में, इसी प्रकार लोरिक एवं मैना विषयक बातों पर विशेष ध्यान दिया गया है। प्रथम वर्ग की रचनाएँ कुछ अधिक विस्तृत हैं और उनमें लोरिक एवं चंदा के भागते समय की विविध बाधाओं का सांगोपांग वर्णन मिलता है, जहाँ दूसरे में लोरिक की पूर्व पत्नी मैना के सतीत्व पालन का प्रसंग अपेक्षाकृत कम विस्तार के साथ आता है।

यहाँ पर इस सम्बंध में, एक यह बात भी उल्लेखनीय है कि 'दक्खिनी का पद्य और गद्य' नामक पुस्तक में जहाँ उसके ४६८ पृष्ठों के अंतर्गत दक्खिनी हिंदी के अनेक पद्य के उदाहरण संगृहीत हैं, वहाँ उसके पृ० ३७३ से लेकर पृ० ३७८ तक एक रचना 'मसनवी किस्सा मैना सतवंती' नाम से दी गई मिलती है जिसके कवि के विषय में 'अज्ञात लेखक' लिखा दीख पड़ता है। परंतु यदि इसकी पंक्तियों को उपर्युक्त पृ० २८६ से लेकर पृ० २८९ तक छपी मसनवी की पंक्तियों के साथ

१९. जर्नल ऑफ दि बिहार रिसर्च सोसायटी, १९५३, पृ० १२ ।

२०. सुकुमार सेन : बांगला साहित्येर इतिहास, पृ० ५६६ ।

पढ़ते हैं तो इन दोनों रचनाओं में विचित्र साम्य भी जान पड़ता है। इन दोनों की बहुत-सी पंक्तियाँ लगभग ज्यों की त्यों लिख ली गईं प्रतीत होती हैं और ऐसा लगता है जैसे उनमें केवल कुछ पाठभेद का ही अन्तर हो; जैसे—

‘मसनवी गवासी दकनी’

के एक शहर का एक था बादशाह
जहाँगीर आलम में था शाहंशाह
बड़ा मेहरवाँ अदल और शहरयार
इनको नाम उसका सो वाला कुँअर
उसे कई विलायत भौत शहर थे
खड़ी हो इशारत सूँ कही नेक जात
कैतीहू तुजे सरफ़राजी की बात
यों सुन बात गवाल तसलीमकर
कहा मुजपो करना महर में के नज़र
कही सुन तू गवाल ऐ जान यार
के गोरू के पीछे अहै ख़वार जार
मेरे पास धन माल हैं ले मेहता
तुजे देऊंगी मैं ओ सारा जेता
बले माल सारा इहाँते सलूक
हमें होर नहीं, मिलको जाएँ मलूक
के साहब मुजे चाँदा होर सूर का
मेरे घर में शोला है कोहेतूर का
इस्मपाक उसका कहूँ मैं टुक एक
पतिव्रत मैना सोहै नाँव नेक
उसे छोड़ जाना तो वाज़िब नहीं
मैं भूल माल मुनासिब नहीं
यों सुन बात चंद कहै विस्तार
आयी हो ख़ुद तुज कूँ करता है ख़वार

‘मसनवी किरसा मैना सतचंती’

के एक शहर में था बड़ा ओके शाह
जहाँगीर आलम अथा शहंशाह
सचें अदल में मेहरवाँ शहरयार
नेको नाम उसका सो वाला कुँअर
उसे सब विलायत बहुत शहर थे
खड़े हो इशारत किये उस सँगात
किये हों तुजे सरफ़राजी की बात
यों सुन बात कूँ तस्लीम कर
कहा मुजपो करना करम की नज़र
कहे सुनके ऐ आशिक़े जाने यार
के होता है तूँ गोरवा म्याने ख़वार
मेरे पास धन माल है होर मता
तुजे देऊंगी मैं सारा जेता
बले माल धन सारा उलीच कर
हमें होर तुमें जावें एक मुल्क पर
न हाज़त मुजे चाँद होर सूर का
मेरे घर में शोला है कोहेतूर का
इस्मे पाक उसका सो है नाँव नेक
अपने व्रत मैना सो नाव नेक
उसे छोड़ जाना तो वाज़िब नहीं
मैं किस घात सेती लजाना नहीं
यों सुन बात चदा कहे उस्तवार
अपै हो ख़ुदा तुजको करता है ख़वार

तू चंदा में लोरक हूँ नौकर तेरा
 ले चंदा कू चोरी से बाहर हुवा
 सो ओ गलवला जग में जाहिर हुवा
 सो राजा वहाँ का बँटा तख्त पर
 खबरदार उसकी ले जाये खबर
 तेरी पाकदामन कू लोरक गँवार
 बड़ा ढीठ होकर किया बदसिगाल
 सुन्याँ सोचा राजा हँस्या खिलखिला
 कहा मेरे जिवका यों तोरचा सिला
 कहा अपने लोगों कू सूँ खोल बात
 गया चोरी कर चोर गवाल जात
 सो घर उसके मक़बूल यक नार है
 भोत दिन सूँ उस पर मेरा प्यार है

तू चंदा में लोरक हूँ कुकर तेरा
 लिये चंदा कू चोरी से बाहर हुआ
 सो यों गलवला जग में जाहिर हुआ
 सो राजा वहाँ का बँटा तख्त पर
 खबरदार उसकूँ दिये जा खबर
 तेरे पाक दामन कू लोरक गवाल
 बड़ा ढीठ होकर गया ले निकाल
 सुन्या बात राजा हँसा खिलखिला
 कहा मेरे दिल का टूटचा बिल्वला
 कहा अपने लोगों कू मुँह खाल बात
 क्या चोरी करे चोर गवाल जात
 सो घर उसके मक़बूल एक नार है
 भोत दिन सूँ उसपे मेरा प्यार है

‘मसनवी गवासी दक्कनी’ में इसके अनन्तर उस राजा द्वारा अपने लोगों से किसी कुटनी का बुलाया जाना तथा उससे मैना को बहकाकर लेने का प्रस्ताव करना और उसका इसे स्वीकार करना तक कहा गया है, किंतु ‘मसनवी किस्सा सतवंती’ में यह बात नहीं आती। फिर भी इन दोनों पर विचार करने से ऐसा लगता है जैसे या तो ऊपर दिये गए उदाहरण किसी एक ही रचना की पाठभेद सूचक पंक्तियाँ हैं अथवा इनमें से किसी भी एक के रचयिता ने दूसरी रचना को अपने सामने ही रखकर लिखा है।

कुछ दिन हुए पटना से प्रकाशित होनेवाली ‘अवतिका’ पत्रिका में ‘साधन का मैनासत’ शीर्षक एक ‘नोट’ छपा था जिसके लेखक डॉ० माताप्रसाद गुप्त हैं और जिसमें किसी ‘साधन’ कवि द्वारा रचित ‘मैनासत’ के विषय में कुछ अनुमान किया गया दीख पड़ता है। डॉ० गुप्त ने इस सम्बंध में नागरीप्रचारिणी सभा, काशी से प्रकाशित १९०२ ई० के हिंदी हस्तलिखित पुस्तकों के खोज विवरण में दी गई सूचना, किसी अज्ञात कवि की रचना ‘मैनासत’ और पटना के प्राध्यापक एस० एच० अस्करी द्वारा ‘बिहार रिसर्च सोसायटी जर्नल’ (मार्च-जून १९५३)

में उल्लिखित 'मैना की एक अवधी कहानी' (जिसका लेखक 'साधन' है) की चर्चा की है तथा चतुर्भुजदास की 'मधुमालती' में पाये जानेवाले 'मैनासत प्रसंग' के साथ इन दोनों का सम्बंध निर्धारित करने का भी यत्न किया है। डॉ० गुप्त का अनुमान है कि ये तीनों ही रचनाएँ साधन की कृति के रूपान्तर हैं जो सं० १५६१ के आसपास अथवा उसके पूर्व की लिखी हो सकती है। परंतु डॉ० गुप्त ने वहाँ पर उक्त रचना के कथानक तथा उसके मूलस्रोत पर भी विचार नहीं किया है। उन्होंने इस सम्बंध में केवल प्रो० अस्करी की कुछ पंक्तियों को उद्धृत कर दिया है जिससे पता चलता है कि उस रचना का किसी मैना एवं मालिन की कहानी से सम्बंध है।^{२१} प्रो० अस्करी ने भी जो पंक्तियाँ अपने लेख में उस कहानी से लेकर दी है उनमें से एकाध में मैना वा मीना का परिचय 'मीनारानी' तथा 'मीना जहाँ सिंघासन बैठे' जैसे शब्दों द्वारा दिया गया दीख पड़ता है^{२२} जिससे स्पष्ट नहीं हो पाता है कि वह लोरिक की पत्नी ही थी वा नहीं। जब तक पूरी कथा के विचार से इन रचनाओं की तुलना नहीं की जाती तब तक केवल इतना ही कहा जा सकता है कि दोनों की नायिकाओं में नामसाम्य होने के अतिरिक्त इतना और भी स्पष्ट है कि उनमें पातिव्रत रक्षा का प्रतिपादन भी एक ही ढंग से किया गया है।

'किस्सा मैना सतवंती' के रचयिता के सम्बंध में अनुमान किया गया है कि वह संभवतः 'शवासी' ही रहा होगा और इसके लिए उसके अंत की दो पंक्तियाँ भी उद्धृत की गई हैं जो संयोगवश हाशमी साहब द्वारा 'चंदा और लोरक' मसनवी से ली गई पंक्तियों में भी दीख पड़ती हैं।^{२३} परंतु उपलब्ध सामग्री के आधार

२१. अवतिका, पृ० ७९।

२२. जर्नल ऑफ दि बिहार रिसर्च सोसायटी, भा० ३९, अंक १-२, १९५३ ई०.
पृ० २८।

२३. दक्खिनी का पद्य और गद्य, पृ० ४८५। पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

'शवासी यों करना करम की नज़र।

दुआ हक़ सो मंगना मेरे हक़ उपर ॥'—दकन में उर्दू, पृ० ८७।

पर हमें इतना और भी अनुमान कर लेने के लिए कोई साधन नहीं कि इस रचना का रूप किसी सूफ़ी प्रेमगाथा का था अथवा यह केवल किसी शुद्ध प्रेमगाथा की परंपरा के ही अनुसार निर्मित की गई थी। यदि इसका रचना-काल सं० १६८२ के पूर्व का भी मान लिया जाय, उस दशा में भी यह गवासी की कृति होने के नाते उसके जीवन-काल से पहले की रची गई नहीं कही जा सकती और इसी कारण, यह साधन कवि की 'मैनासत' के पीछे की ही ठहरती है। अतएव हो सकता है कि मैना वा मीना के सतीत्वपालन की कहानी इन दोनों कवियों के बहुत पहले से और संभवतः 'चंदायन' के रचयिता मुल्ला दाऊद के समय से भी पूर्व से किसी न किसी रूप में चली आती रही होगी और यह भी असंभव नहीं कि यह किसी समय लोरिक व चंदा की कथा से स्वतंत्र भी रही होगी।

गोलकुंडा की कुतुबशाही सल्तनत की ही भाँति बीजापुर की आदिलशाही सल्तनत की छत्रछाया में भी प्रेमगाथाएँ लिखी गई थीं। वहाँ के ऐसे सर्वप्रथम कवि का नाम 'मुक्कीमी' दिया गया मिलता है जिसकी रचना 'चंदर बदन व महियार' नाम से प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि 'मुक्कीमी' ने अपनी प्रस्तावना में गवासी का स्मरण किसी 'उस्ताद की तरह' किया है और उसने मसनवी को उसके 'तुतव' में रचा है।^{२४} 'चंदर बदन व महियार' की रचना का "मक़सद मज़हबे इस्लाम की अज़मत जाहिर करना" भी बतलाया गया है। यद्यपि उसके किसी अंश के आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि यह साधारण सूफ़ी कवियों की वैसी प्रेमगाथाओं से भी प्रभावित है। इसकी कहानी को संक्षेप में इस प्रकार कह सकते हैं—कोई महियार नामक युवा पुरुष चंदर पटन के राजा की लड़की चंदर बदन का नाम सुनकर उस पर आसक्त हो जाता है और उसकी खोज में चंदर पटन पहुँचकर उसे देख भी लेता है तथा उसके पैरों तक पर गिर पड़ता है। परंतु वह इस बात से कुछ प्रभावित होती हुई भी, अपने धर्म के कारण उसे ठुकराकर चल देती है जिससे महियार की दशा एक पागल की सी हो जाती है। उसे बीजा-

२४. अब्दुल क़ादिर सरवरी : उर्दू मसनवी का इर्तका, हैदराबाद, १९४० ई०,

नगर के राजा से इस सम्बंध में कुछ आश्वासन अवश्य मिलता है, किंतु लड़की के बाप के यहाँ उसकी कोई सुनवायी नहीं होती। फलतः माहियार अपने प्राणों से हाथ धो बैठता है और उसका जनाजा चंद्र बदन के महल की ओर से ही निकलता है। परंतु वह किसी कारण आगे नहीं बढ़ पाता जिसका समाचार सुनकर चंद्र बदन बहुत प्रभावित हो जाती है। वह नहा-धोकर कहीं कोने में जा सो रहती है और मर जाती है जिस पर जनाजा भी आगे बढ़ता है और जब माहियार का शव कब्र में रखा जाता है तो वहाँ किसी प्रकार चंद्र बदन का भी शव पहुँच जाता है। 'चंद्र बदन व माहियार' की रचना के समय बीजापुर का सुल्तान इब्राहिम आदिलशाह द्वितीय (सं० १६३६-८४) था, अथवा अभी कुछ ही पहले मर चुका था। वह एक योग्य शासक था और स्वयं भी एक निपुण कवि और लेखक कहला कर प्रसिद्ध है। कहते हैं कि उसके शासनकाल में पहले 'अदबी मसनवियाँ' अर्थात् शुद्ध उद्देश्य से रची गई प्रेमगाथाएँ ही दीख पड़ती हैं। नुसरती की मसनवी 'गुलशने इस्क' (सं० १७१४) तथा हाशमी की 'युसुफ़ जुलेखा' (सं० १७४४) का निर्माण उसके अनन्तर क्रमशः अली आदिलशाह तथा सिकन्दर आदिलशाह की सल्तनतों के समय में हुआ। मुक़ीमी की 'चंद्र बदन व माहियार' के आधार पर फिर बीजापुर के ही किसी 'आतिशी' नामक कवि ने एक फ़ारसी मसनवी लिखी और पीछे इस रचना का एक दक्खिनी हिन्दी अनुवाद किसी 'बुलबुल' नामक कवि द्वारा किया गया जो पहली मसनवी से कहीं विस्तृत तथा विशाल है। परंतु इनमें से किसी की भी कोई प्रति उपलब्ध नहीं जिसके आधार पर उसके ऊपर पड़े किसी सूफ़ी विचारधारा के प्रभाव का समुचित निर्णय किया जा सके।

नुसरती की रचना 'गुलशने इस्क' का विशेष महत्व इस बात के कारण भी समझा जाता है कि उसमें आयी हुई कथा का कुछ न कुछ साम्य उस कथानक के साथ भी ढूँढ़ा जा सकता है जो हिन्दी के सूफ़ी कवि शेख़ मंज़न की प्रेमगाथा 'मधुमालती' का आधारस्वरूप है। स्वयं नुसरती का कहना है कि उसके एक मित्र नबी इब्न अब्दुस्समद ने उसे इसके लिखने की प्रेरणा दी थी जिससे अनुमान किया जा सकता है कि जिस प्रकार गुल्ला दाऊद से कहकर मलिक नाथन ने उससे 'चंदा-

यन' की प्रेमगाथा लिखवायी थी। संभवतः उसी प्रकार अब्दुस्समद ने भी नुसरती से 'गुलशने इश्क' लिखने के लिए कहा होगा और हो सकता है कि इसकी भी मूलकथा उसी की भाँति पुरानी रही होगी। डॉ० अब्दुल हक का कथन है कि शेख मंज़न की रचना 'मधुमालती' का प्रसंग किसी फ़ारसी मसनवी किस्सा 'कुँवर मनोहर व मदमालत' में आया है जो सन् १०५९ हि० अर्थात् सं० १७०५ में लिखी गई थी, किंतु जिसके रचयिता का नाम ज्ञात नहीं है।^{२४} उसके कवि ने डॉ० हक के अनुसार, 'अपने किस्से की बुनियाद उसी पर रखी है', किंतु उन्होंने इस सम्बंध में इससे अधिक नहीं कहा है। उन्होंने एक अन्य फ़ारसी मसनवी का भी उल्लेख किया है जो 'महर व माह' नाम की है जो और सन् १०६५ हि० अर्थात् सं० १७११ में लिखी गई थी। उनका अनुमान है कि 'महर व माह' के रचयिता आकिन खाँ को उसका किस्सा 'दकन' ही में मिला होगा और उसने 'मनोहर' को 'महर' और 'मधुमालती' को 'माह' कर दिया होगा। डॉ० हक को शेख मंज़न की रचना 'मधुमालती' देखने को नहीं मिल सकी थी, क्योंकि वह तब तक प्रकाशित भी नहीं हो पाई थी। इसलिए कथानक विषयक समानता का उल्लेख उन्होंने केवल अनुमान के अनुसार किया है। 'गुलशने इश्क' के अनन्तर उसकी कहानी के आधार पर किसी हिसार के हिसामुद्दीन ने भी एक फ़ारसी मसनवी 'हुस्न व इश्क' की रचना सन् १०८१ हि० अर्थात् सं० १७२७ में की। परंतु कहा जाता है कि नुसरती की कृति इन सभी से कहीं विस्तृत और विशाल है। नुसरती ने उसमें कुछ नये प्रसंग भी जोड़ दिए हैं। वास्तव में, 'मधुमालती' के साथ इसकी तुलना करने पर भी पता चलता है कि इन दोनों के बीच कई बातों में अन्तर आ गया है। फिर भी यह अन्तर उतना नहीं है जितना इसे चतुर्भुजदास की 'मधुमालती' अथवा जान कवि की 'मधुकर मालती' के साथ पढ़ने से जान पड़ता है, क्योंकि इन दोनों रचनाओं की आधारभूत कहानी का रूप किसी और ही प्रकार का है तथा उससे बहुत भिन्न है। उदाहरण के लिए 'मधुमालती' के

२४. डॉ० मौलवी अब्दुल हक साहब : नुसरती, अंजुमनतरविकए उर्दू हिब), नई देहली, पृ० १७-१९ ।

आरंभ में ही जो तपा का प्रसंग आता है उसमें राजा सूरजभान तपा के निकट बारह वर्षों तक उसकी सेवा में रह जाता है और तब कहीं उससे बातचीत होती है जहाँ 'गुलशने इश्क़' में जब यह फकीर राजा विक्रम के द्वार पर जाता है तो वह भोजन करने बैठता रहता है तथा फकीर की 'सदा' या आवाज देने पर वह अपनी थाली लेकर उसे देने जाता है जिसे वह उसके निःसंतान रहने के कारण, अस्वीकार कर देता है। फिर 'मधुमालती' का तपा जहाँ राजा को वही 'जेवनार-पिंड' दे देता है, जिसे खाकर उसकी रानी गर्भवती होती है, वहाँ 'गुलशने इश्क़' के फकीर को वह जंगलों में ढूँढ़ता है और तब कहीं कुछ परियों की सहायता से वह उसे पाता है तथा उसके कहने पर किसी वृक्ष का फल तोड़कर अपने घर लाता और अपनी रानी को खिलाता है जिसे इसके कारण गर्भ रहता है, इत्यादि। इसके सिवाय 'गुलशने इश्क़' में कुछ अपनी रचना-शैली की भी विशेषताएँ हैं जो उसकी फ़ारसी काव्य-परंपरा के कारण हो सकती है और ये स्वभावतः 'मधुमालती' में नहीं पायी जातीं। उदाहरण के लिए 'गुलशने इश्क़' के अंतर्गत प्रत्येक 'बाब' या सर्ग के पहले एक ऐसा 'शेर' लिखा मिलता है जिससे उसके प्रसंगों का स्पष्ट निर्देश हो जाता है। इसी प्रकार उनमें से प्रायः प्रत्येक के आरंभ में कोई न कोई प्राकृतिक 'वस्तु' का चित्रण अथवा प्रस्तुत वातावरण का कोई विस्तृत वर्णन भी आ जाता है जिनका 'मधुमालती' में वहाँ अभाव-सा है। अतएव, इन दोनों रचनाओं का मूलस्रोत संभवतः एक ही होने पर भी इनमें विवरणों के रूप एवं कृति की रचना-शैली में भिन्नता आ गई है।

मंज़न की 'मधुमालती' एवं 'गुलशने इश्क़' का कथानक-चक्र एक ही जान पड़ता है, जहाँ चतुर्भुजदास की 'मधुमालती' एवं जान कवि की 'मधुकर मालती' का उससे नितान्त भिन्न दीख पड़ता है। इसी प्रकार संभव है कि गुजराती, राजस्थानी तथा बंगला आदि में उपलब्ध होनेवाली इस नाम की विविध कहानियों में से कुछ की कथावस्तु इन दोनों से भी भिन्न हो। यों तो नामसाम्य के आधार पर कभी-कभी भवभूति के प्रसिद्ध नाटक 'मालती माधव' के भी वर्ण्यविषय की चर्चा इस प्रसंग में कर दी जाती है और यह समझा जाता है कि उसकी कथा का ही एक रूप 'मधुमालती' का भी प्रेरणास्रोत है। परंतु इस प्रकार का परिणाम निकालने

के पहले इस सम्बन्ध में अभी और भी खोज अपेक्षित हो सकती है। सारी सामग्रियों का तुलनात्मक अध्ययन कर उनके समुचित विश्लेषण और विवेचन के आधार पर उनके वर्गीकरण एवं विकास निर्देशन की आवश्यकता पड़ सकती है। शेख मंझन ने तो अपनी रचना में इसकी कथा का मूलस्रोत बतलाते हुए कहा है कि वह द्वापर युग की घटना है जिसे कलियुग के कवियों ने भाषा में कह दिया है,^{२५} किंतु उनके इतना कह देने से ही हमारी तद्विषयक जिज्ञासा की तृप्ति नहीं होती। इससे केवल इतना संकेत मिलता है कि संभव है, इस कथा का कोई न कोई रूप हमें प्राचीन पौराणिक वा कथात्मक साहित्य में भी मिल जाय।

शेख मंझन की 'मधुमालती' अथवा नुसरती की 'गुलशने इस्क' मसनवी के मूलभूत कथानक-चक्र की चर्चा करते समय हमारा ध्यान अनेक अन्य ऐसी प्रेम-कहानियों की कथावस्तु की ओर भी चला जाता है जिसका अध्ययन भी कदाचित् इससे कम रोचक न होगा। जायसी की प्रेमगाथा 'पद्मावत' की कथावस्तु भी उन सारी प्रेमकहानियों का वर्ण्य विषय नहीं जिनका नामसास्य उसके साथ पाया जाता है। उदाहरण के लिए जो पद्मावती की कथा 'कल्कि पुराण' में आती है उसके प्रायः सभी पात्र पौराणिक हैं और उनका जायसी की रचना के पात्रों जैसा कोई ऐतिहासिक पता भी नहीं दिया जा सकता तथा इन दोनों कथाओं के स्वरूप एवं क्रमविकास में भी पर्याप्त अन्तर है। इसी प्रकार लब्धोदय कवि के 'पद्मिनीचरित्र', हेमरतन की 'पद्मिनी चउपई' तथा जटमल की 'गोरा बादल री बात' जैसी रचनाओं के तुलनात्मक अध्ययन से भी पता चल सकता है कि उनका एक ही सा ऐतिहासिक आधार होने पर भी, उनमें कितना अन्तर आ जाया करता है। दक्खिनी हिंदी के कवि गुलाम अली ने तथा वली बेलूरी ने अपनी अपनी रचनाओं, क्रमशः 'पद्मावत' एवं 'रतन व पदम' का निर्माण जायसी की प्रसिद्ध प्रेमगाथा के आधार पर किया है। इसी प्रकार एक अन्य कवि इशरती के लिए भी कहा जाता है कि उसने

२५. 'आदि कथा द्वापर मो भई। कलिजुग मो भाखा जो गई॥'—मंझन कृत 'मधु मालती', हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, सन् १९५७ ई०, पृ० १५।

फ़ारसी में तथा वैसे ही बंगला कवि अलाओल ने बंगला में इसके रूपान्तर किये हैं। परंतु इन कृतियों के उपलब्ध विवरणों से यह स्पष्ट होते देर नहीं लगती। कि इन सभी कवियों ने जायसी का अनुसरण अक्षरशः नहीं किया है जिसका एक परिणाम यह भी हुआ है कि इनकी न केवल रचना-शैली प्रत्युत प्रसंगवैविध्य के कारण भी, उनमें कुछ न कुछ विशेषता अवश्य आ गई है।

दक्खिनी हिंदी के अधिकांश प्रेमाख्यान इस प्रकार, या तो किसी न किसी फ़ारसी मसनवी के अनुवाद हैं अथवा किसी अन्य प्रसिद्ध एवं प्रचलित प्रेमगाथा के आधार पर लिखी गई मसनवी के रूप में उपलब्ध होते हैं। स्वतंत्र रूप से रचित मसनवियों की संख्या अधिक नहीं। इब्न निशाती की मसनवी 'फूलवन' के लिए कहा जाता है कि उसकी कथा कुछ अंशों में मौलिक है, किंतु वह भी वस्तुतः 'अलिफ़ लैला' के ही आदर्श पर लिखी गई है जो स्वयं भी किसी प्रचीन शामी परंपरा का अनुसरण करने वाली रचना है। निज़ामी की 'कदम राव व पदम' के मूलस्रोत का पता नहीं चलता, क्योंकि अभी तक उसकी पूरी प्रति उपलब्ध नहीं हो सकी है। मुल्ला वज़ही की केवल 'कुतुब मुश्तरी' के ही विषय में यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उसकी कथा किसी अन्य रचना पर आश्रित नहीं, उसका प्रत्यक्ष पात्रों से सम्बंध भी है। मुल्ला वज़ही की 'सबरस' के आधार पर पीछे मुज़रमी ने अपनी 'गुलशाने हुस्न व दिल' नामक रचना सन् १०९९ हि० (सं० १७४८) में लिखी। इसी प्रकार हाशमी की 'यूसुफ़ जुलेखा' की भाँति अमीन ने भी अपनी एक रचना उसी नाम से हि० ११०९ अर्थात् सन् १७४४ में प्रस्तुत की थी। 'यूसुफ़ जुलेखा' शामी परंपरा की एक पुरानी पौराणिक प्रेम-कहानी के आधार पर लिखी गई थी। अहमद की 'लैला मजनूँ' भी एक ऐसी ही अन्य कथा पर आश्रित है। जहाँ तक पता चलता है दक्खिनी हिंदी की सूफ़ी प्रेमगाथाओं में लोकगाथाओं का अनुसरण कम किया गया है। जहाँ है, वहाँ भी किसी कृति के ही माध्यम से है जैसा पूर्वोल्लिखित 'चंदा व लोरक' एवं 'किस्सा मैना सतवंती' से भी प्रकट होता है।

इस प्रसंग में यहाँ पर यह भी उल्लेखनीय है कि यद्यपि उत्तरी भारत के सूफ़ी कवियों ने अपनी हिंदी प्रेमगाथाओं का निर्माण आरंभ कर दिया था और उन्होंने

भारतीय प्रेमगाथाओं की प्रचलित परंपरा को न्यूनाधिक अपना भी ले रखा था । फिर भी दक्खिनी हिंदी के प्रथम मसनवी रचयिता ने उनका अनुसरण नहीं किया, प्रश्रुत उधर ध्यान न देते हुए फ़ारसी मसनवियों को ही अपना आदर्श बनाया तथा इस प्रकार उन्होंने अपन पीछे आने वालों के लिए मार्ग-प्रदर्शन करके ऐसी भावी उर्दू रचनाओं की नयी बुनियाद भी कायम कर दी । फलतः ऐसी मसनवियों में न केवल शामी परंपरा की रक्षा एवं प्रचार का प्रयास किया गया, अपितु इनमें कभी हिन्दू समाज एवं संस्कृति का सफल चित्रण भी नहीं किया जा सका, न उन्हें कोई महत्व ही मिला । जिन, परी, देव, शाही दरबार, दरवेश एवं खिज़्रखाँ विषयक प्रसंगों को, कभी-कभी अनावश्यक होने पर भी, स्थान दिया जाने लगा और विदेशी पशु-पक्षी तक भी आने लगे । इन मसनवियों के रचयिता प्रायः मुसलिम सुलतानों की छत्रछाया में रहा करते थे जिस कारण, उनके उपर्युक्त वर्णनों की प्रचुरता दीख पड़ने लगी और फ़ारसी एवं अरबी की वहाँ विशेष प्रतिष्ठा होने के कारण इन दोनों भाषाओं की शब्दावली को भी अधिक महत्व दिया जाने लगा । फ़ारसी की प्रसिद्ध मसनवी रचना-शैली का लगभग अक्षरशः अनुकरण किया जाने लगा और उसका ही आदर्श प्रायः उन सभी प्रेमगाथाओं के लिए भी उपयुक्त समझा जाने लगा जिनका उद्देश्य केवल विशुद्ध प्रेम का प्रचार मात्र ही रहा करता था । इन मसनवियों के अंतर्गत फ़ारसी तथा कभी-कभी अरबी बहनों (छंदों) को ही अपनाया गया । ऐसी छोटी सी छोटी रचनाओं में भी बराबर केवल उन्हीं बातों की ओर विशेष ध्यान दिया गया जो अधिकतर मुस्लिम सामाजिक वातावरण के अनुकूल थीं । निज़ामी जैसे पहले के कुछ कवियों ने अपनी भाषा में अपने यहाँ की ठेठ प्रचलित भाषा के भी प्रयोग प्रचुर मात्रा में किये थे । परंतु उनके पीछे आनेवाले इस बात में क्रमशः अधिकाधिक ढीलापन दिखलाते गए और फ़ारसी एवं अरबी शब्दों को अपनाते भी चले आए ।

नामानुक्रमणी

अ

अगरचंद नाहटा, ७४ ।
 अत्तार, ९५, ९६ ।
 अथनेसियस निकितन, १२१ ।
 अद्दहमाण (अब्दुर्रहमान), १९ ।
 अबू यज़ीजुद्दीन विस्तामी वायज़ीद,
 ३ ।
 अब् हसन बसरावी, २ ।
 अब्दुल कद्दूस गंगोही, ४३ ।
 अब्दुल मुयीद, ८५ ।
 अब्दुल हक, ४४, ७४, १२८, १३८ ।
 अमीन, १४१ ।
 अमीर खुसरो, ६, ७, १३, १४, १६,
 १७, २२, ११६, ११८, १२७ ।
 अल् ग़ज़ाली, ३, ४, ९, १३ ।
 अल् जुनैद, ३ ।
 अल् हुज़िवरी, ३, ८, १२, १३ ।
 अलाओल, २५, ३७, ३८, ३९, ७९,
 १३२, १४१ ।
 अस्करी (प्रो०), २९, ३६, ४६,
 ४७, ५६, १३०, १३४, १३५ ।
 अहमद, २६, १४१ ।
 अहमद यार, २६ ।

आ

आकिल खां राज़ी, ७३, ७४ ।
 आकिल खां, १३८ ।
 आचार्य रामचंद्र शुक्ल, ४८, १०९ ।
 आतिशी, १३७ ।

इ

इब्न निशाती, १४१ ।
 इशरती, १४० ।
 इस्लाम, ११५ ।

उ

उसमान कवि, ७५, ८१, ८२, ९२,
 ९३, १२७, १२८ ।

ए

एलविन (डॉ०) ३३ ।

क

करीमुल्ला, ५४ ।
 कवि जटमल, ७७, ७८, १४० ।
 कश्फुल महजूब, १३ ।
 कासिम शाह, २४, ६१, ८३, ८४,
 ९१, ९४, ९८ ।
 किरमान ख्वाजू, ६ ।
 कुतुब मुश्तरी, २८, १२६, १२७,
 १४१ ।

कुशैरी, १ ।

ख

खयाम (उमर) ५ ।

खलीफ़ा अली, २ ।

खलील, २५ ।

ख़िज़्र ख़ाँ, १४२ ।

ख्वाज़ा अहमद, २४ ।

ख्वाजा ख़िज़्र ख़ाँ, ८३ ।

ख्वाजा मासूद साद सलमन, ६२ ।

ख्वाजू, ७ ।

ग

ग़रीबुल्ला, ८६ ।

ग़वासी, ४३, ८३, ८४, १२८, १२९,
१३०, १३१, १३३, १३४, १३५,
१३६ ।

ग़ुलाम अली, १४० ।

गोविन्दचन्द्र चट्टोपाध्याय, ७४ ।

च

चतुर्भुजदास, ११४, १३५, १३८,
१३९ ।

चतुर्भुजदास कायस्थ, ७२, ७४ ।

चाहिल, १९ ।

चिश्तिया, ११५ ।

ज

जान कवि, ८२, ८३, ८४, १२७,
१३८, १३९ ।

जामी, ५, ६, ७, ८, ८५ ।

जायसी (मलिक मुहम्मद) २४, ३६,

५५, ५६, ५७, ५८, ५९, ६१,

६३, ६९, ७०, ७२, ७३, ७६,

७७, ७८, ७९, ८०, ८१, ८९

९०, ९१, ९७, ११४, ११५,

१२७, १४०, १४१ ।

त

तूतीनामा १२८, १२९ ।

द

दामो, १९, ९८ ।

दामोदर १८, २५, २६ ।

दुखहरन, १०५ ।

दौलत काज़ी, २५, ३८, ३९, १३२ ।
द्विजराज कवि, ५३ ।

न

नबी इब्न अब्दुस्समद, ७३, १३७,
१३८ ।

नरपति नाल्ह, ६२ ।

नसीर, २४, ८६ ।

नसीरुद्दीन हाशमी, १२२, १२३,
१२४, १२५ ।निसामी ५, ६, ७, १३, १४, २२,
२८, १२२, १२३, १२४, १२६,
१४१ ।

निसार, २४, ८५, ८६ ।

नुसरती ७३, ७४, १३७, १३८,
१४० ।

नूर मुहम्मद, ६२, ६३, ८४, ८५, ९४, ९५, १२८ ।

प

पीलू, २६ ।

पुरुषवंत, १९

पैगम्बर, ११२ ।

फ

फत्ताही, १२७ ।

फिगार, ८६ ।

फिरदौसी, ८५, ११० ।

फिरिश्ता, १२४ ।

फैजी, १३, १४, १७ ।

ब

बदीउल जम्माल, १२९ ।

बनारसीदास ५६ ।

बरमक, १ ।

बहराम, २५ ।

बाबा धरणीदास, ९७ ।

बाबा फरीद शकरगंज २५ ।

बीसलदेव रास, ११४ ।

बुलबुल कवि, १३७

व्यास रिखिय, ९८ ।

म

मंसूर, ३ ।

मलिक नाथन, ३६, ९८, १३०, १३१,

१३७ ।

महाकवि कालिदास, ६०, ६२ ।

१०

माताप्रसाद गुप्त (डॉ०), १८, १३४, १३५ ।

मामू, २ ।

मायाशंकर याज्ञिक, ७७ ।

मीरा हाशमी बीजापुरी, ८६ ।

मुकीम, १४ ।

मुकीमी, १३६, १३७ ।

मुजरमी, १४१ ।

मुल्ला दाऊद, १६, १७, १८, १९,

२२, २३, २४, २८, ३३, ३५, ३६,

३७, ३९, ४०, ४१, ४२, ४४, ९७,

११६, १२६, १२७, १३०, १३१,

१३६, १३७ ।

मुल्ला बदायूनी, १४, ४२ ।

मुल्ला वज्रही, २३, ८४, ९५, १२६,

१२७, १२८, १४१ ।

मुल्ला सैयद, १२९ ।

मुहम्मद कादरी, १२९ ।

मुहम्मद, खातिन, २५, ५३ ।

मेघराज प्रधान, ४९ ।

मैथली, ४१ ।

मोहम्मद कबीर, ७४ ।

मौलाना जमीरी बिलग्रामी, १३ ।

मौलाना जियाउद्दीन, बख्शमी, १२८, १२९

मौलाना रुम, ५, ११० ।

र

राबिया बसराविनी, २ ।

ल

लब्धोदय वा लक्षोदय, ७७, १४० ।
लालचंद, ७७, ७८ ।

व

वली वेलूरी, १४० ।
वारिस शाह, २६ ।
वाली सैयद हामजा, ७४ ।

श

शहाबुद्दीन सुहर्वर्दी, १ ।
शिरेफ़ (ए० जी०), ८० ।
शिवदास, ८० ।
शेख़ अबूहाशिम, १ ।
शेख़ कुतबन, २४, २७, ४४, ४५, ४६,
४७, ४८, ५०, ५३, ५४, ५५,
५९, ६१, ७६, ८७, ९८, ११५,
१२६, १२७ ।
शेख़ नबी, ८३, ९३, १२७ ।
शेख़ नसीरुद्दीन महमूद चिराग़, ३६ ।
शेख़ मंझन, ७१, ७२, ७३, ७४,
७५, ८१, ८२, ९१, ९२, ९८,
११४, ११५, १२७, १३७, १३८,
१३९, १४० ।
शेख़ रहीम जरवल, २४ ।
शेख़ रहीम कवि, ६४ ।
शेख़ सादी, ११० ।

स

सत्येन्द्रपाल घोषाल (डॉ०), ७९ ।
सनाई, ५ ।
साकेर मामूद, ७४ ।
साधन कवि, १३४, १३५, १३६ ।
सुकुमार सेन (डॉ०), ७४, ७९ ।
सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या (डॉ०), १८ ।
सुलेमान, २५ ।
सुल्तान इब्राहीम आदिलशाह, द्वितीय, १३७ ।
सूफ़ी जुल्नून मिस्त्री, ३ ।
सैफ़ुल म्लूक, १२९ ।
सैयद हामजा, २५ ।
ह
हंटर (डब्लू० डब्लू०), ३१ ।
हबीब (प्रो०), ४४ ।
हरिचन्द्र, १९ ।
हरिहर निवास द्विवेदी, ३२ ।
हल्लाज, ३ ।
हाफ़िज, ५ ।
हाफ़िज बरख़ुरदार, २६ ।
हामद, २६ ।
हारूँ रशीद, २ ।
हिशामुद्दीन ७३, ७४, १३८ ।
हुसेनशाह शर्की, २४ ।
हेमरतन कवि, ७७, ७८, १४० ।

